EC-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

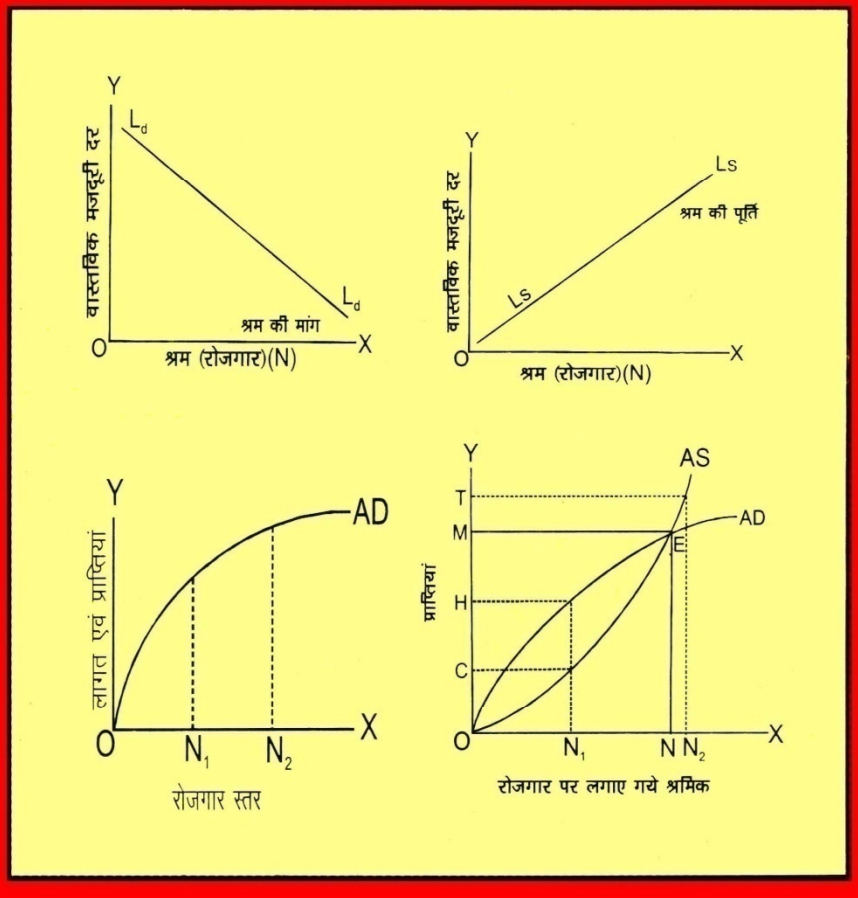

समष्टि अर्थशास्त्र

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

समष्टि अर्थशास्त्र

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

संयोजक/समन्वयक/सदस्य

संयोजक

प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया
विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा(राज.)

प्रो. (डॉ.) सुरजीत सिंह
आई.डी.एस., झालाना डूंगरी
जयपुर (राज.)

प्रो.(डॉ.) के. डी. स्वामी
विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
जयनारायन व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज.)

डॉ. जे. के. शर्मा
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा (राज.)

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो. (डॉ.) ए.के. घड़ोलिया
विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.)

लेखक	इकाई संख्या	लेखक	इकाई संख्या
प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा(राज.)	**1,2**	**डॉ. उषा राठी** व्याख्याता, अर्थशास्त्र विभाग राजकीय बांगड़(पी.जी.) महाविद्यालय, पाली(राज.)	8
डॉ एस.एल. लोढ़ा सेवानिवृत्त, सह-आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय अजमेर(राज.)	**3**	**डॉ. कुमुद दवे** वरिष्ठ व्याख्याता, अर्थशास्त्र विभाग मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर	9
प्रो. (डॉ.) एस. मूर्ति सेवानिवृत्त, सह-आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन(म.प्र.)	**4**	**डॉ. मदन मोहन** सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग जयनारायन व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)	10
डॉ. पी.के. पंजाबी सह-आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग जनार्दन राय नागर राज. विद्यापीठ, (सम, वि.वि.), उदयपुर(राज.)	**5**	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया** विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा(राज.)	11,12
प्रो. (डॉ.) प्रहलाद कुमार आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद(उ.प्र.)	**6,7**	**डॉ. एस.सी. मित्तल** सह-आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग डी.ए.वी.(पी.जी.) महाविद्यालय बुलन्दशहर(उ. प्र.)	13,14,15,16

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**संकाय विभाग**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन जुलाई, 2010

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश को वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
कुलसचिव द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

समष्टि अर्थशास्त्र

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई-01	समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ, प्रकृति एवं महत्व	8–20
इकाई-02	राष्ट्रीय आय -अर्थ, महत्व, माप की विधियां एवं कठिनाइयां	21–38
इकाई-03	राष्ट्रीय आय लेखांकन में पर्यावरणीय संदर्भ (हरित लेखांकन)	39–62
इकाई-04	रोजगार का परम्परागत सिद्धान्त, से का नियम एवं परम्परागत सिद्धान्त की आलोचना	63–73
इकाई-05	रोजगार का कीन्सयन सिद्धान्त - AD एवं AS फलन एवं प्रभावपूर्ण मांग का सिद्धान्त	74–85
इकाई-06	कीन्स का उपभोग फलन	86–103
इकाई-07	विनियोग - स्वायत्त विनियोग, प्रेरित विनियोग: विनियोग के निर्धारक घटक	104–120
इकाई-08	ब्याज के सिद्धान्त - परम्परागत, नव-परम्परागत एवं कीन्सयन	121–143
इकाई-09	गुणक एवं त्वरक सिद्धान्त	144–162
इकाई-10	व्यापार चक्र सिद्धान्त, हाट्रे का मौद्रिक सिद्धान्त, हेयक का अति विनियोग सिद्धान्त	163–181
इकाई-11	हिक्स एवं सेम्युल्सन का व्यापार चक्र सिद्धान्त	182–197
इकाई-12	व्यापार चक्र का आधुनिक सिद्धान्त एवं व्यापार चक्र नियंत्रण	198–208
इकाई-13	आर्थिक विकास का अर्थ, आर्थिक विकास का परम्परागत सिद्धान्त	209–224
इकाई-14	मार्क्स आर्थिक विकास का सिद्धान्त	225–238
इकाई-15	शुम्पीटर का आर्थिक विकास सिद्धान्त	239–252
इकाई-16	आर्थिक विकास का हेरोड-डोमर मॉडल	253–268

पाठ्यक्रम परिचय

समीष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन अनेक प्रकार से उपयोगी है। देश के नीति निर्माता, प्रशासक, योजनाकार बैंक एवं बीमा व्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार, मुद्रा स्फीति के समय आधारित आँकड़ों के बिना किसी अर्थव्यवस्था के कार्य संचालन की जानकारी प्राप्त होना असंभव है। कुल राष्ट्रीय आय के समांकों की सरंचना का विश्लेषण कर हम अर्थव्यवस्था का छेत्रवार ज्ञान प्राप्त कर सकते है। कौनसा क्षेत्र विकास कर रहा है? एवं कौनसा क्षेत्र पिछड़ रहा है? किस क्षेत्र का विकास मन्द पड़ रहा है? एवं किस क्षेत्र का तेजी पकड़ रहा है; यह कुछ ऐसे प्रश्न है जिनका उत्तर समष्टि अर्थशास्त्र के ज्ञान के बिना नाही दिया जा सकता। अर्थशास्त्रियों की रूचि विभिन्न राष्ट्रों के भौतिक कल्याण की प्रकृति एवं आकार में होती है। राष्ट्रीय आय के समंक हमें आर्थिक कल्याण के बारे में ज्ञान प्रदान करते है। राष्ट्रीय आय एवं विकास के नए अर्थ के रूप में सुस्थिर विकास (Sustainable Development) की धारणा के परिचय कराने हेतु राष्ट्रीय आय की गणना के लिए विकसित हो रही नवीन विधि हरित लेखांकन के बारे में आपको जानकारी दी गई है।

इकाई संख्या 4 में रोजगार के प्ररम्परागत सिद्धान्त की चर्चा की गई है जिसमें यह मान्यता ली जाती है कि रोजगार स्थापित करने वाली शक्तियां स्वचालित होती है एवं सदैव साम्य पर पूर्ण रोजगार की स्थिती होती है। इकाई संख्या 5 कीन्सयन रोजगार सिद्धान्त की चर्चा की गई है सर्वप्रथम कीन्स ने यह स्पष्ट किया है कि अर्थ व्यवस्था के साम्य पूर्ण रोजगार पर स्थापित हो यह आवश्यक नही है। कीन्स ने यह स्पष्ट किया की पूर्ण रोजगार पर भी अर्थव्यस्था में साम्य स्थापित हो सकता है। रोजगार एवं विनियोग फलनों की विवेचना इकाई 6 एवं इकाई संख्या 7 में की गई है। इकाई संख्या 8 में ब्याज के सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। आर्थिक उच्चावचन अर्थव्यस्था में उत्पादन एवं रोजगार स्तरों में उतार-चढ़ाव उत्पन्न करते है। इस उच्चावचन में सबसे महत्पूर्ण कारक गुणक एवं त्वरक सिद्धान्त की जानकारी आप इकाई 9 में प्राप्त करेंगे। इकाई 10 से 12 तक विस्तारपूर्वक व्यापार चक्र के मौद्रिक एवं अमौद्रिक सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। आर्थिक विकास क्या है? आर्थिक विकास क्यों होता है इसके निर्धारक घटक कौन-कौन से है इस सम्बंध में अर्थशास्त्रियों ने पृथक-पृथक सिद्धान्त प्रतिपादित किए है इकाई संख्या 13 में हम आपको आर्थिक विकास के प्ररम्परागत सिद्धान्त के बारे में बताएंगे। आर्थिक विकास के अन्य मॉडलों जैसे-मार्क्स मॉडल, शुम्पीटर, हेरोड-डोमर मॉडलों की चर्चा इकाई संख्या 14 से 16 तक की गई है।

समष्टि अर्थशास्त्र पर प्रस्तुत यह अध्ययन सामग्री सरल एवं स्पष्ट रूप से विषय की विवेचना करती है। इस विषय का अध्यय करने के लिए आवश्यक है कि आप विभिन्न चरों के अंतरसंबंधों को समझें एवं इसे बार-बार दोहराए। आशा है यह अध्यय सामग्री आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

सम्पादक

इकाई-1

समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ, प्रकृति एवं महत्व (Meaning, Nature and Importance of Macroeconomics)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

1.3 समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति

1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र बनाम समष्टि अर्थशास्त्र

1.5 समष्टि अर्थशास्त्र का महत्व एवं सीमाएं

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objectives)

समष्टि अर्थशास्त्र की अपनी पहचान है, इसकी अपनी परिभाषा, अर्थ, मान्यताएं, प्रकृति तथा क्षेत्र है जो इसकी विशेषताओं को प्रकट करती है । प्रस्तुत इकाई में आर्थिक सिद्धान्त की इस शाखा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । आर्थिक विश्लेषण की यह शाखा आर्थिक जगत में घटित हो रही घटनाओं की व्याख्या व्यापक परिपेक्ष्य में करने का प्रयास करती है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे एवं व्यष्टि एह समष्टि अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु में भेद कर सकेंगे ।
- समझ सकेंगे कि समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन का क्या महत्व है एवं इसकी क्या सीमाएं है?

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक विश्लेषण अर्थशास्त्रियों को कुछ ऐसे उपकरण प्रदान करता है जिनका प्रयोग वे आर्थिक जगत में होने वाली घटनाओं की व्याख्या करने के लिये करते हैं । इस प्रकार आर्थिक सिद्धान्त अर्थशास्त्री को आवश्यक औजार एवं उपकरण प्रदान करते हैं, जिनकी सहायता से वे आर्थिक मॉडल तैयार करते हैं । आर्थिक माडल आर्थिक सम्बन्धों का एक ऐसा समूह होता है

जिनको सामान्यत: गणितीय फलनों एवं समीकरणों के द्वारा व्यक्त किया जाता है । यह फलन एवं समीकरण विभिन्न आर्थिक चरों के मध्य विद्यमान परस्पर सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं : उदाहरणार्थ, हम यह कह सकते हैं कि कुल उपभोग व्यय (C) कुल आय (Y) का फलन है अर्थात्

$$C = f(Y)$$

अथवा $D = f(P)$ अर्थात् मांग की मात्रा कीमत पर निर्भर करती है । आर्थिक मॉडल हमें अर्थव्यवस्था के बारे में सही ज्ञान प्रदान नहीं कर सकते उनकी अपनी कुछ सीमाएं होती है क्योंकि वास्तविकता एवं प्रतिरूप में अन्तर होता है । आर्थिक मॉडल की उपयोगिता उस मॉडल की वास्तविकता आर्थिक जगत सम्बन्धी सही भविष्यवाणी करने की क्षमता अथवा योग्यता पर निर्भर करती है । आर्थिक माडल उपयोगी भविष्यवाणी करने में तभी सक्षम होते हैं जब इसके चरों की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से माप की जा सकती हो । कुछ माडल अधिक उपयोगी हो सकते हैं यदि वे वास्तविक जगत से सम्बन्धित अधिक स्थिर चरों को सम्मिलित करें । आर्थिक चरों के मापन के आधार पर उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : स्टाक चर एवं प्रवाह चर । इनका विस्तृत विवेचन आवश्यक है ।

स्टाक चर (Stock Variables)

आर्थिक चरों में वे चर स्टाक चर कहलाते हैं जिन्हें किसी दिए हुए समय बिन्दु पर मापा जाता है । जैसे किसी विशेष दिन मण्डी में बिकने आया अनाज एक स्टाक चर है । स्टाक चर किसी निश्चित् समय बिन्दु (Point of Time) अथवा क्षण पर विद्यमान मात्रा का द्योतक है । जैसे पानी कीं टंकी में भरा हुआ पानी स्टाक चर कहलाता है । इसी प्रकार रिर्जव बैंक द्वारा जारी किसी विशेष समय पर (जैसे 31 मार्च, 2008) को मुद्रा की मात्रा स्टाक घर कहलाता है ।

प्रवाह चर (Flow Variables)

प्रवाह चरों की माप एक निश्चित समय अवधि में की जाती है । समष्टि अर्थशास्त्र में प्रवाह घर की सही परिभाषा करना स्टाक चर के सन्दर्भ के बिना सम्भव नहीं होती है । प्रवाह चर वस्तुत: स्टाक घर में परिवर्तन की दर है अथवा एक समय अवधि के स्टाक चर के मूल्य में परिवर्तन की दर है । ऊपर हमने पानी की टंकी का उदाहरण दिया था उसमें भरा हुआ पानी स्टाक चर है परन्तु टंकी से प्रति मिनट नल द्वारा निकाला जाने वाला पानी प्रवाह चर कहलाएगा ।

कुछ ऐसे समष्टि चर भी होते हैं जिनमें स्टाक चर एवं प्रवाह चर दोनों के गुण उपस्थित होते हैं । उदाहरणार्थ मुद्रा की मात्रा स्टाक है तो इसमें होने वाला परिवर्तन प्रवाह चर राशि माना जाएगा । चर उस संख्या को कहा जाता है जिसमें किसी निर्दिष्ट समय अवधि में परिवर्तन हो जाता है । कोई चर स्टाक चर या प्रवाह चर राशि के रूप में व्यक्त होता है । इसी प्रकार चर परतंत्र चर एवं स्वतंत्र घर अथवा बहिर्जात एवं अन्तर्जात के रूप में भी वर्गीकृत किये जाते हैं । परतंत्र चर किसी एक अथवा एक से अधिक स्वतंत्र चरों पर निर्भर होता है एवं इसमें परिवर्तन तभी होता है जब स्वतंत्र चर में परिवर्तन हो । उदाहरणार्थ निम्न फलन को लीजिए$C = f(Y)$ इसमें (C) उपभोग परतंत्र चर एवं (Y) आय स्वतंत्र चर है । इस फलन में यह माना

जाता है कि उपभोग में तभी परिवर्तन होगा जब आय में परिवर्तन हो । परतंत्र चर सदैव अन्तर्जात चर होते हैं । अन्तर्जात चर वे चर हैं जिनके साम्य मूल्यों का निर्धारण मॉडल द्वारा किया जाता है । बहिर्जात चर वे चर होते हैं जिन्हें मॉडल में दिया हुआ मान लिया जाता है उनका निर्धारण माडल द्वारा नहीं किया जाता ।

समष्टि अर्थशास्त्र की आधारभूत अवधारणाओं में स्टाक तथा प्रवाह (Stock and Flows) माडल अथवा प्रतिरूप में समाहित विभिन्न प्रकार के चरों के अध्ययन के साथ ही समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए आवश्यक आधार तैयार हो गया है । विद्यार्थियों को यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि कभी-कभी विभिन्न प्रवाह चरों की मापन समय अवधि (t) के साथ की जाती है यदि किसी चर के Subscript में t लिखा हो तो यह समय अवधि को इंगित करता है । पूर्व की अर्थात् बीती हुई अवधि बताने के लिए (t - 1), (t - 2), (t - 3) का प्रयोग होता है जबकि आगामी अवधि आने वाली अवधि के लिए (t + 1), (t + 2) अथवा (t + 3) आदि का प्रयोग होता है ।

$C_t = f(Y_{t-1})$ का अभिप्राय: यह है कि वर्तमान समय में उपभोग पिछले वर्ष की आय पर निर्भर करता है । इस विश्लेषण को गत्यात्मक विश्लेषण कहा जाता है । गत्यात्मक विश्लेषण अविरत अथवा अवधि विश्लेषण हो सकता है । इसके लिए आर्थिक आकड़ों का संकलन विभिन्न समयान्तरालों पर करना पड़ता है जैसे प्रति सप्ताह, प्रति माह अथवा प्रतिवर्ष। इस प्रकार समय अवधियों से सम्बन्धित सारणी को समय सारणी (Time Series) कहते हैं । इसके विपरीत आँकडें विभिन्न प्रतिनिधि समूह अथवा प्रतिनिधि अंश (Cross-section) से सम्बन्धित भी हो सकते हैं । जैसे 100 परिवारों की आय सम्बन्धी आँकड़े । यह आँकड़े विभिन्न समय अवधियों से सम्बन्धित होते हैं जैसे विश्वविद्यालय कर्मचारियों की माह जुलाई 2008 का वेतन । इन आँकडों को क्रास सेक्शन (Cross-Section data) कहा जाता है ।

समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के पूर्व कुछ अन्य मूलभूत आर्थिक अवधारणाओं से और परिचय होना जरूरी है । इनमें प्रमुख है- लेखांकन, साम्य, वास्तविक (Ex-post), प्रत्याशित (Ex-ante) आदि । इन अवधारणाओं का हम संक्षिप्त अर्थ बताने के बाद अगले खण्ड में समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे ।

लेखांकन सम्बन्ध समानिका के रूप में होता है। यह एक ऐसा सम्बन्ध है जो परिभाषा से ही प्रमाणित हो जाता है । लेखांकन सम्बन्ध स्वयं सिद्ध एवं समस्त परिस्थितियों में सत्य होता है। यह समानिका आर्थिक चरों की अर्थशास्त्रियों द्वारा की गई परिभाषाओं एवं मान्यताओं की कसौटी पर खरा उतरता है । जैसे व्यक्तिगत बचत व्यक्तिगत आय एवं व्यक्तिगत आय के अन्तर के बराबर होती है । यह एक लेखांकन सम्बन्ध है । इस प्रकार राष्ट्रीय आय की गणना के लिए किसी भी विधि का प्रयोग किया जाय प्राप्त परिणाम होंगे अर्थात्

$GPN \equiv GNI \equiv GNE$ एक प्रकार की लेखांकन समानिका है । लेखांकन सम्बन्ध आर्थिक जगत में किए गए व्यवहार के अनुभवमूलक परीक्षणों के आधार पर स्थापित सम्बन्ध है जिसे आँकडों के संकलन एष वैज्ञानिक निर्वचन के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है ।

आर्थिक जगत की एक अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा साम्य (Equilibrium) की है। इस अवधारणा का अर्थशास्त्र में व्यापक प्रयोग होता है । आर्थिक चरों में निरन्तर एवं अनवरत परिवर्तन होते रहते हैं । इन परिवर्तनों के मध्य साम्य की स्थिति यह स्पष्ट करती है कि आर्थिक शक्तियों में परिवर्तन की गति समान रहती है । साम्य का अभिप्राय परिवर्तन का अभाव नहीं बल्कि गति की पुनरावृति होते रहने से ठहराव का अनुभव होता है । साम्य की अवस्था विश्राम की अवस्था होती है । एक बार साम्य की स्थिति प्राप्त होने के बाद आर्थिक इकाई उससे विचलित नहीं होती है । साम्य स्थाई अथवा अस्थाई हो सकता है । साम्य सामान्य अथवा आंशिक भी हो सकता है ।

वास्तविक (Ex-post) तथा प्रत्याशित (Ex-ante) चर मूल्यों में अन्तर होता है । अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को अक्सर इनमें भ्रम हो जाता है । सामान्यत: यह माना जाता है कि बचत एवं निवेश सदैव बराबर होते हैं । वास्तविक बचत एवं वास्तविक निवेश सदैव बराबर होते हैं यह एक प्रकार की समानिका है । फिर बचत एवं निवेश में अन्तर कैसे सम्भव है । बचत एवं निवेश में यह अन्तर प्रत्याशित मूल्यों में होता है । वास्तविक बचत प्रत्याशित बचत से भिन्न हो सकती है । प्रत्याशित बचत वास्तविक निवेश बराबर भी हो सकती है एवं भिन्न भी हो सकते हैं । ये चारों चर राशियां तभी एक समान होगी जब सब कुछ योजना के अनुरूप हो वास्तविक जगत में यह स्थिति सम्भव नहीं होती इसलिए आर्थिक जगत में निरन्तर हलचल होती रहती है ।

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Macroeconomics)

समष्टि शब्द अंग्रेजी भाषा के मेक्रो (Macro) शब्द का रूपान्तरण है । समष्टि की उत्पत्ति यूनानी भाषा के शब्द मेक्रोस (Micro)शब्द से हुई जिसका शब्दार्थ 'बड़ा' है । इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा के माइक्रो (Micro) शब्द की उत्पत्ति भी यूनानी भाषा के शब्द माइक्रोस (Mikros)से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ 'छोटा' है । मेक्रोइक्नोमिक्स शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रोफेसर रागनर फ्रिश (Ragner Frish) ने वर्ष 1933 में किया था । व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन आप अपने प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में कर चुके हैं । व्यष्टि अर्थशास्त्र किसी एक आर्थिक इकाई अथवा घटना का अध्ययन करता है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध आर्थिक समूहों (Aggregates)से है जैसे कुल रोजगार, मुद्रा पूर्ति, बेरोजगारी, राष्ट्रीय आय, कुल बचत, कुल निवेश एवं कुल उपभोग आदि ।

- **समष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषाएं**

समष्टि अर्थशास्त्र में देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कुल मात्राओं को आधार लेकर अध्ययन किया जाता है । अर्थशास्त्र के विकास काल के प्रारम्भिक दौर में अर्थशास्त्रियों ने इस सम्पूर्ण मात्राओं के आधार पर अलग अध्ययन को आवश्यक नहीं माना । उनका गत था कि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार का विवेचन करने के बाद यदि उनका योग ज्ञात कर लिया जाय तो स्वत: ही निष्कर्ष निकल आएंगे । अर्थात् व्यक्तिगत हित एवं सामाजिक हितों में कोई विरोधाभास नहीं है । जो एक इकाई के लिए श्रेष्ठ है वहीं सम्पूर्ण के लिए भी

श्रेष्ठ है । वस्तुत: उनके यह निष्कर्ष सही नहीं थे । बाद में आर्थिक विश्लेषण की अन्य शाखाओं का जैसे-जैसे विस्तार हुआ अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि व्यक्तिगत हित एवं सामाजिक हितों में विरोधामास हो सकता है जो बात या सिद्धान्त व्यक्ति के लिए हितकारी है वही सिद्धान्त सम्पूर्ण समाज के हित में हो यह आवश्यक नहीं । जैसे बचत करना एक अच्छी आदत है व्यक्ति को बचत करना चाहिए परन्तु यदि सभी व्यक्ति बचत करने लगे तो अर्थथवस्था में समग्र मांग की कमी होने से मंदी का खतरा बढ़ जाएगा । समाज के लिए एक सीमा से अधिक बचत दर उत्पादन स्तर एवं रोजगार पर विपरीत असर डालती है । तो इसी प्रकार जब अर्थव्यवस्था की कोई एक इकाई अस्वस्थ है तो उनके उपचार की विधि अलग होगी जबकि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था ही अस्वस्थ है तो उसके उपचार की विधि अलग होगी । कहने का अभिप्राय यह है कि समष्टि अर्थशास्त्र के अलग अध्ययन की आवश्यकता है । अब प्रश्न उठता है कि समष्टि अर्थशास्त्र की विषयवस्तु क्या होनी चाहिए? एडवर्ड शापिरो ने अपनी पुस्तक 'मेक्रो इकानोमिक ऐनालिसिस' में लिखा है,

"समष्टि अर्थशास्त्र का प्रमुख कार्य यह विवेचन करना है कि किसी अर्थव्यवस्था में कुल वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किस प्रकार से निर्धारित होता है । यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन से सम्बन्धित होता है तथा इस बात का अध्ययन करता है कि अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं का कुल उत्पादन, इनका कीमत स्तर तथा उत्पादन साधनों का कुल रोजगार किस प्रकार निर्धारित होते हैं तथा इन चरों में किन कारणों से परिवर्तन होते हैं ।" संक्षेप में समष्टि अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकरण से सम्बन्धित शास्त्र है।

गार्डनर एकले के अनुसार, **"समष्टि अर्थशास्त्र विशेषत : अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन, सामान्य कीमत स्तर तथा राष्ट्रीय उत्पाद के आकार आदि चरों का अध्ययन करता है" ।** आर.जी.डीएलन के अनुसार, "**समष्टि अर्थशास्त्र शब्द जिसका अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम 1933 में प्रयोग रेगनर नर्कसे द्वारा किया गया था व्यापक आर्थिक योगों के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन करता है जबकि व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तियों तथा फर्मों के आर्थिक निर्णयों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है"** । प्रोचेम्बरीलन के अनुसार, **"समष्टिगत अर्थशास्त्र कुल सम्बन्धों का अध्ययन करता है" ।**

समष्टि अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुबे बोल्डिंग ने लिखा है, **"समष्टिगत अर्थशास्त्र का सम्बन्ध व्यक्तिगत मात्राओं से नहीं है, परन्तु इन मात्राओं के कुल योग से है, व्यक्तिगत आय से नहीं, परन्तु राष्ट्रीय आय से व्यक्तिगत कीमतों से नहीं परन्तु कीमतस्तरों से, व्यक्तिगत उत्पादन से नहीं बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन से है" ।**

उपर्युक्त समस्त परिभाषाएं समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को आधार बनाकर विषय वस्तु का दर्णन करती है । वस्तुत: समग्र या कुल भी सापेक्ष शब्द है यदि हम एक शहर का अध्ययन कर रहे हैं तो शहर से सम्बन्धित समस्त आँकड़े समग्र को व्यक्त करेंगे एवं समष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आ जाएंगे परन्तु यदि हमारे अध्ययन का क्षेत्र सम्पूर्ण राज्य अथवा देश है तो एक शहर का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र की विषयवस्तु बन जाएगा । इस प्रकार व्यष्टि एवं समष्टि के बीच विभाजन रेखा खींचना मुश्किल कार्य है ।

1.3 समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति (Nature of Macroeconomics)

समष्टि अर्थशास्त्र की मूलभूत अवधारणाओं का प्रतिपादन प्रकृतिवादियों की देन है । इस अवधारणा के अन्तर्गत उत्पादन से आय सृजन होती है, जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था में कुल आय व व्यय के प्रवाहों को विद्यमान रखा जाता है । आर्थिक सिद्धान्तों का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध होना चाहिए एवं इन्हें वास्तविकता की व्याख्या करने योग्य होना चाहिए । परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के मत में अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर साम्यावस्था में होती है, यदि अस्थायी रूप साम्यावस्था से नीचे के स्तर पर साधनों की बेरोजगारी की समस्या विद्यमान हो तो स्वतंत्र बाजार की शक्तियां साम्य स्थापित कर देती है । अत: परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने समष्टि अर्थशास्त्र के अलग अध्ययन की आवश्यकता नहीं समझी । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में रोजगार के स्तर का निर्धारण एक उपेक्षित विषय था क्योंकि उसमें पूर्ण रोजगार की मान्यता की गई थी ।

मार्शल ने अर्थशास्त्र को मानव कल्याण के लिए समर्पित विज्ञान का दर्जा दिलाने के लिए परम्परावादी मान्यताओं के साथ-साथ उपभोक्ता एवं उत्पादकों की अधिकतम संतुष्टी के लिए सीमान्त की विचारधारा को प्रतिष्ठित किया । उन्होंने मूल्य तथा वितरण के विश्लेषण में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.बी.से (J.B Say) के बाजार नियम को आधार बनाया था । पूर्ण रोजगार एवं इससे सम्बन्धित उत्पादन एवं आय की मान्यताओं को लेते हुये मार्शल एवं अन्य नव परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने अपना ध्यान मूल्य निर्धारण एवं साधन आवंटन जैसी समस्याओं पर केन्द्रित किया । सीमान्तवादी सम्प्रदाय के विचारों के परिणाम स्वरूप अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं इसके विषय क्षेत्र में मौलिक परिवर्तन हो गया । इस प्रकार अर्थशास्त्र की प्रकृति धन वृद्धि के कारणों की खोज के स्थान पर सीमित संसाधनों के आवंटन से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना हो गया ।

समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की अलग आवश्यकता सर्वप्रथम कीन्स ने प्रतिपादित की इसलिए उन्हें समष्टि अर्थशास्त्र का जनक भी कहा जाता है ।

कीन्स की पुस्तक The General Theory of Employment, Interest and Money के प्रकाशन के साथ ही अर्थशास्त्र की प्रकृति में बदलाव आया । कीन्स ने परम्परावादी मान्यताओं को चुनौती दी एवं जे.बी.से के "बाजार नियम' को अवास्तविक बताया । कीन्स ने स्पष्ट किया कि यह आवश्यक नहीं कि साम्य सदैव पूर्ण रोजगार के स्तर पर हो । अर्थव्यवस्था में पूर्णरोजगार स्तर के नीचे भी साम्य की स्थिति हो सकती है । पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करने के लिए राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक है ।

- **समष्टि अर्थशास्त्र की शाखाएं**

  समष्टि अर्थशास्त्र की प्रमुख शाखाएं इस प्रकार है :

  - स्थैतिक समष्टि अर्थशास्त्र (Statics Macroeconomics)

1. प्रकृतिवादी 18 वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में सक्रिय लेखकों का एक समूह था । वे आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप के कट्टर विरोधी तथा मुक्त अर्थव्यवस्था के पक्के समर्थक थे । एडम स्मिथ के विचारों पर इनके विचारों का गहरा प्रभाव था ।

- तुलनात्मक स्थैतिक अर्थशास्त्र (Comparative Static Macroeconomics)
- गत्यात्मक समष्टि अर्थशास्त्र (Dynamic Macroeconomics)

समष्टि अर्थशास्त्र की स्थैतिक समष्टि शाखा में अर्थव्यवस्था में साम्य की स्थितियों का अध्ययन किया जाता है जबकि तुलनात्मक स्थैतिक अर्थशास्त्र में पुराने एवं नये साम्य स्थितियों की तुलनात्मक व्याख्या की जाती है, जबकि गत्यात्मक समष्टि अर्थशास्त्र में साम्य स्तर को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था द्वारा अपनाए गये मार्ग की व्याख्या की जाती है ।

बोध प्रश्न -01

1. आर्थिक मॉडल किसे कहते है?
2. फलनात्मक सम्बन्ध का एक उदाहरण देकर बताइये कि इसमें कौनसा चर स्वतंत्र चर है एवं कौनसा चर निर्भर चर है?
3. समझाये
   (i) स्टाक एवं प्रवाह चर
   (ii) अन्तर्जात एवं बहिर्जात चर
   (iii) वास्तविक एवं प्रत्याशित मूल्य
4. समष्टि अर्थशास्त्र की गार्डनर एकले एवं एडवर्ड शापिरो की परिभाषाएं लिखिए।
5. समष्टि अर्थशास्त्र की विभिन्न शाखाएं कौन - कौन सी है?

1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र बनाम समष्टि अर्थशास्त्र (Micro Economics Versus Macroeconomics)

आर्थिक विश्लेषण की दो प्रमुख शाखाएं व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र है । व्यष्टि अथवा सूक्ष्म अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन किया जाता है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र अथवा व्यापक अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न योगों का समग्र रूप से अध्ययन किया जाता है । व्यष्टि अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु व्यक्तिगत उपभोक्ता, उत्पादक, वितरक आदि हैं जिसमें मूल्य सिद्धान्त एवं साधन आवंटन का अध्ययन किया जाता है । समष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन, रोजगार स्तर, मुद्रा प्रसार, आर्थिक उच्चावचन एवं मूल्य स्तर का अध्ययन करता है । समष्टि अर्थशास्त्र जिन आर्थिक प्रश्नों को खोजता है वे इस प्रकार है :

- अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार का स्तर कैसे निर्धारित होता है?
- कीमत स्तर का निर्धारण एवं इसे प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण घटक ।
- मुद्रा की पूर्ति एवं मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त ।
- व्यापार चक्र बेरोजगारी एवं राष्ट्रीय आय
- मुद्रा का मूल्य
- राजकोषीय नीति एवं मौद्रिक नीति

इसके विपरीत व्यष्टि अर्थशास्त्र में 'अन्य बातें समान रहते हुए' की मान्यता लेकर व्यक्तिगत इकाइयों द्वारा साम्य की स्थिति प्राप्त करने सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया

जाता है । व्यष्टि अर्थशास्त्र में जिन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है वे निम्नांकित है :

- उपभोक्ता द्वारा संतुलन की प्राप्ति अर्थात् अधिकतम संतुष्टि के स्तर को प्राप्त करना।
- उत्पादकों द्वारा न्यूनतम लागत संयोग से उत्पादन के अनुकूलतम स्तर का निर्धारण ।
- मजदूरी एवं अन्य साधनों के प्रतिफल का निर्धारण जैसे लगान, लाभ आदि ।
- पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, अल्पाधिकार जैसी बाजार स्थितियों में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण ।

- **व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर**

व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है:

- व्यष्टि का अर्थ सूक्ष्म है जबकि समष्टि का अर्थ व्यापक है ।
- व्यष्टि अर्थशास्त्र नाशवान व्यक्ति का अध्ययन करता है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र की विषयवस्तु अविनाशी अर्थव्यवस्था है ।
- व्यष्टि अर्थशास्त्र का आधार मांग एवं पूर्ति की शक्तियां एवं कीमत तंत्र है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र का आधार सामान्य कीमत स्तर, रोजगार स्तर एवं राष्ट्रीय आय है ।
- व्यष्टि अर्थशास्त्र में अन्य बातें समान रहने की मान्यता लेने के कारण यह आंशिक संतुलन की व्याख्या करता है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र सम्पूर्ण संतुलन या सामान्य संतुलन की व्याख्या करता है ।
- व्यष्टि अर्थशास्त्र एक स्थैतिक विश्लेषण है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र समय पश्चताओं, परिवर्तन की दरों एवं चरों के विगत एवं प्रत्याशित मूल्यों पर आधारित है ।
- समष्टि अर्थशास्त्र सम्पूर्ण वन का अध्ययन करता है तो व्यष्टि अर्थशास्त्र इस वन के व्यक्तिगत पेड़ों का अध्ययन करता है । यद्यपि वन सभी पेडों से मिलकर बनता है फिर भी व्यक्तिगत पेड़ के लिए जो श्रेष्ठ है आवश्यक नहीं कि वही उपाय सम्पूर्ण वन के लिए भी श्रेष्ठ हो । जैसे यदि एक पेड़ अस्वस्थ हो जाय तो उसे वन से हटाया जा सकता है परन्तु यदि सम्पूर्ण वन ही अस्वस्थ हो तो इसका इलाज दूसरा होगा । इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यष्टि एथ समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर है । अन्तर के बावजूद व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हैं ।

- **व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र को परस्पर निर्भरता**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र में काफी भिन्नताएं हैं । इसके बावजूद अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के लिए दोनों ही आवश्यक है । दोनों शाखाएं एक दूसरे की प्रतियोगी नहीं वरन् पूरक हैं । वास्तव में दोनों के मध्य कोई स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन है । सेम्यूलसन ने लिखा है, "वास्तव में समष्टिगत एवं व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है, दोनों अत्यन्त आवश्यक है । यदि आप एक को समझते हैं और दूसरों के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं तो आप अर्द्ध शिक्षित हैं" । दोनों की पारस्परिक निर्भरता को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझाया जा सकता है ।

- एक फर्म अपने श्रमिकों की मजदूरी के सम्बन्ध में निर्णय लेना चाहती है । यह एक व्यष्टि अर्थशास्त्र की समस्या है क्योंकि इसका सम्बन्ध एक फर्म विशेष से है । इस समस्या का निर्धारण फर्म तभी कर सकती है जब उसे यह ज्ञात हो कि उद्योग की अन्य फर्म कितना भुगतान कर रही है, राष्ट्रीय दर कितनी है । क्योंकि यदि ऐसा नहीं किया गया तो फर्म की लागत बढ़ सकती है अथवा मजदूरी कम होने पर उसके मजदूर अन्य उद्योगों का रूख कर सकते हैं ।
- किसी देश के सकल आर्थिक हित साधन करने के लिए व्यष्टि एवं समष्टि दोनों पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए। यद्यपि मात्र समष्टि आधार पर आर्थिक कल्याण अधिकतम नहीं हो सकता जब तक व्यष्टि आधार पर समस्त इकाइयां अधिकतम कल्याण का इष्टतम स्तर प्राप्त न कर ले। इस प्रकार समष्टि एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र एक दूसरे की पूरक हैं।
- कच्चे माल की कीमत एक फर्म की मांग पर निर्भर नहीं होती बल्कि सम्पूर्ण उद्योग की मांग पर निर्भर होती है।
- अर्थशास्त्र एक विभाज्य विषय न होकर एक सम्पूर्ण एकाकार विषय है। अध्ययन की विषय-वस्तु के आधार पर शाखा का चयन किया जाता है।
- व्यष्टि निष्कर्ष समष्टि आधार पर सत्य नहीं होते, उदाहरणार्थ "बचत विरोधाभास" को लीजिए। व्यक्तिगत स्तर पर बचत करके व्यक्ति धनवान बन सकता है परन्तु यदि सभी व्यक्ति अपना व्यय कम कर दे तो अधिक बचत देश की आय में कमी कर देगी। इसी प्रकार कोई व्यक्ति अपनी समस्त जमा राशि बैंक से निकाल ले तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा परन्तु यदि सभी व्यक्ति अपनी जमा राशि बैंकों से निकालने दौड़ पड़े तो बैंकिग व्यवस्था ठप हो जायेगी।
- इसी प्रकार समष्टि निष्कर्ष भी व्यक्तिगत इकाइयों के लिए हितकारी हो यह आवश्यक नहीं। यदि देश का सकल कृषि उत्पादन बढ़ जाय तो राष्ट्रीय आय बढ़ेगी परन्तु कृषकों की स्थिति बिगड़ सकती है यदि कीमतें नीचे गिर जाय। यह तथ्य "संरचना का भ्रमजाल" (Fallacy of Composition) कहलाता है। इसी प्रकार यह कहना भी गलत होगा कि राष्ट्रीय आय बढ़ने से आर्थिक स्थिति सुधर जाएगी।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि दोनों शाखाएं एक दूसरे की पूरक है, दोनों एक दूसरे के विकास के लिए आवश्यक हैं ।

बोध प्रश्न-02

1. समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की विषय-वस्तु क्या है?
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की विषय-वस्तु क्या है?
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र में क्या अन्तर है?

1.5 समष्टि अर्थशास्त्र का महत्व एवं सीमाएं (Importance and Limitations of Macroeconomics)

आर्थिक विश्लेषण की इस शाखा का अत्यधिक महत्व है। कुल राष्ट्रीय आय का अनुमान अर्थव्यवस्था का हाल जानने का सबसे उपयुक्त माप है। समष्टि अर्थशास्त्र के महत्व की चर्चा निम्नांकित प्रमुख क्षेत्रों में की जाएगी।

(1) राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित क्षेत्र

समष्टि अर्थशास्त्र का एक लोकप्रिय क्षेत्र राष्ट्रीय आय लेखांकन है। वस्तुत: 1930 की विश्वव्यापी महान आर्थिक मन्दी के बाद इसके अध्ययन का महत्व बढ़ा है। मन्दी के कारण उत्पन्न अति उत्पादन एवं बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन व्यष्टि स्तर पर सम्भव नहीं था, इसके लिए समग्र आँकड़ों का विश्लेषण एवं विवेचन जरूरी था। अर्थव्यवस्था के समग्र स्वास्थ्य की जानकारी प्राप्त करने के लिए दो विभिन्न समयावधियों के बीच राष्ट्रीय आय समंकों की तुलना कर अनुमान लगाया जा सकता है। यदि स्थिर कीमतों पर दो समयावधियों के मध्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो इसे विकास माना जाएगा। राष्ट्रीय समंकों से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के योगदान का भी पता चलता है, किस क्षेत्र का विकास तेजी से हो रहा है एवं कौनसा क्षेत्र पिछड़ रहा है। यह महत्वपूर्ण सूचना इन्हीं समंको से प्राप्त होती है।

(2) आर्थिक विकास

देश के आर्थिक विकास से सम्बन्धित नीतियां बनाने एवं विकास की गति बढ़ाने के लिए समष्टि आर्थिक विश्लेषण आवश्यक है। देश के समूर्ण संसाधनों के ज्ञान, प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, जनसंख्या, आयु संरचना, लिंग, शिक्षा एवं अन्य आधारों पर मानवीय विकास सूचकांक की जानकारी आर्थिक विकास एवं भौतिक कल्याण में वृद्धि के लिए आवश्यक है। सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए भी समष्टि विश्लेषण आवश्यक है ।

(3) सामान्य बेराजगारी

अर्थव्यवस्था में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए अर्थव्यवस्था की स्थिति को समझना जरूरी है । अर्थव्यवस्था में कुल मांग का स्तर क्या है? कीन्स ने अपनी व्याख्या में बेरोजगारी अथवा अल्परोजगार का मुख्य कारण प्रभावपूर्ण मांग की कमी बताया । प्रभावपूर्ण मांग को बढ़ाने के लिए अर्थव्यवस्था में कुल व्यय की मात्रा बढ़ानी आवश्यक है । अर्थव्यवस्था में व्यय उपभोक्ता एवं उत्पादकों द्वारा किया जाता है । इसके अतिरिक्त सरकार भी समग्र व्यय में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । यदि प्रभावपूर्ण मांग कम है तो सरकार सरकारी व्यय बढ़ाकर अथवा उत्पादक निवेश बढ़ाकर इस मांग के स्तर में वृद्धि कर सकती है । समग्र मांग वक्र के आगे सरकने से अर्थव्यवस्था में कुल आय अथवा राष्ट्रीय उत्पादन का स्तर बढ़ जाएगा । बढ़े हुए राष्ट्रीय उत्पादन पर रोजगार हेतु अधिक मांग होगी एवं बेरोजगारी की समस्या दूर हो जाएगी।

(4) व्यापार चक्र

आर्थिक जगत में उत्पादन एवं रोजगार सदैव एक स्तर पर नहीं रहते हैं । कभी मांग की ओर से तो कभी पूर्ति की ओर से झटके लगते रहते हैं । उत्पादन में यह सामान्य

उच्चावचन कभी-कमी बड़े उच्चावचनों में बदलकर व्यापार चक्र का रूप ले लेते हैं । व्यापार चक्रों के कारण अर्थव्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है । इन्हें देर करने के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास करने पड़ते हैं इसके लिए मुख्य रूप से व्यापार चक्र विरोधी मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों के माध्यम से आर्थिक जगत पर नियंत्रण लागू किया जा सकता है । व्यक्तिगत अथवा व्यष्टि स्तर पर व्यापार चक्रों का इलाज सम्भव नहीं है । अत: समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है ।

मौद्रिक समस्याओं के समाधान हेतु भी समष्टि विश्लेषण आवश्यक है ।

- **अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने में उपयोगी**

अर्थव्यवस्था के कार्यकरण का ज्ञान समष्टि विश्लेषण से ही सम्भव है । समष्टि आर्थिक विश्लेषण सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । समष्टि विश्लेषण हमें सरकार की कर, व्यय नीति, मौद्रिक नीति, विनिमय दर जैसे महत्वपूर्ण चरों का ज्ञान प्रदान करता है ।

- **व्यक्तिगत इकाइयों के अध्ययन में उपयोगी**

समष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत इकाइयों के अध्ययन में भी बहुत उपयोगी होता है । एक बात जो व्यक्ति के लिए सत्य है, यह आवश्यक नहीं कि सम्पूर्ण समाज के लिए' भी वही सत्य हो । व्यक्ति एवं समाज के बीच यह बिरोधाभास व्यष्टि अर्थशास्त्र की 'अन्य बातें समान रहे' की मान्यता के कारण आती है । व्यष्टि अध्ययन के निष्कर्ष सूक्ष्म स्तर पर लागू होते हैं परन्तु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर पर वे लागू नहीं होते । अत: समष्टि आर्थिक विश्लेषण का अपना महत्व है ।

- **समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएं**

समष्टि अर्थशास्त्र की इतनी उपयोगिताओं के बावजूद इसकी कुछ सीमाएं हैं । इस सीमाएं निम्नांकित है:

(1) अनेक ऐसे निष्कर्ष है जो व्यक्तियों के छोटे समूह के लिए सही है परन्तु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए उनका कोई औचित्य नहीं है । जैसे बचत विरोधाभास । बचत व्यक्ति का गुण है पर सार्वजनिक दोष है ।

(2) समष्टि अर्थशास्त्र की दूसरी सीमा यह है कि इसमें 'संरचना की भ्रान्ति' (Fallacy of Composition) पाई जाती है ।

(3) समष्टि अर्थशास्त्र में हम समूहों का अध्ययन करते हैं परन्तु समूह समरूप नहीं होते । समष्टि अर्थशास्त्र में इन समूहों के आन्तरिक ढाँचे एवं बनावट पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता । (4) समष्टि अर्थशास्त्र घटकों से उत्पन्न होता है वे अरूचिपूर्ण एवं महत्वहीन हो सकते हैं ।

(4) आर्थिक घटकों में कार्यकरण सम्बन्ध नहीं हो तो वे अरूचिकर हो जाते हैं ।

(5) समष्टि अर्थशास्त्र के आधार पर राष्ट्रीय आय के माप में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है । विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों के अनुमान के आधार पर राष्ट्रीय आय का मापन कठिन कार्य है ।

(6) समष्टि आर्थिक सिद्धान्त विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए अधिक उपयोगी नहीं है ।

1.6 सारांश (Summary)

आर्थिक विश्लेषण की शाखाओं में समष्टि अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है । जब अर्थशास्त्र अपने अध्ययन का केन्द्र व्यक्तिगत इकाइयों को बनाता है जैसे व्यक्तिगत उपभोक्ता, व्यक्तिगत उत्पादक, फर्म, कीमत निर्धारण आदि तो यह व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र है । जब अर्थशास्त्र इन्हीं इकाइयों के समग्र का अध्ययन करता है जैसे उपभोग फलन, उत्पादन एवं रोजगार स्तर मुद्रा प्रसार आदि तो यह समष्टि अर्थशास्त्र को क्षेत्र है । इसी आधार पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों जिसमें शापिरो, सेम्युल्सन, एकले आदि प्रमुख है, अपने-अपने दृष्टिकोण के आधार पर समष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा की है । समष्टि अर्थशास्त्र का आर्थिक नीति निर्माण के क्षेत्र में एवं सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने के लिए अधिक महत्व है । देश के नीति निर्माता, मौद्रिक एवं योजनाधिकारी समग्र आँकड़ों एवं राष्ट्रीय आय समंकों का अध्ययन कर देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक नीतिगत निर्णय लेते हैं । यद्यपि समष्टि एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर है दोनों की विषय-वस्तु अलग-अलग है तथापि दोनों शाखाओं में कोई विरोध नहीं है दोनों एक दूसरे की पूरक है । अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण विकास के लिए दोनों आवश्यक है ।

1.7 शब्दावली (Glossary)

Microeconomics	व्यष्टि अर्थशास्त्र
Macroeconomics	समष्टि अर्थशास्त्र
Stock and Flow Variable	स्टाक एवं प्रवाह चर
Endogenous Variable	अन्तर्जात घर
Exogenous Variable	बहिर्जात चर
Function	फलन
Identity	समानिका
Partial Equilibrium	आंशिक संतुलन
General Equilibrium	सामान्य संतुलन

1.8 सन्दर्भग्रन्थ (Reference)

Ackley, Gardner,"Marcoeconomic Theory" 1961.

Allen R.G.D., "Macro-Economic Theory" 1971.

Shapiro Edward, "Marcoeconomic Analysis" 5th ed.,1984

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. समष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए यह व्यष्टि अर्थशास्त्र से किस प्रकार भिन्न है?
2. व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र एक दूसरे की प्रतियोगी नहीं वरन् पूरक है, समझाइए ।
3. (i) बचत विरोधाभास क्या है?

(ii) समष्टि अर्थशास्त्र के जनक किसे कहा जाता है ।

(iii) समष्टि अर्थशास्त्र में किन बातों का अध्ययन किया जाता है ।

4. समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ समझाइए । समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं महत्व की व्याख्या कीजिए । इसकी क्या सीमाएं हैं?

इकाई - 2

राष्ट्रीय आय -अर्थ, महत्व, माप की विधियां एवं कठिनाइयां (National Income-Meaning, Importance, Methods of Measurement and Problems)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषा

- 2.2.1 मार्शल की परिभाषा
- 2.2.2 पीगू की परिभाषा
- 2.2.3 फिशर की परिभाषा
- 2.2.4 आधुनिक परिभाषाएं एक अवधारणाएं

2.3 राष्ट्रीय आय की माप की विधियां

- 2.3.1 उत्पादन विधि
- 2.3.2 आय विधि
- 2.3.3 व्यय विधि
- 2.3.4 उत्पादन, आय एक व्यय की समानिका

2.4 राष्ट्रीय आय का महत्व

2.5 राष्ट्रीय आय के मापन में कठिनाइयां

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य (Objectives)

राष्ट्रीय आय सर्वधिक उपयोग में लिए जाने वाले समंक हैं। राष्ट्रीय आय के अध्ययन में अर्थशास्त्रियों की रूचि साइमन कुजनेट्स द्वारा 1930 में किये गए अध्ययन के बाद बढी। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- राष्ट्रीय आय की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए प्रयोग में आने वाली विभिन्न विधियों से परिचित हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय आय, समंको के महल से परिचित हो जाएंगे; एवं
- राष्ट्रीय आय की गणना में आने वाली कठिनाइयों से परिचित हो जाएंगे।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक युग में राष्ट्रीय आय के अध्ययन के प्रति रूचि बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय आय समंको को देश की अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य का सूचक माना जाता है। वर्तमान समय में पर्यावरणवादियों के बढ़ते दबाव के कारण राष्ट्रीय आय लेखांकन की नवीन पद्धतियों का विकास किया जा रहा है। इस विधि की जानकारी हम अगली इकाई में प्राप्त करेंगे। राष्ट्रीय आय के लेखे आय के चक्राकार प्रवाह पर आधारित हैं। राष्ट्रीय आय लेखों की अच्छी समझ के लिए आय के वृताकार प्रवाह को समझना आवश्यक है। अर्थव्यवस्था में किसी दी हुई अवधि में होने शला कुल उत्पादन तथा कुल व्यय प्रवाह राशियां (Flow Quantities) होती है। अर्थव्यवस्था में इन दोनों प्रवाह राशियों का प्रत्यक्ष निर्धारण कुल आर्थिक क्रियाओं के आकार द्वारा किया जाता है। अर्थव्यवस्था में कुल आर्थिक क्रियाओं के एक दिए हुवे स्तर पर बने रहने के लिए उपर्युक्त दोनों चर राशियों में साम्य होना आवश्यक है; क्योंकि इनमें असमानता होने पर अर्थव्यवस्था अस्थिर हो जाती है। देश की समस्त आर्थिक नीतियों का लक्ष्य इन दोनों चरों, कुल उत्पादन एवं कुल व्यय में साम्य स्थापित करना होता है ताकि स्थिर विकासकी दर प्राप्त हो सके।

अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उलादन के साधनों के योगदान पर निर्भर होता है। किसी दी हुई समय अवधि का कुल उत्पादन साधन स्वामियों की सहयोगी उत्पादन प्रक्रिया का प्रतिफल होता है। अर्थव्यवस्था में हम सभी की वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोक्ता तथा उत्पादन साधनों के स्वामी के रूप में दोहरी भूमिका है। इस प्रकार परिवार साधन स्वामियों के रूप में उत्पादक सेवाएं फर्मों को बेचते हैं बदले में वे वस्तुएं एवं सेवाएं प्राप्त करते हैं।

रेखाचित्र 2.1 एक सरल वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था में इन दोनों प्रवाहों के मध्य समानता को व्यक्त किया गया है।

रेखाचित्र - 2.1

एक दिं-क्षेत्र अर्थव्यवस्था में आय का वृताकार प्रवाह

हम सभी जानते हैं कि आज के युग में मुद्रा का आपक प्रयोग होने से वास्तविक प्रदाह के 'स्थान पर दोनों के मध्य मौद्रिक प्रदाह होता है। उत्पादन के साधन उनकी सेवाओं के बदले में पारिश्रमिक मुद्रा रूप में प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार फर्मों से प्राप्त वस्तुओं एवं सेदाओं के बदले कीमत के रूप में मौद्रिक भुगतान किये जाते हैं। इस प्रकार प्रवाह वास्तक्कि अथवा भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं का नहीं होकर मौद्रिक होता है। रेखाचित्र 2.2 में मौद्रिक प्रवाहों को दिखाया गया है।

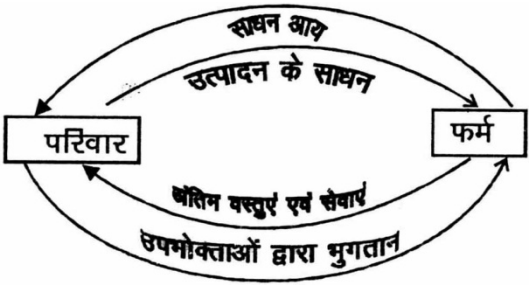

रेखाचित्र - 2.2

द्वि-क्षेत्र अथव्यवस्था में मौद्रिक प्रवाह

इस प्रकार एक सरल अर्थव्यवस्था मॉडल के आधार पर यह अवधारणा समझ में आ जाती है कि उलादन प्रवाह एवं कय प्रवाह किस प्रकार समान होते हैं। एक बार मूल बात समझ में आने के बाद हम द्वि-क्षेत्र आर्थिक मॉडल को बार क्षेत्र वाला या खुली अर्थव्यवस्था वाला मॉडल बना सकते हैं पर मूल बात बही रहती है।

एक व्यक्ति का व्यय दूसरे व्यक्ति की आय है। इस प्रकार द्वि-क्षेत्र अर्थव्यवस्था में वस्तु प्रवाह एवं आय प्रवाह बराबर होता है। इस इकाई में राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं अवधारणा से आपका परिचय कराया जाएगा। इसमें राष्ट्रीय आय माप की विभिन्न विधियों एवं राष्ट्रीय आय के महत्व एवं कठिनाइयों की बर्चा भी की जाएगी।

2.2 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition National Income)

राष्ट्रीय आय की परिभाषाओं का अध्ययन दो अलग-अलग दर्गा में बांट कर करना उचित होगा । यह वर्ग निम्नांकित है:

(अ) नव परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की परिभाषा

इस वर्ग में हम निम्नांकित तीन विद्वानों की परिभाषाओं को सम्मिलित करते हैं:

2.2.1 मार्शल की परिभाषा (Marshall's Definition)

2.2.2 पीगू की परिभाषा (Pigou's Definition)

2.2.3 फिशर की परिभाषा (Fisher's Definition)

(ब) आधुनिक दृष्टिकोण

2.2.4 आधुनिक परिभाषाएं इस वर्ग में राष्ट्रीय आय की परिभाषा करने के लिए विभिन्न अवधारणाओं को समझाया गया है। इनमें निम्नांकित अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया है।

(i) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product-GNP)

(ii) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product-NNP)

(iii) राष्ट्रीय आय (National Income-NI)

(iv) व्यक्तिगत आय (Personal Income-PI)

(v) व्यय योग्य आय (Disposable Income -DI)

अब हम इन दोनों वर्गो की परिभाषाओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.2.1 मार्शल को परिभाषा (Marshall's Definition)

मार्शल ने राष्ट्रीय आय के बारे में अपने विचार वक्त करते हुवे लिखा है, "**किसी देश के श्रम एवं पूँजी चारा प्राकृतिक साधनों को उपयोग में लेते हुवे प्रतिवर्ष भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं का एक शुद्ध योग उत्पादित करते हैं यह शुद्ध राष्ट्रीय आयआगम अथवा राष्ट्रीय लाभांश है।[1]**"

राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में मार्शल का दृष्टिकोण सरल एवं व्यापक है परन्तु इसके आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना आसान कार्य नहीं था इसमें निम्नांकित कमियां है

(i) उत्पादन वस्तुओं की भिन्नता एवं अधिकता आधुनिक युग में उत्पादित वस्तुएं एवं सेवाए इतनी अधिक एवं भिन्न-भिन्न हैं कि उनकी गणना करना कठिन है।

(ii) मूल्य मापन की बात नहीं की गई मार्शल की परिभाषा में वस्तुओं एवं सेवाओं के योग की बात की गई है। उत्पादित वस्तुओं की गणना भिन्न-भिन्न इकाइयों में की जाती है। उदाहरणार्थ दूध को लीटर में मापा जाता है, अनाज को क्विंटल में तोला जाता है तो कपड़े का माप मीटर में किया जाता है। इन भिन्न-भिन्न इकाइयों का एक समान मूल्य मापन की बात नहीं की गई अत: इनका योग कैसे किया जा सकता है।

(iii) दोहरी गणना की समस्या मार्शल के दृष्टिकोण के आधार पर यदि उत्पादन का योग ज्ञात किया जाता है तो एक वस्तु की गणना एक से अधिक जगह होने से दोहरी गणना की समस्या (Problem of Double Counting) उतन्न हो जाती है। उदाहरणार्थ जब हम कृषि क्षेत्र के उत्पादन की गणना करते हैं तो कृषि उत्पादों को सम्मिलित कर लिया जाएगा जैसे कपास, गन्ना, जूट, तिलहन, अनाज एवं बाद में औधोगिक क्षेत्र में इनके आधार पर उत्पादित माल की गणना की जाएगी जैसे कपड़ा, शक्कर, तेल आदि। इस प्रकार एक ही उत्पाद की गणना एक से अधिक जगह पर हो जाती है। यह समस्या दोहरी गणना की समस्या है।

(iv) निजी उपयोग के लिए उत्पादन राष्ट्रीय आय की गणना करने में वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन का जोड करते समय ऐसी इकाइयों की गणना की जाती है जो मण्डी या बाजार में बिकने के लिए उपस्थित होता है परन्तु बहुत अधिक हिस्सा ऐसा भी होता है जो निजी उपभोग के लिए रख लिया जाता है। ऐसे उत्पादन का रिकार्ड नहीं होता अत: राष्ट्रीय आय की गणना से यह बाहर ही रह जाता है। यही कारण है विकासशील देशों में जहां निजी उपभोग के लिए उतादन करने की परम्परा है राष्ट्रीय आय के समंक सही स्थिति का ज्ञान नहीं कराते हैं।

---

1. "The Labour and Capital of the country acting on its natural resources produce annu-allya a certain net aggregate of commodities, material or immaterial, including services of all kinds. This is true net annual income, revenue, of a country or the national dividend." Marshall.

2.2.2 पीगू की परिभाषा

राष्ट्रीय आय को परिभाषित करते हुबे प्रोएसीपीगू (Porf. A.C. Pigou) ने मार्शल की कमियों को दूर करने के उद्देश्य से मौद्रिक दृष्टिकोण सामने रखा जिससे विजातीय वस्तुओं की माप का एक सामान्य आधार प्राप्त हो गया। पीगू के अनुसार **"राष्ट्रीय आय किसी समुदाय की वास्तविक आय का वह भाग है जिसे फ्रा रूप में मापा जा सकता है और इसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित होती।"**[2]

इस प्रकार पीगू ने राष्ट्रीय आय की गणना का क्षेत्र सीमित कर दिया इसमें केवल उसी भाग का अध्ययन किया जाएगा जिसका मुद्रा के माध्यम से लेन-देन हो। पीगू की परिभाषा की एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें विदेशो से प्राप्त आय को भी सम्मिलित किया गया है, इस प्रकार मार्शल की परिभाषा जहां एक बन्द अर्थव्यवस्था के लिए है, मीरा की परिभाषा एक खुली अर्थव्यवस्था के लिए है। पीगू की परिभाषा अधिक सुविधाजनक एवं व्यावहारिक होते हुवे भी इसमें निम्नांकित कमियां है :

(1) पीगू अनावश्यक रूप से वस्तुओं एवं सेवाओ का दो अलग-अलग वर्गों में बांट देता है - प्रथम उतादन अथवा सेवा का वह भाग जिसका मुद्रा के बदले विनिमय किया जाता है एवं द्वितीय उत्पादन का वह भाग जिसका मुद्रा के बदले विनिमय नहीं किया जाता परन्तु वास्तव में पदार्थो का मूल रूप में कोई अन्तर नहीं होता चाहे उनका विनिमय हो अथवा न हो। एक स्थान पर उत्पादन का वही भाग विनिमय होने पर राष्ट्रीय आय का अंग बन जाता है एवं दूसरे स्थान पर वही भाग विनिमय न होने पर बाहर रह जाता है। उदाहरणार्थ के लिए यदि एक नौकरानी को घरेलू कामकाज के लिए रखा जाता है एवं उसे प्रतिमाह वेतन दिया जाता है तो उसका यह कार्य राष्ट्रीय आय का हिस्सा है परन्तु यदि व्यक्ति अपनी नौकरानी से शादी करले तो घरेलू कामकाज के लिए उसे वेतन नहीं मिलेगा ऐसे में राष्ट्रीय आय का अंग नहीं माना जाएगा क्योंकि अब उसे घरेलू कामकाज के बदले प्रत्यक्ष रूप में कोई भुगतान नहीं मिलेगा।

(2) पीगू की परिभाषा केबल मौद्रिक अर्थव्यवस्था में ही लाग होती है वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था में नहीं। इस प्रकार यह परिभाषा केवल विकीसत देशों के लिए उपयुक्त है जहां अधिकांश लेन-देन मुद्रा में होते हैं, विकासशील देशों के लिए यह अधिक उपयोगी नहीं है क्योंकि यहां उत्पादन का एक बड़ा भाग स्व-उपभोग के लिए रख लिया जाता है उसे मुद्रा के बदले बेचा नहीं जाता।

इन कमियों के बाबजूद पीगू की परिभाषा के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना का व्यापक प्रयोग होता है।

---

2. "National income is that part of objective income of the community, including ofcourse income derived from abroad which can be measured in money" Pigou.

2.2.3 फिशर की परिभाषा

राष्ट्रीय आय की परिभाषा में फिशर का दृष्टिकोण मार्शल एह पीगू से भिन्न है। मार्शल एवं पीगू उत्पादन दृष्टिकोण अपनाते हैं जबकि फिशर का दृष्टिकोण उपभोग पर आधारित है। फिशर के अनुसार **"राष्ट्रयि लाभाश अथवा आय में वे सेवाएं सम्मिलित होती हैं जो अंतिम उपभोक्ताओं को भौतिक वातावरण अथवा मानवीय प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इस प्रकार एक पियानों (Piano) अथवा एक ओवरकोट (Overcoat) जो मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया हैमात्र इस वर्ष की आय का भाग नहीं है बल्कि पूँजी में वृद्धि है। इन वस्तुओं हारा इस वर्ष प्रदान की गई सेवाएं ही राष्ट्रीय आय का भाग है ।"[3]**

प्रो. फिशर द्वारा दी गई परिभाषा अधिक वैज्ञानिक व व्यावहारिक एवं तर्कसंगत है। उत्पादन का अंतिम उद्देश्य वास्तव में उपभोग ही है। उपभोग का स्तर देश के निवासियों के आर्थिक कत्याण को व्यक्त करता है। इस परिभाषा की निम्नांकित आलोचनाएं की जाती है:

(1) **जीवनकाल का अनुमान लगाना कठिन** टिकाऊ वस्तुओं के जीवनकाल का सही-सही अनुमान लगाना कठिन होता है क्योंकि इन्हें लम्बी अवधि तक काम में लिया जा सकता है। यदि एक ओवरकोट 10 वर्ष तक काम में लिया जाता है तो उसका 1/10 भाग प्रतिबर्ष राष्ट्रीय आय में जोडना चाहिए। परन्तु इसमें कठिनाई होती है क्योंकि टिकाऊ वस्तुओं की उम्र उनके सही रख-रखाब पर निर्भर होती है। 10 वर्ष तक काम में आने वाला ओवरकोट 15 वर्ष भी चल सकता है जबकि कोई अन्य व्यक्ति उसे 5 वर्ष में ही खराब कर सकता है। ऐसी स्थिति में वस्तु का सही-सही जीवनकाल का अनुमान लगाना कठिन कार्य है।

(2) **पुरानी बच्चों का पुन: विक्रय** दूसरी कठिनाई पुरानी वस्तुओं के पुन: विक्रय से उल्पन्न होती है। एक वस्तु कई उपभोक्ताओं के हाथों से गुजरती है ऐसे में सही कीमत एवं वास्तविक जीवनकाल का अनुमान लगाना कठिन कार्य है। स्थायी उपयोग के वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होती रहती है। कमी-कभी उपभोक्ता स्थाई उपयोग की वस्तु को वर्षो तक उपयोग में लेकर खरीदे गये मूल्य से भी ऊँची कीमत में उसे पुन: बेच देता है, ऐसे में मूल्य हास के स्थान पर पूँजी लाभ प्राप्त हो जाता है। इस परिभाषा के अनुसार उपभोग की गणना करना उत्पादन की गणना करने के मुकाबले अधिक कठिन है। इन कठिनाइयों के कारण फिशर के दृष्टिकोण का व्यावहारिक उपयोग सम्भव नहीं है।

2.2.4 आधुनिक परिभाषाएं एवं अवधारणाएं

---

3. "The national dividend or income consists solely of services as received by ultimate con-sumers, whether from their material or from their human environments. Thus, a piano or an overcoat made for me this year is not a part of this year's income, but an addition to the capital. Only the services renderd to me during this year by these things are income." Fisher

आधुनिक अर्थशास्त्रियों में कुजनेट्स (Kuznets), स्टुडन्सकी (Studenski), सेम्युल्सन (Samuelson) आदि विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाएं सम्मिलित की जाती है। प्रोकुजनेट्स के अनुसार **"राष्ट्रयि आय वस्तुओं एवं सेवाओं की वह विशुद्ध उत्पति है जो अंतिम उपभोक्ताओं के हाथों में पहुँचती है। अथवा देश के पूँजीगत माल के स्टाक में वृद्धि करती है"** पाल स्टुडन्सकी ने लिखा है, **"राष्ट्रीय आय एक वर्ष में किसी अर्थव्यवस्था में उपभोग अथवा उत्पादन के लिए जो वस्तुएं एवं सेवाएं उत्पन्न होती है उनकी मौद्रिक कीमत को जोड़ है"** प्रो.सेम्युल्सन ने राष्ट्रीय आय को परिभाषित करते हुदे कहा है, "**यह वह नाम है जो कि हम एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं की वार्षिक गति के मौद्रिक माप के लिए देते हैं"** राष्ट्रीय आय परिभाषा में भारत की राष्ट्रीय आय समिति का दृष्टिकोण भी महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार**, "राष्ट्रीय आय के अनुमान में बिना दोहरी गणना के एक दी हुई अवधि में उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा का माप किया जाता है।"** राष्ट्रीय आय की आधुनिक अवधारणाओं में निम्नांकित माप ज्ञात किए जाते हैं:

(1) सकल राष्ट्रयि उत्पादन (GNP)

सकल राष्ट्रीय उत्पाद किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष में उत्पादित समस्त अंतिम वस्तुओं एवं सेशओं का बाजार मूल्य है। यह एक आधारभूत सामाजिक लेखा माप है। इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय सम्मिलित होती है। यह एक मौद्रिक माप है इसमें मध्यवर्ती वस्तुओं (Intermediate Goods) जो फर्मों से फर्मों को प्रवाहित होती है, जिन्हें फर्म कच्चे माल के रूप में खरीदती है एवं जो अंतिम उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग में नहीं ली जाती इसमें सम्मिलित नहीं होती है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में वे वस्तुएं एवं सेवाएं सम्मिलित नहीं होती जो इस वर्ष के उत्पादन का भाग नहीं है। जो सेवाएं आर्थिक उद्देश्यों के लिए नहीं की जाती उन्हें भी सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) का भाग नहीं माना जाता है। ऐसे उत्पाद जिन्हें बाजार में बिक्री हेतु नहीं भेजा जाता उनका आरोपित मूल्य (Imputed) सम्मिलित किया जाता है। अर्थथवस्था के सभी क्षेत्रों के भौतिक उत्पादन को बाजार कीमतों से गुणा करके उतादन को मौद्रिक मूल्य ज्ञात किया जाता है यही सकल राष्ट्रीय उत्पाद है

$$GNP = Current\ \text{Pr}ice \times Quantity\ \text{Pr}oduced$$

(2) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP)

राष्ट्रीय आय की दूसरी महत्वपूर्ण अवधारणा विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद से एक वर्ष की अवधि में मशीनों की टूटफूट एवं घिसावट का अनुमान लगाकर उसको घटा दिया जाता है। कुछ अर्थशास्त्री घिसावट (Depreciation) के स्थान पर पूँजी-उपभोग (Capital Consumption) शब्द का प्रयोग उचित मानते हैं। शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद देश की उत्पादन क्षमता का सही सूचक है। शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना करने में देश के पर्यावरण में उत्पन्न संकट का ध्यान नहीं रखा जाता है। वर्तमान समय में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इस पर काफी विचार विमर्श हो रहा है। पर्यावरण पर बढ़ते संकट के कारण हरित लेखांकन (Green Accounting) की अवधारणा आई है। इसकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

NNP =GNP- Depreciation Charges (or Capital Consumption)

(3) राष्ट्रीय आय (NI)

किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए उत्पादन के साधनों का सहयोग लेना पड़ता है। सभी साधनों के उनके योगदान के अनुरूप भुगतान अथश पारिश्रमिक प्राप्त होता है। इन साधनों की शुद्ध आय के योग को साधन लागत पर राष्ट्रीय आय (National Income at Factor Cost) कहते हैं। इसमें शुद्ध ब्याज, शुद्ध लाभ, शुद्ध मजदूरी एवं शुद्ध लगान आदि 'सम्मिलित होता है। राष्ट्रीय आय लागतों की जोड है। इसमें सरकार द्वारा लगाए अप्रत्यक्ष कर सम्मिलित नहीं किये जाते। वस्तुत: देश के उत्पादन साधनों द्वारा अर्जित आय होने से यह उत्पादन क्षमता की सही-सही परिचायक है।

Net National Income at Factor Cost =NNP-Indirect Taxes

(4) व्यक्तिगत आय (PI)

राष्ट्रीय आय का वितरण उत्पादन साधनों के मध्य किया जाता है। पीटरसन ने लिखा है, "विभिन्न साधनों को जो कुल आय प्राप्त होती है, जिसमें हस्तान्तरण भुगतान भी सम्मिलित है उसे व्यक्तिगत आय कहते हैं"। राष्ट्रीय आय में संसाधनों द्वारा अर्जित आय में अवितरित निगम लाभांश, निगम आयकर एवं सामाजिक बीमा अंशदान की राशि वितरित नहीं होती। इस प्रकार निगम समस्त लाभांश भी अंशधारकों में बितीरत नहीं करते अत: यह बाक्कीत आय का भाग नहीं है।

PI =NI- Corporate income tax -Social security Contribution-undistributed

(5) प्रयोज्य आय (Disposable Income -DI)

समस्त व्यक्तिगत आय व्यय के लिए नहीं होती क्योंकि आय में से पहले आयकर का भुगतान करना पडता है। अत: व्यक्तिगत आय में से आयकर घटाने के बाद शेष आय को ही प्रयोज्य आय कहा जा सकता है। प्रयोज्य आय के दो भाग हो जाते हैं एक भाग उपभोग पर कय किया जाता है एवं दूसरा बचत कर लिया जाता है।

DI =PI -Direct Tax

क्या यह सम्मद है कि व्यक्तिगत आय से प्रयोज्य आय अधिक हो? ही यदि बय पुरानी बचतों में सें किया जाय तो यह सम्भव है।

बोध प्रश्न -01

1. मार्शल की परिभाषा एवं पिगू की परिभाषा में किस बात का अन्तर है।
2. मार्शल एवं पिगू की परिभाषाओं एवं फिशर परिभाषा में क्या अन्तर है?
3. सकल राष्ट्रीय उत्पाद एक मौद्रिक माप है क्यों?
4. क्या अप्रत्यक्ष कर आय का भाग है?

2.3 राष्ट्रयि आय के माप की विधियां (Methods of Measurement of National Income)

2.3.1 उत्पादन विधि

आप पहले ही जान चुके हैं कि वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं आय सृजन साथ-साथ होता है एवं यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। प्राप्त आय पुन: उन्हीं वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद में व्यय होती है। राष्ट्रीय आय को मापने की तीन विधियों में उत्पादन, आय एवं व्यय की माप की जाती है। यहां पर विधार्थियों को यह जान लेना चाहिए कि यह रास्ते चाहे अलग-अलग हो परन्तु इनसे प्राप्त होने वाले राष्ट्रीय आय की समंक समान होंगे।

व्यावसायिक फर्में उत्पादन का कार्य उत्पादन के साधनों के स्वामियों से उत्पादक सेवाएं खरीद कर प्रारम्भ करती है। इस प्रकार परिवार जो उत्पादन साधनों के स्वामी हैं अपनी सेवाएं फर्मों को बेचते हैं एवं बदले में आय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार जब व्यक्ति फर्में में काम करता है तो उसे उत्पादक कहते हैं एवं सायंकाल जब बही व्यक्ति आफिस से अथवा उद्योग से घर पर लौट आता है तो वह उपभोक्ता बन जाता है। इस प्रकार उत्पादक एवं उपभोक्ता अलग-अलग व्यक्ति नहीं बल्कि एक ही व्यक्ति की अलग-अलग भूमिका है। राष्ट्रीय आय की उत्पादन विधि में हम सूची गणना विधि (Inventory Method) औधोगिक उद्गम पद्धति (Industrial Origin Method) तथा वस्तु सेवा विधि (Commodity Service Method) के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों में जैसे कृषि क्षेत्र, उद्योग क्षेत्र, यातायात, बैंकिग, सेवा क्षेत्र, संचार क्षेत्र आदि में बांट दिया जाता है। इन समस्त क्षेत्रों में एक वर्ष की अवधि में जो उत्पादन होता है उसके विशुद्ध मूल्य को जोडकर कुल उतादन ज्ञात किया जा सकता है। कुल मूल्य को जोडते समय दोहरी गणना से बचा जाता है।

कुल मूल्य को बाजार कीमत पर जोड़ा जाता है। कुल उत्पादन ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त बर्णित सभी क्षेत्रों में अंतिम उआदन के आँकडे प्राप्त किए जाते हैं एवं उन्हें उनके बाजार मूल्य से गुणा करके उत्पादन का कुल मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है। किसी एक उद्योग के उत्पादन का विशुद्ध मूल निकालने के लिए उत्पादक की उत्पादन के कच्चे माल की खरीद का मूल्य कुल मूल्य से घटा दिया जाता है। इस प्रकार हम प्रत्येक उद्योग समूह या क्षेत्र द्वारा जोडी गई मूल्य वृद्धि को सम्मिलित करते हैं। अभी तक हमने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लेन-देन की चर्चा की जिसे मध्यवर्ती वस्तुएं (Intermediate Goods) कहते हैं यह वस्तुएं उद्योग कें लिए लागत है। अत: उत्पादन के मूल की गणना में हम केवल 'अंतिम उत्पाद' के मूल्य को ही सम्मिलित करते हैं इससे दोहरी गणना से बचा जाता है। आजकल विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाएं खुली अर्थव्यवस्थाएं हैं जो अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार करते हैं इसमें यह भी सम्मद है कि कोई देश विदेशों से भी आय अर्जित करें। इसलिए इस उत्पादन विधि या मूल्य वृद्धि विधि (Value Added Method) से राष्ट्रीय आय की गणना करते समय विदेशों से प्राप्त शुद्ध आयका अनुमान लगाकर उसे राष्ट्रीय आय में जोडा जाता है। विदेशों से प्राप्त शुद्ध

आय की गणना करने के लिए कुल निर्यात मूल्य में से कुल आयात के मूल्य को घटा लिया जाता है।

मूल्य वृद्धि द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करते समय कुछ सावधानिया रखनी चाहिए जैसे-

- सरकार उद्यम व परिवारों द्वारा अचल पूँजी का स्व-लेखा (Own - account) पर उत्पादन।
- स्व -उपभोग (Own - Consumption) के लिए उत्पादन।
- मालिकों द्वारा खुद काबिज (Self -occupied) मकानों का किराया।

इन सभी का मूल्य शात कर राष्ट्रीय आय अनुमानों में जोडना चाहिए। इस प्रकार राष्ट्रीय की यह विधि काफी जटिल एवं लम्बी है।

2.3.2 आय विधि

राष्ट्रीय आय के गणना की इस प्रणाली को आय प्राप्त प्रणाली (Income Received Method), आय प्रदाह प्रणाली (Earning- Flow Method) अथश वर्गीकृत आय विधि भी कहते हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों की प्राप्त आय का योग किया जाता है। उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान परिवार जब उत्पादक सेवाएं एवं साधन फर्मों को देते हैं तो व्यावसायिक फर्में उसके बदले उन्हें आय उपलब्ध कराती है। यह माना जाता है कि उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन के मूल्य के बराबर आय का सृजन भी होता है। यह मानते हुबे कि आँकडे में कोई कमी या असंगतता नहीं है अथवा अनुमान लगाने की कार्यविधि में कोई गलती नहीं है आय विधि से प्राप्त समंक उत्पादन मूल्य के बराबर होने चाहिए अर्थात् सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) एवं सकल राष्ट्रीय आय (GNI) के अनुमान एक समान होते है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय का आंकलन या तो उत्पादकों द्वारा साधनों की आय भुगतान के रूप में किया जाता है। इसे आय भुगतान विधि कहा जाता है। आय विधि, उलादन के प्राथमिक साधनों को एक लेखा वर्ष में दी गई उत्पादक सेवाओं के बदले में दिये गये भुगतान पक्ष की और से, राष्ट्रीय आय की गणना करती है। इस विधि द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करते समय निम्नलिखित आयों को जोडा जाता है-

(i) कर्मचारियों का पारिश्रमिक

(ii) ऋण पत्रों पर काज (सरकारी बाण्ड्स को छोड़कर)

(iii) सभी प्रकार के लाभ उसमें संयुक्त पूँजी कम्पनियों के अवितरित लाभांश भी सम्मिलित होते हैं जिन्हें अंशधारकों में वितरित नहीं किया जाता।

(iv) सभी प्रकार का किराया स्वयं काबिज मकान का अनुमानित किराया लिया जाता है।

(v) स्वनियोजित साधनों का आरोपित बाजार मूल्य भी जोड़ा जाता है।

इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि अवैध तरीकों से कमाई गई आय को सम्मिलित नहीं किया जाता। इसी प्रकार आकस्मिक लाभ जैसे लाटरी में जीती गई राशि भी आय में सम्मिलित नहीं की जाती। यदि कोई अक्ति अपनी पुरानी वस्तुएं बेचकर आय प्राप्त करता है तो यह आय भी सम्मिलित नहीं की जाती हे।

इस प्रणाली का मुख्य लाभ यह है कि इसमें दोहरी गणना की सम्मावना कम रहती है। इस विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करने में कुछ कठिनाइयां हैं :

(i) आय का भुगतान एवं प्राप्ति में वर्गीकरण करने में कठिनाई होती है।

(ii) सैनिकों के वेतन को आय में सम्मिलित किया जाता है परन्तु उन्हें मिलने वाली सुविधाओं को छोड दिया जाता है।

(iii) मिश्रित आय के आवंटन में भी कठिनाई होती है।

(iv) अवितीरत लाभों का सही अनुमान लगाने में कठिनाई होती है इसी प्रकार स्व-नियोजित अक्तियों की आय को लेकर भी कठिनाई होती है।

(v) माल सूची के मूल्यों के सम्बन्ध में भी कठिनाई होती है। मालसूची का वर्तमान मूल्य लेखों में प्रविष्ट मूल्य से कम या अधिक हो सकता है जिसके फलस्वरूप साधन आय का ठीक प्रकार से निर्धारण नहीं हो पाता।

बोध प्रश्न -02

1. मूल्य संवर्द्धन विधि की एक उदाहरण देकर समझाइए।
2. अंतिम वस्तु किसे कहते हैं?
3. मध्यवर्ती वस्तु किसे कहते है?
4. आय विधि में प्रमुख घटक कौन - कौन से हैं?

2.3.3 व्यय विधि

इस विधि द्वारा राष्ट्रीय आय अनुमान लगाने के लिए एक वर्ष के दौरान वस्तुओं एवं सेवाओं पर किए गये समस्त व्ययों को जोड़ा जाता है। क्योंकि यह माना जाता है कि व्यक्ति अपनी आय को या तो उपभोग पर अव करता है अथवा निदेश पर व्यय करता है। परिवार, फर्में एवं सरकार अंतिम उपभोग के लिए बाजार से वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय करती है। यह व्यय देश के अतिरिक्त आयातित वस्तुओं के क्रय पर भी किया जा सकता है। इस विधि द्वारा सकल राष्ट्रीय व्यय (GNE) का अनुमान 'करते हैं। विदेशी पर्यटक भी देश में व्यय करते हैं। सकल राष्ट्रीय व्यय से प्राप्त राष्ट्रीय आय समंक भी सकल राष्ट्रीय उत्पाद व सकल राष्ट्रीय आय के समंकों के बराबर होंगे। सकल राष्ट्रीय श्रय से राष्ट्रीय आय अनुमान लगाने में निम्नलिखित चार प्रकार के कय सम्मिलित किए जाते हैं -

(i) निजी अंतिम उपभोग पर व्यय

(ii) सरकारी अंतिम उपभोग पर व्यय

(iii) कुल घरेलू निजी निवेश व्यय

(iv) शुद्ध विदेशी निदेश व्यय

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह विधि आसान होने के बाबजूद भी व्यावहारिक रूप से अन्य विधियों के अपेक्षा अधिक कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यय भी अलग-अलग होते हैं जैसे टिकाऊ वस्तुओं पर थय, एकल उपभोग वस्तुओं पर व्यय, सेवाओ पर कय इन सभी को जोड़कर सही अनुमान लगाना कठिन है। वक्ति अपने व्यय को गुपा रखाना चाहते हैं एवं कभी-

कभी सही-सही हिसाब भी नहीं रखते है। इसी प्रकार इस विधि में सरकारी थय को भी सम्मिलित करना पडता है। इसमें हस्तान्तरण भुगतान (Transfer Payment) को सम्मिलित नहीं करते हैं। वस्तुओं एवं सेवाओं का शुद्ध निर्यात भी राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाता है।

2.3.4 उत्पादन, आय व व्यय की समानिका

हम राष्ट्रीय आय की गणना अथवा माप करने के विभिन्न विधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं। राष्ट्रीय उत्पादन के रूप में उत्पादन साधनों के सहयोग से जो उत्पादन प्रक्रिया संचालित की जाती है इसमें सहयोग के लिए पारिश्रमिक के रूप में उत्पादन के साधनों को आय मिलती है अत: उत्पादन का कुल मूल्य के बराबर साधनों की आय होती है। यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उलादन के बार साधनों का पारिश्रमिक तो सदैव धनात्मक होता है जिसमें भूमि का लगान, श्रम की मजदूरी, पूँजी का व्याज, प्रबन्ध का वेतन सम्मिलित है। उत्पादन का पाँचवां साधन उत्पादन की जोखिम उठाता है अर्थात् वह साहसी है, साहसी का पारिश्रमिक अनिश्चित होता है यदि सब कुछ सही रहे तो साहसी लाभ कमाता है अर्थात् पारिश्रमिक धनात्मक होगा परन्तु यदि उसके निर्णय गलत हो तो उसे घाटा होगा यह ऋणात्मक पारिश्रमिक है। इस प्रकार सभी कुछ बचा खुचा साहसी को मिलता है। इसलिए उत्पादन दृष्टिकोण की माप (GNP) एवं आयों का योग सकल राष्ट्रीय आय GNI) सदैवा बराबर होते हैं। इसी प्रकार कय विधि से गणना करने पर हम सकल राष्ट्रीय व्यय (GNE) का अनुमान लगाते हैं। यह अनुमान भी पहली दो माप के बराबर ही होती है। सूत्र रूप में-

GNP ≡GNI ≡GNE एक समानिका है।

आय एवं व्यय के बीच समानिका का कारण मुख्य रूप से यह है कि आय का माप वास्तव में किए गए भुगतान के आधार पर नहीं करके, वर्ष भर में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए किये गये दावो के रूप में करते हैं। इसी प्रकार समानिका इसलिए भी होती है कि हम वास्तविक व्यय का माप नहीं करके उत्पादन को खरीदने के लिए क्या व्यय किया जाएगा इसे मापा जाता, इसी कारण उत्पादन व व्यय बराबर हो जाता है। अर्थशास्त्रियों की रूचि समानिका के स्थान पर प्रत्येक व्यय के वर्गीकरण में है जिससे कई महत्वपूर्ण नीति निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

2.4 राष्ट्रीय आय का महत्व (Importance of National Income)

राष्ट्रीय आय समंक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करते हैं। आजकल राष्ट्रीय आय आँकड़ों को अर्थव्यवस्था के लेखे समझा जाता है जिसे सामाजिक लेखा (Social Accounts) कहते हैं। जिस प्रकार रोग की जानकारी के लिए वैध रोगी की नाड़ी देख कर

स्थिति का अनुमान लगाता है उसी प्रकार आर्थिक नीति निर्माता राष्ट्रीय आय समंको के आधार पर देश के आर्थिक स्वास्थ्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति के साथ-साथ लोगों के रहन सहन स्तर आर्थिक कल्याण तथा आर्थिक नीतियों

का निर्धारण राष्ट्रीय आय के आकार पर निर्भर करता है। राष्ट्रीय आय का महल निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) **देश की उत्पादक शक्ति का परिचायक है** सकल राष्ट्रीय उत्पाद अर्थव्यवस्था की उत्पादक शक्ति पर प्रकाश डालता है। इसमें वृद्धि देश के आर्थिक विकास की सूचक मानी जाती है। सकल राष्ट्रीय उत्पादन अथवा आय की गणना के फलस्वरूप सरकार को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों यथा - कृषि, उद्योग, खनन, यातायात, बैंकिग, बीमा सामाजिक सेवाएं आदि के योगदान का ज्ञान हो जाता है। किस क्षेत्र का उत्पादन तीव्र गीत से बढ़ रहा है, किस क्षेत्र का विकास धीमा हो रहा है। यह समस्त जानकारी मिल जाती है।

(2) **आर्थिक निंयोजन का आधार** राष्ट्रीय आय समंक देश की योजनाओं का आधार स्तम्म होते हैं। आर्थिक नियोजन के लिए कुल उत्पादन, बचत, निवेश, उपभोग आदि आकड़े आवश्यक हैं। इसके अभाब में नियोजन सम्भव नहीं होता है।

(3) **राष्ट्रीय आय के स्रोतों की जानकारी** राष्ट्रीय आय का वितरण किस प्रकार हो रहा है यह जानकारी भी हमें विभिन्न उत्पादक बगों की आय से होती है। यदि राष्ट्रीय आय के वितरण में असमानता है तो उसे दूर किया जा सकता है। यदि राष्ट्रीय आय में मजदूरी का हिस्सा कम व लाभ का अधिक है तो यह इस बात का सूचक है कि देश में गरीबी विधमान है।

(4) **देश की सम्पति एवं देन-दारिंयों की जानकारीं** देश में उत्पादक पीरसम्पीतयों की जानकारी भी राष्ट्रीय आय समंको के अध्ययन से प्राप्त होती है। दो देशों की उत्पादन क्षमता की तुलना का यह अच्छा आधार है।

(5) **दीर्घकालीन प्रवृतियों का जानकारी** राष्ट्रीय आय समंकों का संकलन कालश्रेणी (Time Series) के आधार पर उपलब होने से दीर्घकालीन उत्पादन प्रवृतियों उच्चावचनों एवं आपार चक्रों की जानकारी मिलती है। अर्थव्यवस्था में स्थिरता एवं अस्थिरता का ज्ञान हो जाने से नीति-निर्माण में मदद मिलती है।

(6) **आर्थिक नीति-निर्माण में सहायक** देश के आर्थिक विकास के लिए कई प्रकार की आर्थिक नीतियां बनाई जाती है। आय नीति, मौद्रिक नीति, मुद्रा प्रसार, ब्याज, निवेश दर, आयात-निर्यात व्यापार नीति, कर नीति इन सभी के लिए राष्ट्रीय आय समंक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

(7) **आर्थिक कल्याण का सूचक** राष्ट्रीय आय के आँकड़े देश के आर्थिक कल्याण की माप कहे जाते हैं। यदि दीर्घ अवधि में देश की सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो रही हो तो अर्थशास्त्री इसे राष्ट्रीय कत्याण में वृद्धि मानते हैं। यदि किसी देश की राष्ट्रीय आय अधिक है तो वहां के निवासियों का आर्थिक कत्याण का स्तर भी ऊँचा होगा। राष्ट्रीय आय में जनसंख्या का भाग देकर हम प्रति व्यक्ति आय ज्ञात कर सकते हैं। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ यदि प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ रही है तभी इसके विकास एवं आर्थिक कल्याण का सूचक माना जाता है।

(8) **आर्थिक अवरोधों की जानकारी** राष्ट्रीय आय समंकों से न केबल राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति एवं विकास की स्थिति का पता चलता है बल्कि इससे आर्थिक विकास के मार्ग की रूकावटों एवं अवरोधों का भी ज्ञान हो जाता है। एक बार आर्थिक श्किास में बाधक तत्वों की जानकारी मिलने पर इसका ईलाज करना भी आसान हो जाता है।

(9) **अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं में अनुदान का आधार** राष्ट्रीय आय समंक क्योंकि देश की आर्थिक स्थिति का द्योतक होते हैं अत: विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं में राष्ट्र के योगदान को निश्चित करने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक जैसी संस्थाओं में अंशदान का आधार यह आँकडे होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन यह स्पष्ट कर देता है कि राष्ट्रीय आय समंकों का संकलन, अध्ययन एवं निर्वचन प्रत्येक देश के लिए महत्वपूर्ण है।

2.5 राष्ट्रीय आय के मापन में कठिनाइयां (Difficulties in Measurement 0f National Income)

राष्ट्रीय आय की गणना करना सरल कार्य नहीं है। इसकी गणना करने में निम्नलिखित सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक कठिनाइयां होती है।

(1) **दोहरी गणना की समस्या** राष्ट्रीय आय की गणना में सबसे बडी चुनौति दोहरी गणना को रोकना है। आधुनिक समय में उत्पादन प्रक्रिया इतनी घुमाबदार एवं टेढ़ी हो गई है कि या पता लगाना कठिन है कि इसमें कौनसा कच्चा माल प्रयुक्त हुआ है एवं उसको कहां-कहां गिन लिया गया है। इस वजह से एक वस्तु की गणना एक से अधिक जगह हो जाती है। यद्यपि अर्थशास्त्री मूल्य संवर्द्धन प्रणाली (Value Added Method) का प्रयोग कर एवं अंतिम वस्तुओं के मूल्य को लेने की सलाह देते हैं परन्तु कठिनाई यह है कि अंतिम वस्तु कौनसी है इसका सही-सही अनुमान लगाना भी एक दुष्कर कार्य है।

(2) **राष्ट्र की परिभाषा** राष्ट्रीय आय में राष्ट्रीय शब्द भी परेशानी का कारण है संकुचित अर्थ में राष्ट्र एक बन्द अर्थव्यवस्था है एवं केवल इसके भीतर रहने वाले व्यक्तियों की आय की ही गणना की जानी चाहिए। बल्कि दास्तव में राष्ट्रीय आय में विदेश में रहने वाले नागरिकों को प्राप्त होने बाली आय भी जोडी जाती है। अत: यह समस्या उत्पन्न होती है कि कौनसी आय को लिया जाय एवं किसे छोडा जाय।

(3) **माप की विधियों का चयन करने में कठिनाई** राष्ट्रीय आय की गणना करने की तीन वैकल्पिक विधियां हैं इनमें देश के लिए कौनसी विधि उपयुक्त है? किस प्रणाली को अपनाया जाय? कौनसी विधि श्रेष्ठ है? यह सर्वमान्य नहीं है। अत: गणना में एक से अधिक प्रणाली को काम में लिया जाता है।

(4) **कीमतों के चयन की समस्या** राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए उत्पादन एवं मूल्यों को गुणा किया जाता है। प्रश्न यह है कि कीमतों का चयन किस आधार पर किया जाय। कीमत क्या लागत मूल्य के आधार पर ही ली जाय? अथबा बाजार में

थोक मूल्य लिए जाय अथव खुदरा मूल्य ठीक रहेंगे इस बारे में एक मत नहीं है। बाजार में वस्तु की कीमत में सरकार द्वारा लगाए गए कई प्रकार क अप्रत्यक्ष कर सम्मिलित होते हैं। इसलिए यह परेशानी होती है कि मूल्यांकन किस आधार पर किया जाय।

(5) **अपर्याप्त एवं अविश्वासनीय समंक** राष्ट्रीय आय के समंकों का संकलन करने में यह भी कठिनाई आती है कि व्यक्ति अपनी आय के आँकडे नहीं रखते एवं मांगने पर झूठे आँकड़े देते हैं। विकासशील देशों में विशेष रूप से स्व-नियोजित व्यक्ति अपनी आय के सही-सही आँकड़े नहीं रखते। इस प्रकार अपर्याप्त एवं विश्वसनीय आँकड़ों के आधार पर राष्ट्रीय आय का सही-सही अनुमान लगाना एक कठिन कार्य है।

(6) **अमौद्रिक लेन-देन** राष्ट्रीय आय की गणना करने में वस्तु विनिमय अथवा अमौद्रिक क्षेत्र समस्या उत्पन्न करता है। विकासशील देशों में किसान अपने उत्पादन को स्वउपभोग के लिए सुरक्षित रख लेता है। इसे मण्डी में बेचने के लिए नहीं भेजा जाता एवं इसका क्रय विक्रय नहीं होता। इस स्थिति में उत्पादन के मूल्य का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। यद्यपि इस समस्या के समाधान हेतु स्वउपमोग की वस्तुओं का आरोपित बाजार मूल्य लगाकर मौद्रिक अनुमान लगाया जाता है परन्तु बहुत बडी समस्या यह है कि उत्पादन की भौतिक मात्रा का भी सही-सही अनुमान ज्ञात करना कठिन होता है।

इसी प्रकार कई संगठन अपने कर्मचारियों एवं मजदूरों को बेतन के साथ-साथ कई प्रकार के भुगतान माल के रूप में करते हैं। जैसे मुक्त भोजन, पोशाक, जूते आदि दिए जाते हैं इनका मौद्रिक मूल्य क्या लगाया जाय इस बारे में कठिनाई होती है।

(7) **गैर-कानूनी क्रियाएं** राष्ट्रीय आय की गणना में गैर-कानूनी क्रियाओं से अर्जित आय सम्मिलित नहीं की जाती है। गैर-कानूनी क्रियाओं में बे सभी क्रियाएं आती है जो कानून द्वारा प्रतिबन्धित होती है जैसे जुँआ, तस्करी, शराब, वैश्यावृति, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, विदेशी मुद्रा तस्करी, मिलाबटी सामान बनाना व बेचना इत्यादि। यद्यपि इन सभी क्रियाओं की खरीद-बिक्री होती है तथापि ये समाज के लिए अनुपयोगी हैं। जिन देशों में जुँआघर, वैश्यावृत्ति वैध है उनकी आय राष्ट्रीय आय में जोडी जाती है।

(8) **व्यावसायिक विशिष्टीकरण** अल्प विकसित देशों में व्यावसायिक विशिष्टीकरण वैज्ञानिक आधार पर नहीं होता है। इन देशों के नागरिक जीविकोपार्जन हेतु एक से अधिक क्रियाएं करते हैं। राष्ट्रीय आय की गणना करते समय किन क्रियाओं की आय जोड़ी जाय यह समस्या है।

मिश्रित आय होने पर व्यक्ति कुछ क्रियाओं द्वारा अर्जित आय व्यक्त करते हैं तो कुछ क्रियाओं की आय छुपा लेते हैं।

(9) **पूँजी लाभ** राष्ट्रीय आय में उन्हीं वस्तुओं एवं सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका देश के उत्पादन साधन एक वर्ष की अवधि उत्पादन में करते हैं। पूँजी लाभ यद्यपि व्यक्ति की आय है परन्तु यह चालू आर्थिक क्रिया से उत्पन्न आय नहीं है

अत: पूँजीलाभ (Capital Gain) एवं पूँजी हानि (Capital Loss) राष्ट्रीय आय की गणना से बाहर रख जाते हैं।

(10) **मूल्य चक्र** राष्ट्रीय आय की गणना करते समय शुद्ध राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए पूँजी उपभोग (Capital Consumption) अथवा घिसावट कय को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से घटा दिया जाता है परन्तु समस्या चालू मूल्य हास के अनुमान की है। मशीनों की कीमते बढ़ती रहती है, उनकी उम्र का सही अनुमान भी लगाना कठिन है। फर्में मशीनों की प्रत्याशित आयु के लिए मूल्य लागत पर मूल्य हास की गणना करती है। इससे समस्या का समाधान नहीं होता क्योंकि कीमते प्रतिवर्ष बदलती रहती है।

(11) **सार्वजनिक निवेश एवं सार्वजनिक व्यय में भेद करना कठिन** सरकार द्वारा प्रतिवर्ष देश के विकास कार्यो पर व्यय किया जाता है जैसे-सड़के, यातायात, रोशनी, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, कानून अबस्था इत्यादि। सार्बजनिक कय कौनसा है एवं सार्वजनिक निवेश कौनसा है? यह भेद करना एक कठिन कार्य है।

(12) **अशिक्षा एवं अज्ञानता** व्यक्ति अशिक्षित हो तो राष्ट्रीय आय समंकों का महल नहीं समझते हैं। परिणाम स्वरूप प्रगणकों को गलत सूचनाएं देते हैं। इस कारण राष्ट्रीय आय के सही आँकड़े उपलव्य नहीं होते।

2.6 सारांश (Summary)

राष्ट्रीय आय की आधुनिक अवधारणा में राष्ट्रीय आय का कोई एक सर्वमान्य माप ज्ञात नहीं किया जाता बल्कि अलग-अलग उद्देश्यों के लिए अलग-अलग अनुमान ज्ञात किये जाते हैं। सकल राष्ट्रीय आय की विभिन्न धारणाओं को सारांश रूप में हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं-

1. सकल राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय आय = सकल राष्ट्र व्यय।
2. चालू कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) = साधन लागत पर (GNP) + अप्रत्यक्ष कर-अनुदान।
3. चालू कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) = बाजार कीमतों पर (GNP) - मूल्य हास या पूँजी उपभोग भत्ता।
4. साधन लागत पर NNP या राष्ट्रीय आय NI = बाजार कीमतों पर NNP - अप्रत्यक्ष कर - अनुदान।
5. शुद्ध घरेलू उत्पाद Net Domestic Product -NDP) = बाजार कीमत पर NNP - विदेश से शुद्ध साधन आय।
6. व्यक्तिगत आय (PI) = साधन लागत पर NNP + हस्तान्तरण भुगतान + विदेश से हस्तान्तरण + अप्रत्यशित लाभ + विदेश से शुद्ध साधान आय + सार्वजनिक ऋण पर ब्याज एवं उपभोक्ता आज - सामाजिक सुरक्षा अंशदान - सरकारी दिमागों एवं सम्पत्ति से आय - सार्वजनिक निगमों से लाभ अथश आधिक्य।

7. प्रयोज्य आय = साधन लागत पर NDP + आन्तरण भुगतान + विदेश से शुद्ध आय - निगमकर - अवितरित निगम लाभ - सामाजिक सुरक्षा भुगतान - प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर - अप्रत्यक्ष कर + अनुदान।

प्रयोज्य आय व्यक्तियों के पास अय हेतु उपलब्ध होती है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्रत्येक वर्ष चालू कीमतों पर ज्ञात किया जाता है। इसे वास्तविक या स्थिर कीमतों पर भी ज्ञात किया जाता है। वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करने के लिए मूल्य सूचकांकों को आधार बनाकर नया माप ज्ञात किया जाता है। विभिन्न समयावधियों के बीच तुलना करने के लिए वास्तविक राष्ट्रीय उत्पाद अथवा आय को आधार बनाया जाता है। राष्ट्रीय आय के माप की तीन विधियां है जिन्हें क्रमश: उत्पादन विधि आय विधि एवं अव विधि कहा जाता है। तीनों से प्राप्त समंक समान होते हैं। राष्ट्रीय आय समंको का देश की अर्थव्यवस्था में आपक प्रयोग एवं महत्व है। विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय समंकों की माप में अनेक कठिनाइयां आती है।

2.7 शब्दावली (Glossary)

अंतिम वस्तुएं	Final Goods
मध्यवर्ती वस्तुएं	Intermediate Goods
घिसावट व्यय	Depreciation Charges
हस्तान्तरण भुगतान	Transfer Payments
प्रयोज्य आय	Disposable Income
स्व-उपभोग	Self Consumption
वास्तविक आय	Real Income
चालू कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद	GNP at Current Prices
स्थिर कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद	GNP at Constant Prices
सकल घरेलू उत्पाद	Gross Domestic Product (GDP)

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

Schultz, “National Analysis”

Samuelson, “Economics” (Latest ed.)

Rangrajan &Dholkia ‘Principles of Macroeconomics.’

Shapiro, Edward, “Macroeconomic Analysis.”Galgotia Publication, Latest ed.

Wilfred Beckerman, “An Introduction to National Analysis

2.9 अम्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Question)

1. राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए। राष्ट्रीय आय की आधुनिक अवधारणाओं का वर्णन कीजिए।

2. राष्ट्रीय आय समंक देश की अर्थव्यवस्था के लिए किस प्रकार महत्वपूर्ण है? इसकी गणना में कौन-कौन सी कठिनाइयां आती है।
3. राष्ट्रीय आय की माप आय संगणना विधि की विवेचना कीजिए।
4. राष्ट्रीय आय माप की विभिन्न विधियां कौनसी है? वर्णन कीजिए।
5. क्या राष्ट्रीय आय समंक की तीनों विधियों से प्राप्त समंक समान होते हैं? इन तीन विधियों के नाम क्या है? इनका विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई- 03

राष्ट्रयि आय लेखांकन में पर्यावरणीय संदर्भ (हरित लेखांकन) (Environmental Concerns in National Income Accounting Green Accounting)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 वर्तमान राष्ट्रीय आय लेखांकन पद्धति

3.3 पर्यावरणीय एव प्राकृतिक संसाधनों के मुद्दों को सम्मिलित करने की आवश्यकता एव प्रयत्न

3.4 पर्यावरणीय लेखांकन की परिभाषा

3.5 एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति के उद्देश्य

3.6 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के आकलन की नई पद्धति

3.7 मानक राष्ट्रीय लेखांकन के द्वारा एकीकृत पर्यावरणीय लेखे तैयार करना

3.8 पूरक खाते तैयार करना

3.9 पर्यावरणीय समयोजित आय की गणना

3.10 पर्यादरणीय लेखे एवं भारत

3.11 पर्यावरणीय लेखों का आकलन एवं पीरणाम-पपुआ न्यू जिनी के संदर्भ में

3.12 सारांश

3.13 शब्दावली

3.14 संदर्भ-ग्रंथ

3.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य (Qbjectives)

इस इकाई का उद्देश्य सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना में पर्यावरणीय प्रदूषण की लागत एवं प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन सम्मिलित करना और एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखे प्रस्तुत करना है जैसा कि अब संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) ने स्वीकार किया है। अभी तक संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रचलित मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts) प्रचलन में रहे हैं किन्तु अब 1993 से इन लेखों में परिवर्तन किए गए हैं और इस आधार पर मानक आय लेखों के साथ पूरक लेखे भी तैयार किए जा रहे हैं। मानक आय लेखों में पर्यावरणीय गुणवत्ता में कमी एवं प्राकृतिक संसाधनों के मूल्यांकन जोडे जाने की विधि हरित लेखांकन (Green Accounting) कहलाती है। यहाँ हरित लेखांकन से सम्बन्धित परिभाषा, उद्देश्य गणना विधि, मारत के सदंर्भ में पर्यावरणीय मुददे एवं कुछ राष्ट्रों में इस विधि का जो

प्रयोग किया गया है उन सबका विस्तार में वर्णन किया गया है इस इकाई के अध्ययन बाद आप समझ सकेंगे कि:

- राष्ट्रीय आय लेखांकन की वर्तमान पद्धति में अर्थशास्त्रियों द्वारा किस प्रकार पर्यावरणीय मुद्दों का समावेश किया गया है।
- हरित लेखांकन क्या है एवं इसकी गणना के क्या उद्देश्य हैं।
- हरित लेखांकन अथवा पर्यावरणीय आर्थिक लेखांकन द्वारा किस प्रकार राष्ट्रीय आय लेखे तैयार किए जते हैं?
- भारत की इस सम्बन्ध में क्या योजना है? एवं हरित लेखांकन के सम्बन्ध में अनुभव क्या रहा है?

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

समष्टि आर्थिक विश्लेषण (Macroeconomics) का सम्बन्ध किसी राष्ट्र की समूर्ण आर्थिक कार्य प्रणाली व इसमें वस्तुओं एवं सेवाओं की उत्पादन क्षमता में होने बाले परिवर्तन से है। समष्टि आर्थिक विश्लेषण का मुख्य आधार आय है क्योंकि आय किसी भी राष्ट्र के आर्थिक क्रिया कलापों, जीवन स्तर, उपभोग, निदेश, बचत, रोजगार विकास की प्रवृति आदि का मुख्य मापदण्ड है। आय का मुख्य आधार उत्पादन में संलग्न विभिन्न आर्थिक क्रियाएं हैं जिनसे प्राप्त उत्पादन को सकल राष्ट्रीय उत्पादन की संज्ञा दी जाती है अत: आय किसी राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओं का परिणाम है

किसी राष्ट्र में उत्पादित की जाने वाली वस्तुएँ व सेवाएँ इतनी विभिन्न होती हैं कि इनके उत्पादन मात्र से ही किसी राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओं के परिणामों का अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है। स्कूल के बच्चों को टॉफी बेचने की सेवाओं से लेकर सेटेलाइट 'आर्यभट्ट' जैसी विशाल वस्तुओं के निर्माण तक ही आर्थिक क्रियाएं राष्ट्रीय आय गणना में सम्मिलित होती हैं । आय गणना में एक कठिनाई का कारण उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं का विभीन्न इकाईयों में व्यक्त किया जाना भी है जैसे 40 टन गेहूँ 5 दर्जन केले, 10 किलो चावल, 20 जोड़ी जूते, 10 दर्जन पेन आदि आदि। स्पष्ट है उत्पादन की इन सभी इकाइयों की साधारण गणना नहीं की जा सकती। गणना की इन कठिनाइयों से बलने के लिए वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को इनकी कीमतों से गुणा कर इनके मुद्रा मूल्य में थक्त कर दिया जाता है। राष्ट्रीय उत्पाद (National Product) का इस तरह मौद्रिक मूल्यांकन राष्ट्रीय आय (National Income) कहलाता है। अत: राष्ट्रीय आय एक ओर जहाँ राष्ट्रीय उत्पादन का माप है वही दूसरी ओर यह उत्पादन के साधनों की आय का माप भी है।

इस इकाई में राष्ट्रीय आय लेखांकन में पर्यावरणीय संदर्भ के अन्तर्गत पहले उन मुद्दों पर लिखा गया है जिसके कारण सकल राष्ट्रीय उत्पाद के मूल्यांकन में शकृतिक संसाधनों के मूलांकन एंव पर्यावरणीय प्रदूषण की जोड़ने की आवश्यकता महसूस की गई। इसके बाद एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति के उद्देश्य, पर्याबरणीय लेखांकन की परिभाषा, सकल राष्ट्रीय उत्पाद से सम्बन्धित नई रीतियाँ, मानक राष्ट्रीय लेखांकन के द्वारा एकीकृत पर्यावरणीय

लेखे तैयार करने की बिधि, पूरक खाते तैयार करना और जिन राष्ट्रों में बतौर पर्यावरणीय लेखांकन उदाहरण स्वरूप लागू किया गया है उनके परिणामों को प्रस्तुत करना है।

3.2 वर्तमान राष्ट्रीय आय लेखांकन पद्धति (Present National Income Accounting System)

पर्यावरणीय लेखांकन हेतु पर्यावरणीय आर्थिक लेखांकन का जो नया प्रारूप बनाया गया है उसे जानने से पहले वर्तमान राष्ट्रीय लेखांकन रीति को जान लेना आवश्यक है। इस रीति में पहले सकल घरेलू उत्पाद (GDP)का आकलन किया जाता है जो एक राष्ट्र में एक वर्ष में कुल वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य के बराबर है। सूत्र रूप में यह इस प्रकार है: GDP मध्यवर्ती उपभोग (Intermediate Consumption)+ स्थिर पूँजी का उपभोग (Consumption of Fixed Capital)+ अन्तिम उपभोग (Final Consumption) + विशुद्ध पूँजी निर्माण (Net Capital Formation) + निर्यात-आयात (Exports -Imports)

यदि सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में से मध्यवर्ती उपभोग (Intermediate Consumption) एवं स्थिर पूँजी का उपभोग घटा दिया जाए तो विशुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP) प्राप्त होता है: अत: विशुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP) = अन्तिम उपभोग (Final Consumption) + विशुद्ध पूँजी निर्माण (Net Capital Formation) + निर्यात-आयात (Export -Import)

इस प्रकार राष्ट्रीय लेखांकन रीति से जो घरेलू उत्पाद (NDP) प्राप्त होती है उससे राष्ट्रीय आय का माप होता है और इसका प्रयोग राष्ट्रों के बीच पर्यावरणीय समायोजित सूचकांकों की तुलना के लिए किया जाता है।

सकल घरेलू उताद (GDP) में भी वस्तुओं एवं सेवाओं के कुल मूल्य में उत्पादित (Produced) स्वं अ-उत्पादित (Non -Produced) सम्पत्तियां सम्मिलित हैं। उत्पादित सम्पत्तियों में सड़कें, मशीनें, वस्तुऐं, बाग, पौधारोपण एवं पशुपालन आदि तथा अ-उत्पादित (Non -produced) सम्पत्तियों में वे वस्तुएं सम्मिलित हैं जिनपर व्यक्तियों का स्वामित्व है और जिससे आर्थिक लाभ प्राप्त होता है, जैसे भूमि, भूमि में किया गया सुधार, धात्विक एवं आधात्विक खनिज पदार्थ, बन व मछली पालन आदि आदि। मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts) में वस्तुओं के प्रारम्भिक स्टॉक, इनमें वृद्धि, इनमें कमी का आकलन भी किया जाता है, यद्यपि इनका सकल ब विशुद्ध घरेलू उताद (GDP and NDP) से कोई लेना-देना नहीं है। इस विधि में अन्तिम स्टॉक का अनुमान इस प्रकार लगाया जाता है।

प्रारम्भिक स्टॉक+ सकल घरेलू उत्पाद (GDP)- स्थिर पूँजी उपभोग + आस्तियों में अन्य परिवर्तन + आस्तियों से लाभ / हानि (पुनर्मूल्यांकन या कीमत परिवर्तन के कारण)

3.3 पर्यावरणयिं एवं प्राकृतिक ससाधनों के मुद्दों को सम्मिलित करने की आवश्यकता एवं प्रयत्न (The need and efforts to include environment- tal and natural resource items)

एक अर्थथश्स्था में उत्पादन का माप सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP) है जिसमें एक अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को सम्मिलित किया जाता है। वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन की विविधता बहुत है। अत: इसका बाजार कीमत पर मूल्यांकन किया जाता है। बाजार कीमत में उत्पादन लागत एवं परोक्ष कर सम्मिलित होते हैं। जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से पूंजीगत हास (Capital Depreciation) घटा दिए जाते हैं तो विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद Net National Product) बचता है। किन्तु इस गणना में प्राकृतिक संसाधनों में कमी (Depletion of Natural Resources) एवं पर्यावरण हानि Damage to the Environment) की गणना को अब तक सम्मिलित नहीं किया गया है। हरित राष्ट्रीय लेखांकन (Green National Accounting) इस कमी को दूर करने का उपाय है। जिसमें प्राकृतिक संसाधनों की इस विशुद्ध कमी (Net Depletion of Natural Resources) एवं पर्यावरण हानि को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से घटा दिया जाता है।

इस दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 3-14 जून 1992 में पर्यावरण रख विकस पर रियो- डी-ज़ेनेरो में आयोजित सम्मेलन में सुस्थिर विकास (Sustainable Development) पर अधिक बल देने के कारण राष्ट्रों के कत्याण एवं विकास के वृहद आकलन हेतु राष्ट्रीय आय लेखांकन में परिवर्तन करना आवश्यक समझा गया। विश्व में पर्यावरणीय सरोकारों के लिए कमीशन ऑन सस्टेनेबिल डेवलपमेन्ट की स्थापना न्यूयार्क (अमेरिका) में की गई हैं जिसमें अधिकतर विकासशील राष्ट्र सदस्य हैं । ऐसा माना जा रहा है कि जब तक राष्ट्रों में पर्यावरण व इनकी सेशओ का अभिलेखन नहीं रखा जाएगा तब तक सुस्थिर विकास के बारे में न तो योजना ही बनाई जा सकती है और न इसे प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से पर्यावरणीय अभिलेखन दो कारणों से महत्वपूर्ण माना जा रहा है:

1. प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को हतोत्साहित करना

विकसित राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों का अधिक प्रयोग करते हैं न केवल अपने देश की आवश्यकता के लिए बल्कि स्वतंत्र व्या \पार के कारण दूसरे देशों की आवश्कता की पूर्ति हेतु भी। अत: उन राष्ट्रों में सुस्थिर विकास का आधार और समाप्त होता चला जाता है। प्राकृतिक संसाधनों के लेखांकन से इन राष्ट्रों को यह आभास होगा के ये राष्ट्र किस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों में कमी करने के लिए उत्तरदायी हैं।

2. ओजोन परत के अवक्षय को रोकना

विकसित राष्ट्रों द्वारा उत्सर्जित कार्बन गैस को वर्तमान में विकासशील राष्ट्रों के वनों ने जमा कर रखा है। विकसित देशों में औधोगिकीकरण के कारण कार्बन स्व सल्फर डाई ओक्साइड (CO_2 and SO_2) उत्सर्जित गैसों ने विकासशील राष्ट्रों के निवासियों के -स्वास्थ्य को बिगाड़ा है। यह पाया गया है कि एक पेड़ द्वारा प्रतिटन कार्बन गैस के अवशोषण का मूल्य

$5 से $25 है। बनीं के द्वारा कार्बन गैस का कितना अवशोषण किया जाएगा यह बनी की किस्म पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए उष्ण कटिबंधीय बन (Tropical Forest) करीब 280 टन प्रति हेक्टेयर कार्बन गैस का अबशोषण करतें हैं वहीं चारागाह करीब 60 टन प्रति हेक्टेयर व कृषि भूमि करीब 80 टन प्रति हेक्टयर का अवशोषण करतें हैं। अब हम यही एक उदाहरण लेते हैं कि यदि उष्णकटिबंधीय बनों को काटकर कृषि ग्रमइ में परिबर्तित कर दिया जाय तो कार्बन गैस के अबशोषण से प्राप्त मूल्य किस तरह कम हो जायेंगे:

उष्णकटिबंधीय वनों से अवशोषण का मूल 280 $\times$ 5 =$1400

कृषि भूमि के अवशोषण का मूल्य 80 $\times$ 5 = $400

अत: मौद्रिक मूल में यह हानि न्यूनतम 1000$ प्रति हेक्टेयर होगी।

अत: संयुक्त राष्ट्र संघ ने हरित लेखांकन की व्यस्था लाग करने के लिए मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts) के स्थान पर System of Inegrated Environmental and Eco- nomic Accounting (SEEA) व्यस्था दी है। इस संदर्भ में परम्परागत राष्ट्रीय आय आकलन में निम्न मुख्य दोष पाए गए हैं। प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता जो अर्थव्यावस्था के सुस्थिर विकास को बनाए रखने में समर्थ नहीं है। प्रदूषण के कारण पर्याबरण का घटता स्तर एवं परिणामस्वरूप व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं कल्याण पर विपरीत असर पडता है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के लिए जो व्यय किया जाता है इससे भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि मान ली जाती है जबकि तथ्य यह कि यह तो केश्ल मात्र पर्यावरण के रखरखाब पर किया जाने वाला अव है अत: इस प्रकार के जय से आर्थिक विकास नहीं होता है।

किन्तु हरित लेखांकन के अन्तर्गत सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना में सबसे बड़ी कठिनाई संसाधनों में कमी एवं पर्यावरण हानि की गणना करना है । अत: सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना में अभी तक अधिकतर राष्ट्रों ने इस पद्धति को नहीं अपनाया है। संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme) एवं विश्व बैंक द्वारा संयुक्त रूप से आहूत कार्यशाला में इन संभावनाओं पर विचार किया गया कि किस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण का मूल्यांकन सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सम्मिलित कर नए सिरे से आय एवं उत्पाद आकलन के आँकडे प्रस्तुत किए जाए। एक सहमति प्रकट हुई और इस परिवर्तन के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र संघ के सांख्यिकी विमाग (Statistical Division) ने मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts) में संशोधन कर एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Integrated Environmental and Economic Accounting SEEA) कर दिया गया और राष्ट्रीय आय गणना की कार्य विधि से सम्बन्दित एक पुस्तिका The Handbook Environmental and Economic Accounting जारी की। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में पर्यावरण परिवर्तन एवं प्राकृतिक संसाधनों से सम्बन्धित मुद्दों के आकलन विशेषकर बाह्यताओं (Externalities) के आकलन पर सहमति न होने के कारण जो नई पुस्तिका हैण्डबुक ऑव इन्टीग्रेटेडं इन्सयरनमेन्दल एण्ड इकोनोमिक एकाउन्टिंग (The Handbook of Integrated Enviromental and Economic Accounting) जारी की

गई वह अन्तिम (Final) न होकर अन्तरिम (Interim) थी । इस पुस्तिका में सकल घरेलू उत्पाद में आकलन से संबन्धित कई तकनीकी मुद्दे, लेखांकन विधियाँ एवं वर्गीकरण जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है । इस परिवर्तन के कारण एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति में सम्मिलित कई घटकों का मेक्सिको, पप्पुआ न्यू जिनी एवं थाईलैण्ड की अर्थव्यवस्था में प्रयोग कर परिणाम प्राप्त किए गए । इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला कि पर्यावरण लेखांकन न केवल संभव ही है अपितु यह प्रयोगात्मक रूप में एक अमूल्य सूचक है जो आर्थिक नियोजन के लिए उपयोगी है, उसे भी उपलब्ध करवाता है । किन्तु एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Integrated Enviromental and Economic Accounting-SEEA) में पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के मूल्यांकन करने के तरीकों पर अन्तरराष्ट्रीय सहमति न होने के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ ने यह निर्णय लिया कि इस व्यवस्था को अभी समग्र रूप से लागू नहीं किया जाए और केवल परीक्षण के बतौर लागू किया जाए । इस आधार पर अभी मानक राष्ट्रीय लेखों (Standard National Accounts) में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं किया गया है । इस आमूल-चूल परिवर्तन न करने के मुद्दे पर संयुक्त राष्ट्र संघ की पर्यावरण एवं विकास सभा (UN Conference on Environment and Development (UNCED)) ने भी अपने एजेण्डे में (1992) में सम्मिलित कर स्वीकृति प्रदान कर दी है ।

बोध प्रश्न- 01

1. आर्थिक क्रियाओं का परिणाम किसमें निहित है ?
2. वर्तमान राष्ट्रीय आय लेखांकन पद्धति में प्रयुक्त विभिन्न अवधारणाओं को बतलाइये।
3. पर्याणीय लेखांकन का क्या औचित्य है ?
4. संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts) को बदल कर क्या नाम किया है ?

3.4 पर्यावरणीय लेखांकन की परिभाषा (Definition of Environmental Accounting)

पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के लेखों की कोई स्तरीय परिभाषा नहीं है । सामान्य अर्थ में पर्यावरण लेखे पर्यावरण एवं इसमें परिवर्तन का लेखा-जोखा और इसके परिणामों को मानक राष्ट्रीय लेखे (SNA) के साथ समाहित करना है जिससे किसी राष्ट्र की योजनाओं के लिए मूल्यवान सूचना प्राप्त हो सके और इस आधार पर एक राष्ट्र के सुस्थिर विकास की नींव रखी जा सके । इस दृष्टि से इस लेखांकन की परिभाषा में निम्न मुद्दे सम्मिलित हैं:

(i) पर्यावरणीय मुद्दों सम्बन्धी सभी आस्तियों के कुल स्टॉक या आरक्षित भण्डार एवं इनके परिवर्तन का आकलन करना । (Taking the total stock of assets or reserves related to environmental issues, and changes there in.)

(ii) पर्यावरण संरक्षण एवं इनकी वृद्धि पर किए गए कुल आय-व्यय का अनुमान लगाना । (Estimation of the total expenditure on protection or enhancement of environment.)

(iii) सकल घरेलू उत्पाद मे सम्मिलित उन वृद्धियों का पता लगाना जिनका व्यय केवल मात्र विकास के ऋणात्मक प्रभावों को रोकने के लिए किया गया है । (To identify that part of the gross domestic product which reflects the cost necessary to compensate for the negative impact of economic growth, i.e the so-called defensive expenditure to protect environment.)

(iv) पर्यावरणीय लागतों एवं लाभों का मूल्यांकन करना जिसमें (अ) प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग एवं अन्तिम मांग के कारण होने वाली कमी और (ब) प्रदूषण के कारण पर्यावरण की गुणवत्ता में होने वाली कमी सम्मिलित है । (Assessment of environmental costs and benefits : (i) the decrease (depletion) in natural resources due to their use in production and final demand and (ii)the changes in environmental quality, resulting from pollution.)

इन मुद्दों के आधार पर 1983 में विश्व बैंक ने यह स्पष्ट किया कि पर्यावरणीय मुद्दों को मानक राष्ट्रीय लेखों (Standard National Accounts) में सम्मिलित किया जाना चाहिए। अन्तरिम प्रयोग के आधार पर बैंक ने यह प्रस्तावित किया कि ये लेखे मानक राष्ट्रीय लेखों (Standard National Accounts) के पूरक लेखों (Satellite Accounts) के रूप में तैयार किए जाए । किन्तु सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना से संबन्धित इन सभी विधियों को सभी राष्ट्रों में अवहार में प्रयोग में लाना बहुत कठिन था । अत: अभी एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System National Environmental and Economic accounting -SEEA) लेखे, मानव राष्ट्रीय लेखों (Standard national Accounts) के पूरक के रूप में बनाए जाने लगे हैं ।

3.5 एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति के उद्देश्य (Objectives of Integrated Environmental and Economic Accounting)

एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

(1) **पर्यावरता से सम्बन्धित प्रवाह व स्टॉक चरों को परम्परागत लेखांकन से अलग करना और इसे विस्तार देना (segregation and elaboration of all environment-related flow and stock traditional accounts)**

इसमें पर्यावरण से सम्बन्धित सभी मुद्दों पर कुल व्यय का आकलन सम्मिलित है जैसे पर्यावरण की सुरक्षा हेतु किए गए व्यय । इस अलगाव का दूसरा उद्देश्य सक्ल राष्ट्रीय

आय के उस हिस्से को अलग से दर्शाना है जो आर्थिक विकास के ऋणात्मक प्रभाव की क्षीतपूर्ति लागत के रूप में किया गया है ।

(2) भौतिक संसाधन लेखांकन का मौद्रिक पर्यावरणीय लेखांकन से सम्बंध स्थापित करना (Linkage of physical resource accounts with monetary environmental accounts and balance sheets)

भौतिक संसाधन लेखांकन किसी देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का एवं इनमें परिवर्तन से सम्बन्धित लेखांकन है, चाहे अभी तक इन संसाधनों का खनन या प्रयोग नहीं किया गया हो । एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Integrated Environmental and economic Accounting- SEEA) में इस तरह प्राकृतिक संसाधन लेखों को मौद्रिक स्टॉक एवं प्रवाह लेखे के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है ।

(3) पर्यावरणीय लागत एवं लाभ का मूल्यांकन (Assessment of environment costs and benefits)

मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts) के मुकाबले एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Integrated Environment and Economic Accounting - SEEA) में निम्न लागतों से सम्बन्दित और विस्तार से विचार किया गया है-

(क) प्राकृतिक संसाधनों का उत्पादन एवं अन्तिम मांग के रूप में प्रयोग से होने वाली लागत (The use (depletion)of natural resources in production and final demand.)

(ख) प्रदूषण तथा उत्पादन उपभोग एवं प्राकृतिक घटनाओं के कारण पर्यावरण गुणवत्ता में परिवर्तन होना और दूसरी तरफ पर्यावरण सुरक्षा एवं विस्तार पर किए गए व्यय (The changes in environment quality, resulting from pollution and otter impacts of production, consumption ,and natural events, on the one hand , and environmental protection and enhancement, on the other.)

(4) मूर्तधन के रखरखाव का लेखांकन (Accounting for the maintenance of tangible wealth)

एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति में पूँजी की परिभाषा का विस्तार किया गया है जिसमें न केवल मानव निर्मित पूँजी ही सम्मिलित है अपितु प्राकृतिक पूँजी भी सम्मिलित है । इस तरह इस व्यवस्था में पूँजी निर्माण (Capital formation) की अवधारणा का विस्तार कर इसे पूँजी संग्रहण (capital accumulation) का नाम दिया गया है । इसमें पर्यावरणीय सम्पत्तियों की खोज, उपभोग व प्रयोग सम्मिलित है ।

(5) पर्यावरणीय समायोजित उत्पाद एवं आय के सूचकांकों का माप एवं निस्तार

(Elaboration and measurement of indicators of environmentally adjustment product and income)

प्राकृतिक संसाधनों के अपक्षय एवं पर्यावरणीय गुणवत्ता में कमी की लागतों पर गुणबत्ता में कमी की लागतों पर ध्यान देने पर ही पर्यावरणीय समायोजित समष्टि चरों का बिशेषकर पर्यावरणीय समायोजित विशुद्ध घरेलू उत्पाद (EDP) की गणना की जा सकती है ।

3.6 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के आकलन की नई पद्धति (New system of estimation of Gross National Product)

यहाँ अब सकल राष्ट्रीय आय के आकलन से सम्बन्धित जो नई रीतियाँ व सुझाव दिए गए उन्हें स्पष्ट किया जाएगा और जिन राष्ट्रों में इसे बतौर उदाहरण लागू किया गया है उनके परिणाम भी प्रस्तुत किए जाऐंगे ।

(अ) भौतिक सम्पदा जैसे भवन, मशोनें (Tangible assests) आदि के रखरखाव का लेखांकन एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Environment and Economic Accounting - SEEA) में पूँजी-अवधारणा में विस्तार किया गया है जिसमें न केवल मनुष्यकृत पूँजी ही सम्मिलित होगी जैसा अब तक होता आया है अपितु प्राकृतिक पूँजी भी सम्मिलित होगी । इस दृष्टिकोण से पूँजी निर्माण की अवधारणा में विस्तार कर इसे पूँजी संग्रहण (Capital Accumulation) का नाम दिया गया है जिसमें पर्यावरणीय सम्पत्तियों के उपभोग/प्रयोग एवं इनकी खोज भी सम्मिलित है ।

(ब) उत्पाद एवं आय सूचकांकों को पर्यावरणयि आधार पर व्यवस्थित कर इनका विस्तार एवं मापन करना

प्राकृतिक संसाधनों में कमी एवं पर्यावरण प्रदूषण की लागत पर नए सिरे से विचार कर समष्टि समग्र प्रस्तुत करना एवं पर्यावरणीय व्यवस्थित विशुद्ध घरेलू उत्पाद (Environmentally adjusted net Domestic Product) के आंकड़े प्रस्तुत करना।

(स) पर्यावरणीय विश्लेषण हेतु राष्ट्रीय आय लेखांकन में सुधार

1993 में मानक राष्ट्रीय लेखांकन (Standard National Accounts) के आकलन में जो परिवर्तन किए गए वे सभी परिवर्तन एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Integrated Environmental and Economic Accounting)पर आधारित हैं । इस तरह आकलन में इन दोनों तरीकों में अधिक साम्य रखा गया ताकि पुरानी रीति व नई रीति से आकलित सकल राष्ट्रीय आय एवं इसके घरों में तुलना करना सुविधाजनक बना रहे । इस प्रकार 1993 में मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard national Accounts) में एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक

लेखांकन पद्धति (System of Integrated Environmental and Economic Accounting)के अनुसार किए गए परिवर्तन का पहला सोपान था । यह परिवर्तन नीचे चित्र 3.1 में दिखाए गए हैं । प्रथम वर्गीकरण उद्‌गम के आधार पर है:

चित्र 3.1 बतलाता है कि किस प्रकार उत्पादित (Produced) एवं अ-उत्पादित (Non-produced) (प्राकृतिक एवं अवित्तीय) सम्पत्तियों को एक तालिका में सम्पत्तियों की पूर्ति एवं प्रयोग एवं सम्पत्ति खाते (use and assests accounts) के रूप में एकीकृत किया जा सकता है । इस प्रकार का एकीकरण पर्यावरणीय-आर्थिक विश्लेषण के लिए आवश्यक है और ऐसा प्रयास प्रचलित समीमता (Identity) की तुलना कर सकता है । चित्र 3.1 में प्रस्तुत सम्पत्ति शेष एक ओर सममितता प्रस्तुत करते हैं जिसमें सम्पत्तियों के प्रारम्भिक स्टॉक एवं अंतिम स्टॉक का विवरण प्रस्तुत है ।

चित्र 3.1 में पूर्ति एवं प्रयोग ब्लॉक्स को फिर दो वर्गीकरण में विभक्त किया गया है । प्रथम वर्गीकरण उद्‌गम पर आधारित है जो अन्तरराष्ट्रीय उद्‌गम वर्गीकरण (International Standard Classification) पर आधारित है । दूसरा वर्गीकरण उत्पादों (Products) का है जो केन्द्रीय उत्पाद वर्गीकरण (Central Product Classification) पर आधारित है । दो वर्गीकरण को एक साथ लाग करने के कारण उत्पादन प्रखण्ड (Blocks) एवं मध्यवर्ती उपभोग मेक एण्ड यूज़ मेट्रिक्स (Make-and-use Matrics) में पीरवर्तित हो गया है । निर्यात एवं अन्तिम उपभोग को वेक्टर्स (Vectors) में प्रदर्शित किया गया है । मूल्य वृद्धि के प्रखण्ड के वेक्टर्स में कर्मचारियों को भुगतान (Compensation of Employees) एवं विशुद्ध परोक्ष कर सम्मिलित है ।

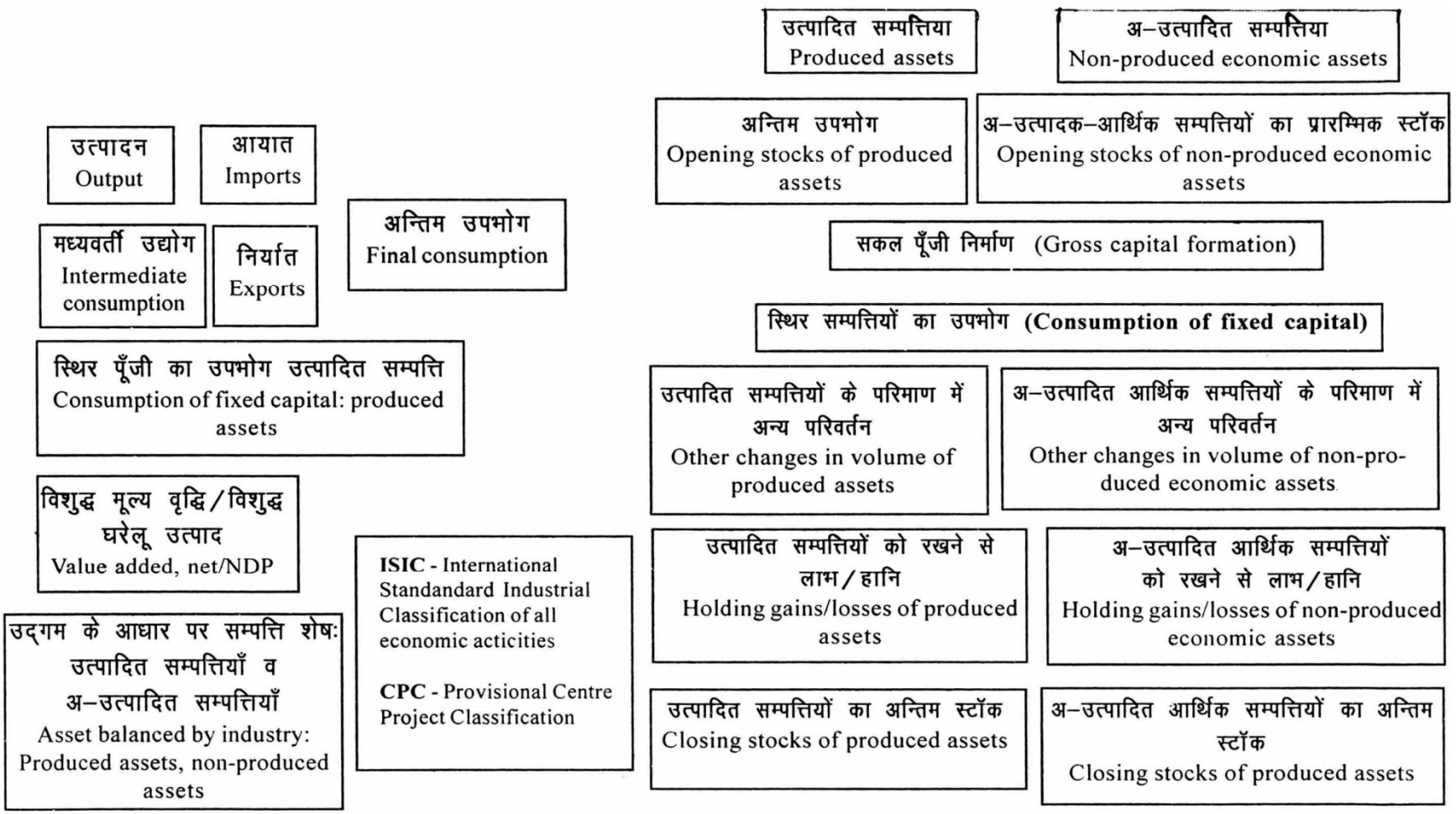

Source : 1993 SNA supply and use with assets balances for economic assets by type and industry.

नीचे Box 1 में इन सममिताओं (Identies) को चित्र 3.1 में दी गई मदों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है ।

Box 1 - SNA लेखों कीं सममितता SNA Accounting Identity

चित्र 3.1 में प्रस्तुत पूर्ति एवं प्रयोग खातों में मूल तीन राष्ट्रीय लेखों की सममितता झलकती है:

1. **पूर्ति- प्रयोग सममितत** (The supply-use identity)
   -output + imports = intermediate consumption + exports + final consumption +gross capital formation
2. **मूल्य वृद्धि सममितत** (The value added identity)
   -value added = output - intermediate
   Consumption-consumption of fixed capital
3. **घरेलू उत्पाद सममितत** (The domestic product identity)
   -net domestic product (NDP) = final consumption + gross capital formation + (export -import)
   Closing stocks= opening stocks + gross capital formation- consumption of fixed capital +other changes in volume of assets + holding gains/losses on assets.

3.7 मानक राष्ट्रीय लेखांकन के द्वारा एकीकृत पर्यावरणीय लेखे तैयार करना (Preparation of Integrated Environmental Accounts from Standard National Accounts)

एकीकृत पर्यावरणीय लेखांकन के लिए निम्न मदों के आकड़े संग्रहित किए जाने चाहिए: 1कृषि 2पशुपालन एवं प्रजनन 3वन 4मछली पालन शिकार आदि 5खनिज तेल उत्पादन 6खनन 7निर्माण 8बिजली, गैस एवं पानी 9निर्माण 10होटल एवं रेस्तरां 11 व्यापार एवं व्यवसाय 12यातायात 13सग्रंहण 14संचार 15सरकारी सेवाऐं 16घरेलू सुरक्षा सेवाऐं 17पूँजी उपभोग 18अन्य सग्रहण जैसे नई खानें, मन्दिरों का जीर्णोद्धार, किसी क्षेत्र विशेष का विकास (जैसे शेखावटी व जैसलमेर उत्सव) 19लट्ठे बनाना 20वन भूमि का आर्थिक प्रयोग 21नगरीकरण व कॉलोनी बनाना 22हस्तांतरण हानि जैसे निर्माण के लिए भूमि का प्रयोग करने से खेती योग्य भूमी में कमी 23भूमि कटाव 24ठोस अपशिष्ट 25भूमि जल दोहन 26जल प्रदूषण 27हवा प्रदूषण 28हवा प्रदूषण के कारक- सल्फर आक्साइड, हाइड्रो कार्बन, कार्बन मोनोक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड 29बाढ़ 30तूफान 31सांस्कृतिक विरासत में हास 32जल क्षति 33पानी (शुद्ध एवं नमकीन झरने व नीदयां)34बाँध 35तेल शोधन कारखाने 36पत्थर काँच व मिट्टी की खदानें एवं इनकी निर्माण इकाइयां 37जंगली पशु वर्ग 38शव दाह गृह 39नदियाँ 40झीलें

41ध्वंस 42जंगली क्षेत्र 43नॉन रिनिवल संसाधन 44 धनि प्रदूषण (भजन कीर्तन में लाउडस्पीकर का प्रयोग, आबागमन के साधनों में हॉनी) 45सड़कों एवं अन्य क्षेत्रों में भीड़भाड़ 46क्षारीय जमीन 47समुद्र तट 48पिकनिक स्थान 49आमोद प्रमोद के स्थान 50पड़ौस का प्रदूषण जैसे धूल का उड़ना, गोबर, कचरा, गन्दी नालियाँ, बदबू इत्यादि 51सड़कों पर रंगे विज्ञापन 52धार्मिक हवन ।

यद्यपि उपर्युक्त सूची पूर्ण नहीं है तथापि उत्पादित आर्थिक सम्पत्तियों, अ-उत्पादित आर्थिक सम्पत्तियों एवं पर्यावरणीय अनुत्पादित सम्पत्तियों पर इनके प्रभावों का आकलनामूल्यांकन करना चाहिये और सम्पत्तियों के अनुसार इनमें कमी व बेशी का विवरण तैयार करना चाहिए ।

इस लेखांकन को बनाने की दो विधियाँ हैं (i) एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Economic and Environment Accounting)के लिए मानक राष्ट्रीय लेखांकन (Standard National Accounts) को तैयार करना एवं (ii) एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Economic and Environment Accounts) तैयार करना । यदि मानक राष्ट्रीय लेखांकन (Standard National Accounts) को एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Economic and Environment Accounts) के लिए तैयार किया जाता है तो UNSTAT ने जैसा सुझाव दिया था कि इसमें प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण से संबन्धित सूचनाओं को दर्शाया जाए ताकि पूरक खाते तैयार करने में इस सूचना को काम में लिया जा सके । यद्यपि इनका प्रयोग मानक राष्ट्रीय लेखांकन (Standard National Accounts) के आकलन के लिए नहीं किया जाता है । पर्यावरण सुरक्षा से सम्बन्धित व्यय निम्नलिखित हो सकते है:

(i) वायु प्रदूषण को रोकने के लिए किए गए व्यय ।
(ii) जल प्रदूषण को रोकने के लिए किए गए जय ।
(iii) कचरे को एकत्रित करने उसे परिवहन करने एवं उसके निपटान से सम्बन्धित व्यय ।
(iv) कचरे को शुद्ध करने के लिए किए गए व्यय ।
(v) भूमि एवं भूमिगत जल की सुरक्षा के लिए किए गए व्यय ।
(vi) कोलाहल रोकने के लिए किए गए व्यय ।
(vii) जीव जन्तुओं व इनके मूल निशस, प्राकृतिक आपदाऐं भूमि कटाव, आग आदि की सुरक्षा के लिए किए गए व्यय ।
(viii) पर्यावरण सुरक्षा की शोध पर किया गया व्यय ।
(ix) पर्यावरण सुरक्षा सम्बन्धित शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि पर किया गया व्यय ।
(x) मलेरिया व अन्य बिमारियों की रोकथाम पर किया गया व्यय ।
(xi) मृत थक्तियों के दाह संस्कार से उठे धुरे को रोकने से सम्बन्धित व्यय ।
(xii) रासायनिक खादों के प्रयोग से उत्पादित वस्तुओं के कारण स्वास्थ्य पर बुरे प्रभाव को रोकने सम्बन्धित किए जाने वाले व्यय ।

मानक राष्ट्रीय लेखांकन (Standard National Accounts) के अन्तर्गत एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Environment and Economic According) के लिए आस्तियों के शेष निम्न प्रकार से ज्ञात किए जाएग,:'

(i) **उत्पादित आस्तियाँ** इसमें सभी उत्पादित वस्तुऐ एवं सेवाऐं सम्मिलित हैं: उत्पादित वस्तुओं का प्रारम्भिक स्टॉक + सकल घरेलू उत्पाद (पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए निर्मित की गई निर्मित की गई आस्तियों के अतिरिक्त)

+ पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए उत्पादित सम्पत्तियाँ

(-)उत्पादित स्थिर पूँजी का उपभोग (पर्यावरणीय सुरक्षा के अतिरिक्त)

+ अन्य उत्पादित आर्थिक सम्पत्तियों का संग्रहण

- उत्पादित सम्पत्तियों में गिरावट (degradation) के अतिरिक्त परिवर्तन

(+/-) उत्पादित सम्पत्तियों के लाभ/हानि

(-) उत्पादित सम्पत्तियों का अन्तिम स्टॉक

अ-उत्पादित आर्थिक सम्पत्तियाँ (Non-produced Economic Assets) इसमें वे सब भौतिक प्राकृतिक सम्पत्तियाँ (Tangible Natural Assets) जैसे भूमि , भवन के नीचे की भूमि, कृषि भूमि, आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, भूमिगत जल, कोयले, तेल एवं गैस भण्डार, धात्विक एवं अधात्विक खनिज भण्डार एवं पानी सम्मिलित है । अ-उत्पादित पर्यावरणीय सम्पत्तियों के लिए मानक राष्ट्रीय लेखों (Standard National Accounts) में कोई अलग वर्गीकरण नहीं है ।

सभी प्रकार की उत्पादित सम्पत्तियाँ, जो पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए उपभोग में आती है, व अ-उत्पादित सम्पत्तियों में कमी/घटाव जिनका बाजार मूल्य से पता चलता है का आकलन राष्ट्रीय आय लेखांकन में किया जाता है ।

3.8 पूरक खाते तैयार करना (Preparation of Satellite Accounts)

एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (SEEA) तैयार करने के लिए सभी सम्पत्तियों को तीन भागों में बाँट दिया गया है:

1. उत्पादित सम्पत्तियाँ (Produced Assets)
2. अ-उत्पादित आर्थिक सम्पतियाँ (Non-produced Economic Assets)
3. अन्य अ-उत्पादित पर्यावरणीय सम्पत्तियाँ (Other non-produced Environmental Assets)

इसके अतिरिक्त एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन (SEEA) के लिए निम्न की गणना और आदश्यक है:

1. अन्य अ-उत्पादक पर्यावरणीय सम्पत्तियों का अपक्षय ।

2. अ-उत्पादक आर्थिक सम्पत्तियाँ जिसका बाजार कीमत में इनका मूल्य नहीं झलकता है, उसमें गिरावट ।
3. उत्पादक सम्पत्तियाँ जिसका बाजार कीमत में इनका मूल्य नहीं झलकता है उसमें गिरावट ।
4. अन्य अनुत्पादक सम्पत्तियों के मूल्य में गिरावट ।
5. अन्य उत्पादक व अनुत्पादक सम्पत्तियों का संग्रहण ।

उपर्युक्त प्रत्येक मद के लिए निम्न प्रकार से लेखे तैयार किए जाऐगें:

1. प्रांरभिक स्टाक (Opening Stock)
2. घटाव (Depletion)
3. भूमि में घटाव (Depletion of Land)
4. शेष को बाहर करना (Discharge of residues)
5. अन्य समूह परिवर्तन (Other volume changes)
6. अन्तिम स्टॉक (Cosign Stock)

3.9 पर्यावरणीय समायोजित आय की गणना (Calculation of Environmental Adjusted Income)

जब सभी पर्यावरणीय लागतों एवं अन्य संचयों का मूल्यांकन कर लिया जाता है और इसे विशुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product) में से घटा दिया जाता है तब पर्यावरणीय समायोजित विशुद्ध घरेलू उत्पाद (EDP) प्राप्त होती है ।

मानक राष्ट्रीय लेखे (SNA) में विशुद्ध घरेलू उत्पाद के (NDA) आँकड़े उपलब्ध है अत: पर्यावरणीय समायोजित उत्पाद की गणना करना आसान हो जाता है । इसकी गणना का सूत्र निम्न हैं:-

NDP = C +I + (X-M)

Where NDP = विशुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product)

C= अंतिम उपभोग (पूंजी उपभोग को छोड़कर) Final Consumption (excluding depreciation)

I= विशुद्ध पूँजी निर्माण पूँजी उपभोग के बाद (Net Capital Formation after depreciation)

X= निर्यात (Exports)

M= आयात (Imports)

EDP की गणना करने के लिए पर्यावरणीय लागतों को घटा दिया जाता है । इस दृष्टिकोण से EDP को दो मार्गो में बाँट दिया गया है:

EDP_1 यह उत्पादित आर्थिक सम्पत्तियों, अ-उत्पादित आर्थिक सम्पत्तियों एवं पर्यावरणीय सम्पत्तियों के घटाव को कम करने के बाद प्राप्त होती है ।

EDP_2 यह सभी प्रकार की आस्तियों के घटाव व पर्यावरणीय सम्पत्तियों में कमी के बाद प्राप्त होती है ।

इन दोनों की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से की जाती है

EDP_1 = C+I- (Depletion of PeA + NpeA + Environmental assets) + (X-M)

Or

EDP - Depletion of all type of assets

EDP_2 - C+I-(Depletion of PeA + NpeA + Environmental assets +Degradation of Environmental assets) + (X-M)

Or

NDP_1 - Degradation of Environmental assets.

Or

NDP- (Depletion of all types of assets + Degradation of environmental assets)

विशूद्ध पूंजी निर्माण की मानक राष्ट्रीय लेखे (SNA) के अन्तर्गत एवं विशुद्ध पूंजी सग्रंह की EDP_1- EDP_2 में गणना करना।

मानक राष्ट्रीय लेखे (SNA) के अन्तर्गत

I = NDP - C - (X-M)

जहाँ

I = पूँजी हास के बाद विशुद्ध पूँजी निर्माण

C = अन्तिम उपयोग पूँजी हास के पहले

X = निर्यात

M = आयात

EDP_1 के अन्तर्गत विशुद्ध पूँजी संग्रहण =

EDP_1 = I- Depletion Costs of all types of assets

EDP_2 के अन्तर्गत विशुद्ध पूँजी संग्रहण =

EDP_2 = I- Depletion and Degradation costs of all types of assets

यदि EDP प्रतिशर्ष कम होती जाती है तो इसका तात्पर्य यह है कि पर्यावरणीय एवं प्राकृतिक संसाधनों में अधिक घटाव/कमी/समाप्ति होती जा रही है जिसका किसी देश के भावी विकास पर असर पड़ता है ।

NCF की EDF से तुलना यह बताती है कि किस सीमा तक NCF वास्तविक पूँजी निर्माण- जो राष्ट्र के सुस्थिर निर्माण में योगदान दे सकती है, को बतलाती है । हम यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहें हैं:

एक राष्ट्र के तीन बर्ष के आँकड़े निम्न प्रकार है:-

सारणी 3.1

		2002 (Rs)	2003 (Rs)	2004 (Rs)
1	राष्ट्रीय आय खातों के अनुसार NDP (NDP as per National Accounts)	60,000	70,000	80,000
2	अंतिम उपयोग (Final Consumption)	20,000	20,000	20,000
3	उनिर्यात - आयात (Exports-Imports)	2,000	2,000	2,000
4	उत्पादित सम्पत्तियों, अ-उत्पादिक आर्थिक सम्पत्तियों एवं अनुत्पादीक पर्यावरण सम्पत्तियों का स्टॉक (An Inventory Of produced assets, non-produced economic Assets and non-produced environmental)			
	(a) वर्ष के प्रारम्भ में (at the beginning of the year)	40,000	1,00,000	1,60,000
	(b) वर्ष के अन्त में (at the end of the year)	1,00,000	1,60,000	2,20,000
5	सरकार एवं पारिवारिक क्षेत्र के व्यय जो पर्यावरण की सुरछा एवं बनाए रखने के लिए किए गए है एवं जिन्हें SNA में अन्तिम उपभोग माना है । (Expenditure by the Government and the house hold to protect and preserve the environment which are treated as final consumption in SNA)	4,000	6,000	8,000
6	पर्यावरणीय परिवर्तन के स्वास्थ्य एवं मानव जीवन एवं अन्य प्राकृतिक आवासियों के अन्य पहलुओं पर प्रभाव का मौदरिक मूल्याकन (Effect of environment changes on health and other aspects of human life and other habitants measured in monetary terms)	10,000	12,000	14,000
7	पूंजीगत बेकार सामान जिसका लेखा अन्तिम स्टॉक ही है उससे होने वाला पर्यावरण नुकसान (Environmental damages on account of capital goods that are discard, Accounted in closing inventory)	8,000	10,000	12,000
8	इस राष्ट्र की क्रियाओं द्वारा पड़ौसी राष्ट्रो के पर्यावरण पर प्रभाव (Effect on environment of the neighbouring Country by the activities of this country)	20,000	20,000	20,000

9	पड़ौसी राष्ट्रो से क्रियाओं से पर्यावरण का मौद्रिक मूल्यांकन जिसे अन्तिम स्टॉक में सम्मिलित नहीं किया है (Effect on environment by the activities of the neighboring country, measured in monetary terms, not included in closing inventory)	12,000	12,000	12,000

Solution

(Rs)

	2002	2003	2004
विशुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP)	60,000	70,000	80,000
Less Final Consumption and Exports-imports	22,000	22,000	22,000
NCF	38,000	48,000	58,000
Calculation of EDP			
Inventory at the end	1,00,000	1,60,000	2,20,000
Less Inventory at the beginning	40,000	1,00,000	1,60,000
Contribution	60,000	60,000,	60,000
Less-Expenditure by the government and household	4,000	6,000	8,000
Effect of environment changes on health, etc.	10,000	12,000	14,000
Effect on environment by the activities of neighboring country	12,000	12,000	12,000
EDP	34,000	30,000	26,000

Note : 7 and 8, not included Effect of the 7th considered in closing inventory.

सारणी 3.2

Comparative Statement

	NCF (Rs)	EDP (Rs)
2002	38,000	34.000
2003	48,000	30,000
2004	58,000	26,000
	NCF as% of	EDP as % of
	NDP	NPD

2002	$\frac{38,000\times100}{60,000}=63$	$\frac{34,000\times100}{60,000}=56\%$
2003	$\frac{48,000\times100}{70,000}=69$	$\frac{30,000\times100}{70,000}=43\%$
2004	$\frac{58,000\times100}{80,000}=73$	$\frac{26,000\times100}{80,000}=33\%$

बोध प्रश्न-02

1. पर्यावरणीय लेखांकन को परिभाषित कीजिए ।
2. पूरक खाते तैयार करने के लिए सम्पत्तियों को कितने भागों में बाँटा गया है?
3. पर्यावरणीय समायोजित आय की गणना कैसे की जाती है?
4. NCF की EDF से तुलना उदाहरण द्वारा प्रस्तुत कीजिए ।

3.10 पर्यावरणीय लेखे एवं भारत (Enveronmental Accounts and India)

भारत के सन्दर्भ में पर्यावरण प्रदूषण की लागतों का अध्ययन 1992 में विश्व बैंक के दो अधिकारियों-कार्टर ब्रान्डन एवं क्रेस्टेन होमान-ने किया । The cost of Inaction : Valuing the Environment degradation in India- (World Bank)इन्होंने अनुमान लगाया कि भारत में पर्यावरण प्रदूषण की लागत लगभग 34000 करोड प्रतिवर्ष है, जो यहाँ की EDP का लगभग 9.5 प्रतिशत है । आगे इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है:

सारणी 3.3

कुछ मुख्य समस्याओं की पर्यावरणीय लागतें

(Some Major Environmental Costs in India)

(USS मिलियन में)

मुख्य समस्याएं Major Problems	**स्वस्थ्य व उत्पादन पर प्रभाव Impact on Health and/or Production**	**कम से कम लागत (Low Estimate)**	**अधिक से अधिक लागत High Estimate**
नगरीय हवा का प्रदूषण (Urban Air Pollution)	नगरीय स्वस्थ्य पर प्रभाव (Urban health impacts)	517	2102
जल प्रदूषण	नगरीय एवं ग्रामीण स्वस्थ्य	517	2102

(Water Pollution)	(Urban and rural health impacts especially diarrheal diseases)		
भूमि में कटाव (Soil degradation)	कृषि में कम उत्पादन(Loss of agriculture output)	1516	2362
चरागाह भूमि में कटाव (Rangeland degradation)	पशुधन चराने में कमी (Loss of livestock arrying capacity)	228	417
वनों का कटाव (Deforestation)	इमारती लकड़ी के सुस्थिर विकास में कमी (Loss of sustainable timber supply)	183	244
पर्यटन (Tourism)	पर्यटन आय में कमी (Decline in tourism revenue)	142	283

उपरोक्त आँकड़े 1992 से सम्बन्धित है । यदि इसका आज आकलन किया जाए तो इसमें वृद्धि ही होगी ।

3.11 पर्यावरणीय लेखों का आकलन एवं परिणाम-पपुआ न्यू जिनी के संदर्भ में (Estimate of Environmental Accounts and their result w.r.t papua New Gunea)

पपुआ न्यू जिनी में जिस प्रकार पर्यावरणीय लेखांकन का अध्ययन किया गया है, इससे स्पष्ट होता है कि इन आकड़ों की परम्परागत लेखांकन से किस प्रकार तुलना की जा सकती है।

सारणी 3.4 अवमृदा सम्पत्तियों का लेखा (Accounts of sub-soil assets)

सारणी 3.5 परम्परागत एवं पर्यावरणीय लेखांकन के सूचकों की तुलना (Comparison of convential and environmental accounting indicators)

सारणी 3.4

अवमृदा सम्पत्तियों का लेखा

(Accounts of sub-soil assets)

	1986	**1987**	**1988**	**1989**	**1990**
प्रारम्भिक स्टॉक (Opening Stock)	1,750.0	2,648.7	3,683.7	1,584.4	-154.7
अपक्षय (Depletion)	-126.8	-209.7	-106.3	-25.2	-180.7
अन्य मात्रात्मक परिवर्तन (नई खोज) (Other Volume Changes (New-Discoveries))	9.0	122.8	175.6	-383.3	0.0
पुनः मूल्यांकन (Revaluation)	1,016.5	1,121.9	-168.6	1,330.6	n.a.
अंतिम स्टॉक (Closing Stocks)	2,648.7	3,683.7	1,584.4	-154.7	n.a.

Source: Peter Bartelmus, Ernst Lutz and S. Schweinfest (1992), 'Integrated Environmental and Economic ACCOUNTING: A Case Study for Papua New Guinea', Enviroment Working paper No54, Enviroment Department Word Bank Washington, D.C.,p.14

सारणी 3.4 अवमृदा सम्पत्तियों के (जैसे ताम्बा, सोना एवं रजत खानें) वर्ष 1986,1987 व 1988 की समाप्ति के शेषों (balances) को बतलाती है । अन्य मात्रात्मक परिवर्तन में इनसे सम्बन्धित जो खोजें हुई हैं, इसमें वृद्धि को बतलाती है ।

वर्ष के प्रारम्भिक स्टॉक का मूल्यांकन उन खानों से कुल प्राप्तियों के आधार पर किया गया है । 1988 एवं 1989 खनिज कीमतों में कमी के कारण इनके मूल्यों में कमी हो गई है अत: ऋणात्मक प्राप्तियाँ दर्शाई गई हैं । 1989 में जो ऋणात्मक मूल्य (-150) दिखलाऐ गए हैं उससे वहाँ के तकनीकी विशेषों ने एतराज जताया है । इस आधार पर कि खानों से प्राप्त आय को ऋणात्मक नहीं दिखाया जा सकता । खनन क्षेत्र में -155 की कमी अर्थव्यवस्था में तकनीकी एवं ढाँचागत परिवर्तन के कारण हुई है । इस तकनीकी परिवर्तन के कारण खनन लागत में कमी आई हैं एवं उत्पादन में क्षति भी (waste) कम हुई है । तालिका 2 पूँजी संग्रहण एवं उत्पादकता के आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत कर रही है ।

सारणी-3.5

परम्परागत एवं पर्यावरणीय लेखांकन के सूचकों की तुलना

(Comparison of conventional and environmental accounting indicators, (1990))

	Conventional accounts	Integrated ('Green') accounts	
		EDP 1[a] (after depletion of natural resources)	EDP 2[b] (after deduction of all environmental costs)
(NDP)	2760 Million K'	2580 Million k'	2526 Million K'
(EDP/NDP)	-	92.99%	90.97%
C-	2754	2754	2754
C/NDP	99.8%	106%	109%
*CAP (net)	463 Million k'	282 Million K'	228 Million K'
*CAP/NDP (capital format of NDP, i.e. capital efficiency)	17%	11%	9%

a. Net price valuation of mineral resources depletion.

b. Potential damage restoration on avoidance cost valuation in the case of waste water discharge (from mining); comensation cost for environmental impacts of forest clearing and dam construction.

Notes : Results are preliminary/tentative Human capital is exluded

NDP=Net Domestic Product

EDP= Environmentally Adjusted Net Domestic Product

C=Final Consumption

*CAP=Capital Formation/Accumulation

Source: Bartelmus, Lutz and Schweinfest (1992)

सारणी-3.5 बतलाती है कि प्रकर्तिक संसाधनों में अपक्षय (जैसे EDP_1 से स्पष्ट होता है) के कारण विशुद्ध पूंजी निर्माण में करीब 60 प्रतिशत मूल्य वृद्धि की कमी आ गई है। यदि सभी पर्यावरणीय लागतों (EDP_2) को सम्मिलित कर लिया जाए तो पूँजी संग्रहण करीब 50 प्रतिशत से कम हो गया है।

3.12 सांराश (Summary)

समष्टि अर्थशास्त्र में हम सब लोग अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति की जानकारी के बारे में आदी हो चले हैं । यह जानकारी बेरोजगारी की दर, कीमत स्तर, विकास की दर व सकल राष्ट्रीय उत्पाद से सम्बन्धित होती है । किन्तु यह सब सूचनाऐं जैसी वर्तमान में उपलब्ध हैं, वैसी पहले उपलब्ध नहीं थी । तीसा (1930_S) के प्रारम्भ में साइमन कुजनेट्स ने संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) की अर्थव्यवस्था का पहली बार सकल राष्ट्रीय आय का लेखांकन प्रस्तुत किया । तीसा (1930_S) व चालीसा (1940_S) के समय इस लेखांकन का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका में द्वितीय विश्व युद्ध के नियोजन के लिए किया गया । तब से संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रीय आय एवं उत्पाद लेखांकन National Income and Product Accounts) रखा जा रहा है । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्य देशों ने भी राष्ट्रीय आय के आकलन की शुरूआत की । सभी राष्ट्रों में आय का लेखांकन उन राष्ट्रों के बीच तुलना करने में सहायक हो सके इस दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) ने मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts ओर SNA) की व्यवस्था दी जिसे सभी राष्ट्र अपने राष्ट्रीय आय की गणना करने में प्रयोग में ले सकें ।

राष्ट्रीय आय गणना से निजी क्षेत्र को तो लाभ है ही, इससे सरकार को भी नीति निर्माण में लाभ मिलता है । राष्ट्रीय आय में आय के अतिरिक्त उपभोग, बचत व राष्ट्रीय आय के वितरण से सम्बन्धित आँकड़े भी उपलब्ध होते हैं जिसके आधार पर एक देश में वस्तुओं के उत्पादन व निवेश से सम्बन्धित निर्णय लिए जा सकते हैं । देश में मौद्रिक व राजकोषीय नीति का प्रयोग भी राष्ट्रीय आय की गणना से उपयुक्त बन पड़ता है । किन्तु इन लेखों में अभी तक पर्यावरण प्रदूषण की लागतें एवं प्राकृतिक संसाधनों के अपक्षय से सम्बन्धित मूल्य नहीं जोड़े गए हैं, जिन्हें अब जोड़ा जाना आवश्यक है और इसी आधार पर हरित लेखांकन की रचना की गई है ।

3.13 शब्दावली (Glossary)

1. उत्पादक सम्पतियाँ (Produced Assets)

उत्पादक सम्पतियों में भवन, सड़क, मशीनें, वस्तुऐं, प्राकृतिक सम्पत्तियाँ जैसे पशुधन, बाग, पौधारोपण, काष्ठ, भूभाग, खेत में खड़ी या कटी हुई कृषि उपज, कला कार्य, ऐतिहासिक स्मारक गैस व कचरा, शोधन यंत्र, जंगली जानवरों की सुरक्षा हेतु बाढ़ आदि सम्मिलित है ।

2. अ-उत्पादक आर्थिक सम्पत्तियाँ (Non-Produced Economic Assets)

इसमें वे सब भौतिक प्राकृतिक सम्पत्तियाँ (Tangible Natural Assets) जैसे भूमि, भवन के नीचे की भूमि कृषि भूमि, आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, भूमिगत जल, कोयले, तेल एवं गैस भण्डार, धात्विक एवं अधात्विक खनिज भण्डार एवं जल सम्मिलित हैं । अ-उत्पादित पर्यावरणीय सम्पत्तियों के लिए मानक राष्ट्रीय लेखों (Standard National Accounts) में कोई अलग वर्गीकरण नहीं है ।

3. हरित लेखांकन (Green Accounting)

राष्ट्रीय आय लेखांकन के साथ जब पूरक लेखांकन (satellite Accounting) को जोड़ दिया जाता है तो यह हरित लेखांकन है । दूसरे शब्दों में यह पर्यावरणीय समायोजित आर्थिक लेखांकन है । इसे पर्यावरणीय लेखांकन भी कहा जाता है । इस विधि का नाम एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (System of Integrated Environmental & Economic Accounting) है ।

4. सुस्थिर सकल आय (Sustainable Gross Income)

जब आय आकलन में पर्यावरणीय व्यय एवं प्राकृतिक संसाधनों के वर्तमान उपभोग मूल्य को घटा दिया जाता है तो शेष बची सुस्थिर सकल आय है ।

5. पूरक लेखे (Satellite Accounts)

यह वे लेखे हैं जो प्राकृतिक संसाधनों, पर्यावरण एवं पर्यावरण लागतों के आकलन से सम्बन्धित है । यह पर्यावरण से सम्बन्धित लेखे, मानक राष्ट्रीय लेखे (Standard National Accounts) में कोई परिवर्तन नहीं करेंगे और न ही इसके आधार पर आकलित सकल राष्ट्रीय आय को उपलब्ध सकल राष्ट्रीय आय के आकडों में बदला जाएगा । फिर भी पूरक लेखे राष्ट्रों को प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण सम्बन्धी लेखा जोखा करने की प्रेरणा प्रदान करेंगे । इन पूरक खातों के कारण पर्यावरणीय समायोजित विशुद्ध घरेलू उत्पाद (Environmentally Adjusted Net Domestic Product-EDP) एवं पर्यावरणीय समायोजित राष्ट्रीय आय (Environmentally Adjusted National Income-ENI) का आंकलन करना संभव हो सकेगा ।

3.14 संदर्भ-ग्रंथ (References)

1. Bartelmus Peter, Accounting for Sustainable Growth and Devlopment; charges 1992
2. Bartelmus Peter, Ernst Lutz and Jan Van Tongeren, Environmental Accounting with an Operational Perspective 1933: World Bank Publication.

3. Bartelmus Peter, Ernst Lutz and Schweinfest, Integrated Environmental and Economic Accounting-A case study for Papua New Guinea1992
4. Kirk Hamilton and Ernst Litz, Green National Accounts: Policy Uses and Empirical Experience (E.D. Paper no39)July 1996.
5. Lutz Ernst, Toward Improved Accounting for the Environment May 1993.
6. Peskin Henry, and Ernst Lutz, A Survey of Resource and Environmental Accounting in Industrialised Countries August 1990
7. Peskin in Henry, M., Environmental Accounting for sustainable Development Washington D.C. World Bank.
8. Ismail Serageldin and Andrew Steer, Making Development Sustainable from Concepts to Action.
9. Dixon john Jan Bakkes, Kirk Hamilton Arundhati Kunte Ernst Lutz at. El., Expanding the measure of wealth : Indicators of Environmentally Sustainable Development March 1997.
10. Statistical Office of the United Stated (UNSTAT): SNA Handbook on Integrated Environmental and Economic Accounting, Preliminary Draft of Part I General Concept, 1990.
11. The Hindu: Survey of the Environment 1996.

3.15 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. राष्ट्रीय आय लेखांकन में पर्यावरणीय संदर्भ की संक्षिप्त में विवेचना कीजिए ।
2. एकीकृत पर्यावरणीय एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति के उद्देश्य एवं पर्यावरणीय लेखांकन को परिभाषित कीजिए ।
3. पर्यावरणीय समायोजित आय की गणना करने के उदाहरण प्रस्तुत कीजिए ।
4. पर्यावरणीय समायोजित आय की गणना करने का पपुआ न्यू जिनी का उदाहरण प्रस्तुत करें ।

इकाई - 4

रोजगार का परम्परागत सिद्धान्त, से का नियम एवं परम्परागत सिद्धान्त की आलोचना

(The Classical Theory of Employment, Say's Laws and Critisms of the classical Theory)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 रोजगार के परम्परागत सिद्धान्त की मान्यताएं

4.3 से का बाजार नियम

4.4 रोजगार का परम्परावादी सिद्धान्त

4.5 परम्परागत सिद्धान्त की आलोचना

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 सन्दर्भ ग्रन्ध

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह जान सकेंगे कि

- अर्थव्यवस्था के बारे में परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के विचार क्या थे?
- अर्थव्यवस्था किस प्रकार बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के स्वत: पूर्ण रोजगार के स्तर पर साम्यावस्था प्राप्त करती है एवं इस पर कायम रहती है ।
- श्रम की मांग एवं पूर्ति में साम्य किस प्रकार स्थापित होता है ।
- प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.बीसे ने किस तरह के तर्क प्रस्तुत कर अर्थव्यवस्था को स्वचालित बताया ।
- से का बाजार नियम क्या है?
- परम्परागत सिद्धान्त की कौनसी कमजोरियों को कीन्स ने अपना निशाना बनाया एवं सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया ।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

हेन्सन के अनुसार परम्परावादी विचारों के पक्ष में कहा गया है कि अर्थशास्त्रियों के एक बड़े समूह द्वारा दीर्घकाल तक स्वीकृत किया गया कोई भी आर्थिक सिद्धान्त पूर्णत: निरूपयोगी नहीं कहा जा सकता । यद्यपि ये सिद्धान्त बाद के अर्थशास्त्रियों द्वारा अस्वीकार कर दिये गये लेकिन अर्थव्यवस्था की क्रियाशीलता के परीक्षण हेतु वे आज भी महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि प्रदान

करते हैं । संस्थापक अर्थशास्त्र के सूत्रधार एडम्स स्मिथ हैं । माल्थस, रिकॉर्डो जे.बीसे का योगदान भुलाया नहीं जा सकता । सीनियर और मिल ने परम्परावादी विचारधारा की पुनर्व्याख्या की और प्रोमार्शल ने परम्परावादी विचारधारा को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया । अत: उन्हें नवपरम्परावादी कहा जाता है । परम्परावादी अर्थशास्त्रियों द्वारा रोजगार के सम्बन्ध में प्रस्तुत विचारों में से का बाजार नियम (Say's Market-Law) बहुत महत्वपूर्ण है । इस नियम को बाद में अस्वीकार कर दिया गया और उसकी बहुत आलोचना हुई । इसी आलोचना में सुधार करने हेतु कीन्स ने रोजगार का सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया ।

4.2 रोजगार का परम्परावादी सिद्धान्त की मान्यताएं(Assumptions of the classical Theory of Employment)

परम्परावादी सिद्धान्त बिना मुद्रा स्फीति के पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है । यदि मजदूरी की दर में लोचशीलता हो तो आर्थिक व्यवस्था की समायोजन शक्तियां स्वयंमेव पूर्ण रोजगार को बनाये रखती है । इस प्रकार पूर्ण रोजगार एक सामान्य परिस्थिति है और इस स्तर से कोई विलगाव असामान्य परिस्थिति है जिसमें स्वयंमेव पूर्ण रोजगार स्तर की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति होती है । उत्पादन और रोजगार का परम्परावादी सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है-

1. **बिना मुद्रा स्फीति के पूर्ण रोजगार का अस्तित्व बना रहता है-** परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की निष्ठा अर्थव्यवस्था की साम्य शक्तियों में थी । उनका मत था कि यदि इस साम्यावस्था में कोई हलचल होती है अथवा अल्पकाल के लिए कोई धक्का लगता है तो भी पूर्ण रोजगार की साम्यावस्था स्वत: प्राप्त हो जाएगी । यदि कभी अल्पकालीन असाम्य की अवस्था किसी कारणवश कुछ लम्बे समय तक चले तब भी कीमत तंत्र एवं शक्तिशाली बाजार तंत्र उन्हें पुन: साम्य की ओर ले जाएगा । एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह थी कि साम्यावस्था की ओर जाने पर भी अर्थव्यवस्था में स्फीति कारक शक्तियां उत्पन्न नहीं होगी । इस मान्यता का प्रमुख कारण उनका विश्वास था जिसमें वे अर्थव्यवस्था में वास्तविक प्रवाह (Real Flow) को महत्व देते थे ।
2. **एक बन्द और पूर्णत: स्वतंत्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पाई जाती है जिसमें विदेशो हस्तक्षेप नहीं होता-** कीमत तंत्र का संचालन मांग एवं पूर्ति की शक्तियां करती है । इन शक्तियों के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि बाजार किसी भी प्रकार के आन्तरिक अथवा बाह्य हस्तक्षेप से मुक्त रहे । बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हो एवं एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता जन्म न ले सके । परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का मत था कि अर्थव्यवस्था का शेष विश्व के साथ लेन-देन नहीं होता अर्थात् आयात-निर्यात नहीं होता एवं सरकारी हस्तक्षेप का भी पूर्णत: अभाव है।
3. **श्रम और वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती है-** उपर्युक्त बिन्दु में वस्तु बाजार (Commodity Market) में पूर्ण प्रतियोगिता की बात कही गई है जबकि यहां हम

साधन बाजार (Factor Market) की बात करते हैं । साधन बाजार में श्रम एवं पूँजी जैसे उत्पादन के साधनों का क्रय विक्रय होता है । वस्तु बाजार की भांति यहां भी पूर्ण प्रतियोगिता होती है । कहने का अभिप्राय यह है कि श्रम के क्रेता एवं श्रम के विक्रेता बड़ी तादाद में होते हैं । अत: साधन कीमत पर इनकी व्यक्तिगत मांग एवं पूर्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

4. **श्रम एकरूपता पायी जाती है-** श्रम की सभी इकाइयां एकरूप होती है । एकरूप (Homogenous) होने का अभिप्राय यह है कि उत्पादन-उत्पादकता आदि बराबर मिलती है हम चाहे किसी भी इकाई को रोजगार प्रदान करें । एकरूपता की मान्यता लेने से हम रोजगार में लगने वाले एवं बेरोजगारों की कार्यकुशलता में भी भेद नहीं करते ।
5. **अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण उत्पादन-उपभोग और विनियोग व्यय में विभाजित होता है-** उत्पादन के सम्बन्ध में यह मान्यता अत्यधिक महत्वपूर्ण है । सम्पूर्ण उत्पादन (अथवा आय) में से एक भाग व्यक्ति अपनी उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यय करता है जबकि दूसरा भाग वह बचा लेता है । इस प्रकार आय का वह भाग जो बचत में जाता है पुन: पूँजी बाजार के माध्यम से विनियोग में व्यय हो जाता है । इस प्रकार व्यक्ति अपनी आय को उपभोग जय एवं विनियोग व्यय में बांटकर सम्पूर्ण राशि व्यय कर देता है ।
6. **मुद्रा की मात्रा दी हुई होती है-** परम्परावादी अर्थशास्त्र की एक अन्य मान्यता मुद्रा की पूर्ति को बाह्य घटक मानना है । मुद्रा की पूर्ति अथवा मात्रा का निर्धारण मुद्रा अधिकारी करता है एवं यह मात्रा किन घटकों पर निर्भर करती है? यह देश में व्यापार की मात्रा एवं वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन पर निर्भर करती है । परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में रूचि दिखलाई थी अर्थात् मुद्रा की मात्रा एवं इसके मूल्य के विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध है ।
7. **मजदूरी और मूल्यों में लोचशीलता पाई जाती है-** कीमत-मजदूरी नम्यता सम्बन्धी मान्यता भी महत्वपूर्ण है । यह नम्यता अथवा लोचशीलता ही पूर्णरोजगार की गारण्टी है । मन्दी काल में बेरोजगारी एवं अतिउत्पादन से कीमतें गिरेगी इसके परिणाम स्वरूप पुन: मांग में वृद्धि होगी जो कि मंदी के उपचार के लिए आवश्यक है ।
8. **मौद्रिक मजदूरी और वास्तविक मजदूरी परस्पर सम्बद्ध और आनुपातिक होती है-** परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के मत में देश में रोजगार की मात्रा मजदूरी पर निर्भर होती है । कम मजदूरी पर रोजगार अधिक मिलेगा एवं ऊँची मजदूरी पर कम रोजगार उपलब्ध होगा ।
9. **अल्पकाल में पूँजी की मात्रा और तकनीकी ज्ञान स्थिर होते हैं-** परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने अल्पकालीन उत्पादन फलन की व्याख्या में केवल श्रम को परिवर्तनशील साधन माना है । उनके मत में उत्पादन तीन साधनों पर निर्भर है - श्रम (L) पूँजी

(K) एवं तकनीकी (T) इनमें से दो साधन पूँजी एवं तकनीकी स्थिर रहते हैं । उत्पादन का ह्रासमान नियम क्रियाशील होता है ।

4.3 से का बाजार नियम (Say's Laws of Market)

से का बाजार नियम रोजगार के परम्परावादी सिद्धान्त का निचोड़ है । जे.बीसे 19वीं सदी के आरम्भ में एक फ्रेन्च अर्थशास्त्री थे । उनके अनुसार "पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न करती है।" "Supply Creates its Own Demand" यही से का बाजार नियम है । उत्पादन ही वस्तुओं के लिये बाजार निर्मित करता है । सामान्य अति उत्पादन और इस प्रकार सामान्य बेरोजगारी असम्भव है । चूँकि सामान्य अति उत्पादन नहीं हो सकता अत: सामान्य बेरोजगारी भी नहीं हो सकती । पूर्ण रोजगार एक सामान्य स्थिति है जिसमें किसी भी प्रकार का व्यवधान असामान्य परिस्थिति है । चूँकि पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न करती है अत: किसी भी वस्तु का उत्पादन अपने लिये मांग पैदा कर लेता है और सामान्य अति उत्पादन की कोई समस्या नहीं रहती । उत्पादन लोगों को रोजगारी देता है और रोजगार से उन्हें क्रय शक्ति प्राप्त होती है जिससे वे किया गया उत्पादन खरीद सकते है अत: सामान्य अति उत्पादन असम्भव है और इसलिये सामान्य बेरोजगारी असामान्य है ।

प्रो. से के अनुसार अर्थव्यवस्था में कुल व्यय की दर सदैव इतनी पर्याप्त रहेगी कि सभी साधनों को पूर्णत: कार्य में संलग्न रखा जा सके ।

मान्यता

1. इस नियम में यह मान्यता है कि सम्पूर्ण आय का व्यय स्वत: हो जाता है । उत्पादन क्रिया में भाग लेने से अर्जित अधिकांश आय उपभोग पर खर्च कर दी जाती है और उसका जो अंश बच जाता है, उसे पूँजीगत वस्तुओं पर खर्च कर दिया जाता है अर्थात् बचत का निवेश या विनियोग कर दिया जाता है । आय का यह अविराम प्रवाह बना रहता है अत: पूर्ति अपनी मांग स्वयं पैदा करती है । अत: सामान्य अति उत्पादन और सामान्य बेरोजगारी सम्भव नहीं है ।
2. से की दूसरी मान्यता यह है कि स्वतंत्र बाजार की क्रियाशीलता में सरकारी या गैर सरकारी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए । श्रम तथा अन्य साधनों को पूर्ण रोजगार देने के लिये यह जरूरी है कि सरकार या गैर सरकारी ऐजेन्सियां आर्थिक क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें । निर्बाध्य व्यापार के सभी साधनों को सदैव पूर्ण रोजगार मिलता रहता है ।
3. ऐच्छिक बेरोजगारी (Voluntary Unemployment) को बेरोजगारी नहीं माना जाता । ऐच्छिक बेरोजगारी तब होती है जब मजदूर प्रचलित मजदूरी दर पर काम करने को तैयार नहीं होते । यदि कोई धनी व्यक्ति कोई काम न करते हुए अपनी सम्पत्ति की आय पर निर्भर होता है तो यह भी ऐच्छिक बेरोजगारी है । जब काम उपलब्ध हो और कोई काम न करना चाहे तो इस स्थिति को बेरोजगारी नहीं कहा जा सकता ।
4. संघर्षात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment) को भी सामान्य बेरोजगारी नहीं कहा जा सकता । यह श्रम बाजार सम्बन्धी अपूर्णताओं के कारण उत्पन्न होती है ।

यदि श्रमिकों को रोजगार के अवसरों की पूर्ण जानकारी न हो या कच्चे माल की कमी या यन्त्रों की खराबी या बदलने के कारण कुछ समय तक काम कम या बन्द हो जाय तो इसे संघर्षात्मक बेरोजगारी की स्थिति कहते हैं ।

इस प्रकार यदि बाजार की शक्तियों की स्वतंत्र क्रियाशीलता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय तो पूर्ण रोजगार की दशा उपस्थित रहेगी और अनैच्छिक बेरोजगारी नहीं पाई जायेगी । अन्य शब्दों में यदि मूल्य और मजदूरी पूर्णत: लोचदार हैं तो अर्थव्यवस्था स्वयं को पूर्ण रोजगार के स्तर पर समायोजित कर लेगी ।

से के बाजार नियम के निहितार्थ-

1. **अतिउत्पादन एवं बेरोजगारी** उत्पादन के बाजार में पहुँचने से पूर्व उत्पादन मूल्य के बराबर क्रयशक्ति साधनों के पारिश्रमिक के रूप में बाजार में पहुँच जाती है । अत: अर्थव्यवस्था में अति उत्पादन की स्थिति सम्भव नहीं है । इसी प्रकार चूँकि मजदूरी नम्य है देश में बेरोजगारी सम्भव नहीं है ।
2. **स्वचालितता** 'से' के बाजार नियम का दूसरा अर्थ यह भी है कि बाजार स्वचालित है । यह मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के आधार पर क्रियाशील होता है । कीमत निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां मांग = पूर्ति की दशा है । इसमें किसी भी प्रकार का असाम्य होने पर कीमतों में परिवर्तन द्वारा पुन: साम्य स्थापित हो जाएगा ।
3. **बेरोजगारों को रोजगार में लगाना सदैव लाभप्रद** 'से' के बाजार नियम से हम यह भी अभिप्राय लगाते हैं कि उद्योगपति के लिए बेरोजगारों को रोजगार देना सदैव एक लाभकारी सौदा है क्योंकि उनके द्वारा किये गये उत्पादन को बेचकर वह आय अर्जित करता है ।
4. **ब्याज दर एवं मजदूरीयों, लचीली एवं परिवर्तनीय** यह बिन्दु हम परम्परावादी सिद्धान्तों की मान्यता की चर्चा करते समय पूर्व में कर चुके हैं । यह लोचशीलता एवं नमनीयता ही साम्य की गारण्टी है ।
5. **राज्य अथवा सरकार की भूमिका नहीं** 'से' के बाजार नियम में राज्य की कोई भूमिका नहीं है। उत्पादक एवं उपभोक्ता दो ही क्षेत्र हैं एवं इनके मध्य वास्तविक आय का प्रवाह निरन्तर गतिमान होता है ।

से के बाजार नियम का कमजोर एवं मजबूत रूप

'से' के बाजार नियम कमजोर एवं मजबूत स्वरूप को अलग-अलग रूप में समझाया गया है । ट्रिविथिक नामक अर्थशास्त्री के मत में कमजोर स्वरूप में प्रत्येक पूर्ति मांग उत्पन्न करती है यह माना जाता है । यह कमजोर पक्ष यह भी मानने को तैयार नहीं है कि उत्पादन पूर्ण रोजगार के स्तर पर ही होगा । इनके मत में अर्थव्यवस्था में मंदी एवं तेजी की स्थितियां विद्यमान हो सकती हैं । मजबूत रूप में से के बाजार नियम की व्याख्या करते समय यह स्वीकार किया जाता है कि एक प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था में साम्य की स्थिति स्वत: ही पूर्ण रोजगार स्तर पर ही प्राप्त होगी । इस पक्ष में सकल मांग एवं सकल पूर्ति के साम्य की कल्पना की गई है । इस प्रकार परम्परावादी सिद्धान्त यह स्वीकार नहीं करता कि कभी बाजार

में प्रभावपूर्ण मांग की कमी भी हो सकती है । मजबूत रूप में से के बाजार नियम में वस्तु बाजार के साथ-साथ साधन बाजार में भी साम्य स्थापित होता है ।

- **प्रो. पीगू के विचार**

प्रो. पीगू ने इस विचारधारा को व्यवस्थित रूप दिया । उनके अनुसार बेरोजगारी के दबाव में मजदूरी की दरें गिर जाती है और वे तब तक गिरती रहती है जब तक काम करने के इच्छुक सभी व्यक्तियों को रोजगार नहीं मिल जाता । प्रोपीगू का विचार है कि देश में बेरोजगारी होने पर मजदूरी की दर में कमी की जाने से वह स्वत: ही ठीक हो जाएगी क्योंकि मजदूरी घटने से उत्पादक अधिक मजदूरों की मांग करेंगे । अत: पीगू की मजदूरी कटौती नीति के अनुसार यदि हम सैद्धान्तिक व्यवस्था में लोचशील मजदूरी को स्वीकार कर लें तो बेरोजगारी दूर की जा सकती है ।

प्रो. केनन और प्रोशुम्पीटर ने भी प्रोपीगू के विचारों का समर्थन किया है ।

4.4 रोजगार परम्परावादी सिद्धान्त (The Classical Theory of Employment)

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि श्रम और उत्पादन के साधन हमेशा पूर्ण रोजगार की स्थिति में रहते हैं । उनके अनुसार कुल उत्पादन का निर्धारण रोजगार यानी श्रम की मांग और श्रम की पूर्ति द्वारा होता है ।

- **श्रम की मांग**

यदि उत्पादन की तकनीक और पूँजी स्टॉक स्थिर हो तो श्रम की अतिरिक्त इकाइयों को लगाने से घटती हुई दर पर अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होता है यानी श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता क्रमश: घटती जाती है । अत: श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है ।

अर्थात्

$$Q = f(N)$$

जहां Q = उत्पादन स्तर

f = फलन

N = रोजगार स्तर

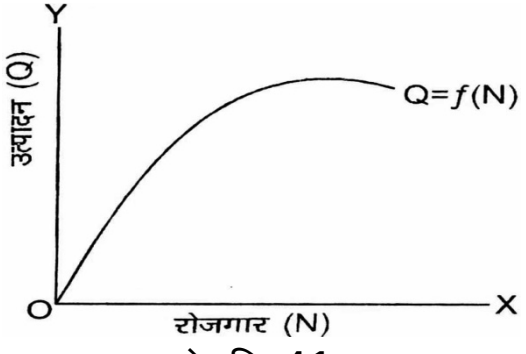

रेखाचित्र 4.1

उपर्युक्त रेखाचित्र 4.1 में X अक्ष पर रोजगार के स्तर एवं Y अक्ष पर उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित किया गया है जो दर्शाता है कि रोजगार बढ़ने पर उत्पादन बढ़ता है किन्तु एक निश्चित सीमा के बाद वह घट सकता है । परम्परावादियों के अनुसार किसी समय विशेष पर श्रम की मांग उस समय प्रचलित वास्तविक मजदूरी दर पर निर्भर करती है । अर्थात् श्रम की मांग वास्तविक मजदूरी दर का फलन है ।

$L_d = f(w)$

जहां L_d = श्रम की मांग

f = फलन

W = मजदूरी दर

श्रम की मांग और वास्तविक मजदूरी दर में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है । अर्थात वास्तविक मजदूरी दर जितनी कम होगी श्रमिकों की मांग उतनी ही अधिक होगी । इसे रेखाचित्र 4.2 में स्पष्ट किया गया है ।

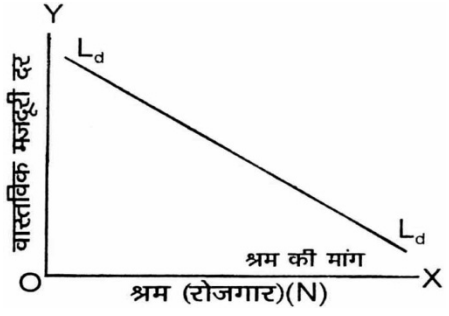

रेखाचित्र 4.2

श्रम की पूर्ति

परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रम के पूर्ति वक्र का ढाल धनात्मक होता है । अर्थात् वास्तविक मजदूरी दर में वृद्धि के साथ श्रम पूर्ति बढ़ती है । इसे रेखाचित्र 4.3 में दर्शाया जा सकता है।

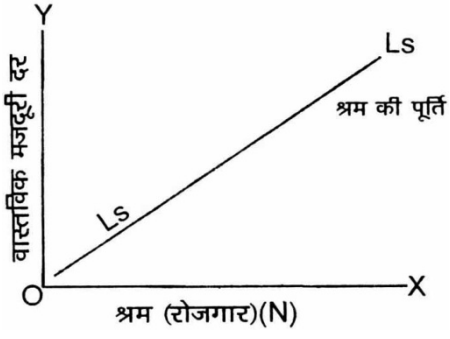

रेखाचित्र 4.3

श्रम के पूर्ति फलन को इस प्रकार दिखाया जा सकता है ।

$Ls = f(W)$

जहां Ls = श्रम की मांग

f = फलन

W = मजदूरी दर

रोजगार का निर्धारण :

परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था के श्रम बाजार में मजदूरी की दर और रोजगार का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहां मांगी जाने वाली श्रम मात्रा और श्रम की पूर्ति आपस में समान होती है । इसे निम्न रेखाचित्र में दर्शाया गया है ।

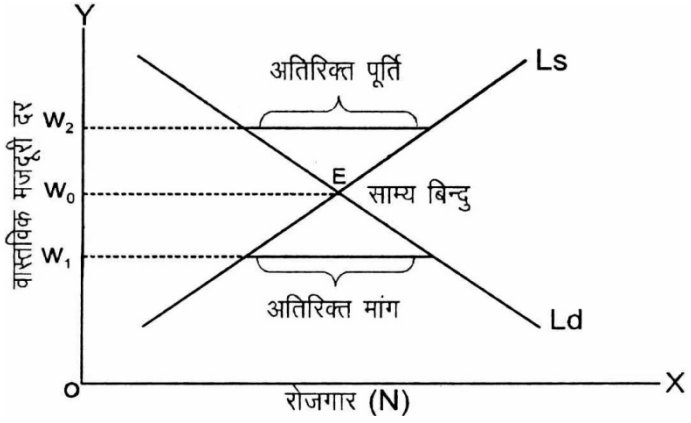

रेखाचित्र 4.4

रेखाचित्र 4.4 बताता है कि E बिन्दु पर श्रम बाजार में श्रम की मांग और पूर्ति समान है अर्थात् यह पूर्ण रोजगार की स्थिति है । अर्थात W_0 उचित मजदूरी स्तर है जिस पूर्ण रोजगार की स्थिति है । यदि मजदूरी इससे बढ़ जाती है तो श्रम की पूर्ति बढ़ जायेगी और मांग घट जायेगी जिससे श्रम बाजार में बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न होगी । ऐसी स्थिति में रोजगार प्राप्त करने हेतु श्रमिकों में आपस में स्पर्धा होगी जिससे मजदूरी की दर W_2 से घटकर W_0 पर आ जावेगी । इसके विपरीत यदि वास्तविक मजदूरी दर W_1 साम्य दर W_0 से कम है तो श्रम पूर्ति श्रम की मांग से कम हो जावेगी । अतिरिक्त मांग के कारण नियोक्ताओं में आपस में स्पर्धा होगी जिससे वास्तविक मजदूरी की दर W_1 से बढ़कर फिर से W_0 के बराबर हो जाएगी। अब श्रम बाजार में पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित हो जाएगी जहां श्रम की कुल मांग व श्रम की कुल पूर्ति समान होगी । इस रोजगार स्तर पर उन सभी व्यक्तियों को रोजगार मिल जाता है जो प्रचलित मजदूरी दर पर काम करने को तैयार हैं । जो इस दर पर काम करने को तैयार नहीं हैं, दे ऐच्छिक रूप से बेरोजगार हैं ।

4.5 परम्परागत सिद्धान्त की आलोचना (Criticisms of the Classical Theory)

कीन्स ने परम्परागत सिद्धान्त की अवास्तविक मान्यताओं के लिए उसकी आलोचना की। उन्होंने अपने "सामान्य सिद्धान्त" नामक ग्रन्ध में निम्न आधारों पर परम्परावादी सिद्धान्त और से के बाजार नियम की आलोचना की है ।

- **पूर्ण रोजगार साम्य एक गलत मान्यता है** पूर्ण रोजगार अर्थव्यवस्था की एक विशेष अवस्था होती है न कि सामान्य अवस्था । एक पूँजीवादी व्यवस्था में सामान्य अवस्था

न्यून रोजगार की होती है क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था से के नियमानुसार नहीं चलती और वहां पूर्ति सामान्यत: मांग से अधिक होती है ।

- **पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अनैच्छिक बेरोजगारी भी जाई जाती है** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ऐसे हजारों श्रमिक होते हैं जो प्रचलित मजदूरी दर पर काम करने को तैयार हैं पर उन्हें काम नहीं मिलता । इस प्रकार वे ऐच्छिक रूप से नहीं बल्कि अनैच्छिक रूप से बेरोजगार रहते है।
- **पूर्ति सदा अपनी मांग उत्पन्न नहीं करती** कीन्स ने से के इस कथन को अस्वीकार कर दिया कि पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न करती है । साधनों के स्वामी उनके द्वारा अर्जित समस्त आय को व्यय नहीं करते । उसका एक भाग बचा लिया जाता है ओर जरूरी नहीं कि सम्पूर्ण बचत का विनियोग कर दिया जाय । परिणामस्वरूप प्रभावपूर्ण मांग कम हो जाती है जिससे सामान्य बेरोजगारी उत्पन्न होती है । कीन्स ने इसे सीमान्त उपभोग प्रवृति के एक से कम होने के सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट किया ।
- **स्वतंत्र छोड़ो (Laissez Faire) अमान्य है** कीन्स ने से की अहस्तक्षेप नीति को अमान्य कर दिया । उन्होंने कहा कि अर्थव्यवस्था की पूर्ण स्वतंत्र क्रियाशीलता और सरकार द्वारा शून्य हस्तक्षेप की नीति अनुचित है । कीन्स के अनुसार एक पूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था में आय का विषम वितरण होता है । इसमें एक वर्ग अपनी बड़ी आय को पूर्णत: खर्च नहीं करता और उसका एक बड़ा हिस्सा बचाता है । दूसरी ओर गरीब आय के अभाव में अपनी सभी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पाता जिससे कुल मांग कुल पूर्ति से कम हो जाती है । इससे अर्थव्यवस्था में अति उत्पादन और बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है । इसी कारण से तीसा की महान मन्दी पैदा हुई। यदि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था स्वयं प्रभावी और स्वयं सुधारवादी होती तो ऐसा नहीं होता । इसलिए कीन्स ने राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन किया जो अर्थव्यवस्था में भौतिक और राजकोषीय नीतियों द्वारा मांग और पूर्ति में सामन्तस्य ला सके ।
- **बचत और विनियोग कीं समानता** परम्परावादियों के अनुसार बचत और विनियोग समान होते हैं और यदि वे असमान हुए तो ब्याज दर के यंत्र द्वारा उन्हें समान किया जा सकता है । कीन्स के अनुसार बचत और विनियोग में ब्याज दर द्वारा नहीं बल्कि आय के स्तर द्वारा समानता लाई जा सकती है ।
- **मजदूरी दर घटाने से मांग घटती है** पीगू के अनुसार मजदूरी दर घटाने से रोजगार बढ़ेगा परन्तु कीन्स के अनुसार मजदूरी दर घटाने से श्रमिकों की क्रय शक्ति घटेगी, जिससे उनकी वस्तुओं की मांग घटेगी । इससे उत्पादन घटेगा और परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ेगी । कीन्स के अनुसार रोजगार को मौद्रिक और राजकोषीय उपायों द्वारा बढ़ाया जा सकता है, न कि मजदूरी घटाकर ।
- **सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है** कीन्स सरकारी अहस्तक्षेप की परम्परावादी नीति को अमान्य करते हैं । उनके अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था स्वयंमेव उत्पादक शक्तियों का पूर्ण उपयोग करने में अक्षम है । इसके लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है । सरकार आर्थिक गतिविधि के स्तर को बढ़ाने के लिए स्वयं विनियोग कर सकती है । वह श्रम

संघ, न्यूनतम मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित नियम व कानून बना सकती है । अत: कीन्स अर्थव्यवस्था के संसाधनों के पूर्ण दोहण और रोजगार संवर्धन हेतु राजकीय हस्तक्षेप के पक्षधर है ।

- **दीर्घकाल की मान्यता गलत** कीन्स दीर्घकाल में साम्य की परम्परावादी मान्यता को गलत बताते हैं । उनके अनुसार दीर्घकाल में हम सब मर जाते हैं । उनका विश्लेषण अल्पकाल की मान्यता पर आधारित है ।

इस प्रकार रोजगार का परम्परागत सिद्धान्त और से का बाजार नियम अनेक आलोचनाओं से ग्रस्त है । कीन्स ने उनकी आलोचना करते हुए रोजगार का सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया है ।

4.6 सारांश (Summary)

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रम और उत्पादन के अन्य साधन पूर्ण रोजगार की स्थिति में रहते हैं । उनके अनुसार कुल उत्पादन रोजगार पर और रोजगार श्रम की मांग व पूर्ति पर निर्भर है । उत्पादन स्तर रोजगार स्तर का फलन है । श्रम की मांग और श्रम की पूर्ति मजदूरी दर का फलन है । मजदूरी दर घटने से श्रम की मांग बढ़ती है और श्रम की पूर्ति घटती है । इसके विपरीत मजदूरी दर बढ़ने से श्रम की मांग घटती है और श्रम की पूर्ति बढ़ती है । जिस बिन्दु पर (जिस मजदूरी दर पर) श्रम की मांग व पूर्ति समान होते हैं वह साम्य बिन्दु होता है जहां श्रम की मांग व पूर्ति बराबर होती है, अर्थात् उन सबको काम मिलता है जो काम करना चाहते हैं यही पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है।

से का बाजार नियम रोजगार के परम्परावादी सिद्धान्त का निचौड़ है । उनके अनुसार पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न करती है । उत्पादन से श्रमिकों को काम मिलता है जिससे उनकी क्रयशक्ति बढ़ती है जिससे वे वस्तुओं की मांग करते हैं और वस्तुओं लिए बाजार उत्पन्न होता है । अत: सामान्य अति बेरोजगारी नहीं मानते ।

इस प्रकार बाजार की शक्तियों की स्वतंत्र क्रियाशीलता पूर्ण रोजगार उत्पन्न करती है जिसमें अनैच्छिक बेरोजगारी नहीं रहती । कीन्स ने अनेक बिन्दुओं पर रोजगार के परम्परागत सिद्धान्त और से के बाजार नियम की आलोचना की और रोजगार का सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया ।

4.7 शब्दावली (Glossary)

परम्परागत सिद्धान्त	Classical Theory
से का बाजार नियम	Say's Law of Market
पूर्ण रोजगार	Full Employment
मजदूरी की दर	Wage Rate
फलन	Function
सीमान्त उत्पादकता	Marginal Productivity
पूँजी स्टॉक	Capital Stock

ऋणात्मक ढाल	Negative Slope
वास्तविक मजदूरी	Real Wages
अतिरिक्त मांग	Extra Demand
अतिरिक्त पूर्ति	Extra Supply
साम्य	Equilibrium
अति-उत्पादन	Over Production
ऐच्छिक बेरोजगारी	Voluntary Unemployment
संघर्षालक बेरोजगारी	Frictional Unemployment
स्वतंत्र अर्थव्यवस्था	Laissez Faire
श्रम संघ	Trade Union
न्यूनतम मजदूरी	Minimum Wages
आय की असमानता	Income Inequality
बेरोजगारी	Unemployment

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

M.L. Jhingan Macro Economic Theory, Konark Publications Pvt. Ltd. New Delhi.

G.Ackley, Macro Economics Theory.

D. N. Gurtoo, Macro Economics Theory, College Book Depot Jaipur.

ओ.के. सक्सेना एवं एच.पी.सिंह, समष्टि आर्थिक विश्लेषण, एस-चान्द एण्ड कम्पनी प्रालि., नई दिल्ली ।

D.M. Mithani, Money, Banking International Trade and Public finance, Himalaya Publishing House, Delhi

एम.एल. सेठ, "मौद्रिक अर्थशास्त्र", शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, दिल्ली ।

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. रोजगार के परम्परागत सिद्धान्त को रेखाचित्र सहित समझाइये । क्या यह एक समुचित सिद्धान्त है?
2. 'से' का बाजार नियम क्या है? उसकी क्या मान्यताएं है? कीन्स द्वारा उसकी आलोचना कैसे की गई?
3. रोजगार के परम्परावादी सिद्धान्त और से के बाजार नियम की आलोचनात्मक व्याख्या करें ।

इकाई-05

रोजगार का कीन्सयन सिद्धान्त - AD एवं AS फलन एवं प्रभावपूर्ण मांग का सिद्धान्त

(Keynasian Theory of Employment-AD & AS Function the Principle Effective Demand)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 समग्र मांग फलन

5.3 समग्र पूर्ति फलन

5.4 रोजगार के सन्तुलन का निर्धारण

5.4.1 प्रभावपूर्ण माँग

5.4.2 प्रभावपूर्ण माँग पर पूर्ण रोजगार होना आवश्यक नहीं

5.5 कीन्स का रोजगार सिद्धान्त एक दृष्टि में

5.6 कीन्स के रोजगार सिद्धान्त की आलोचनाएं

5.7 कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का व्यवहारिक महत्व

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य (Objectives)

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का विचार था कि अर्थव्यवस्था में लगभग सदैव पूर्ण रोजगार रहता है अथवा पूर्ण रोजगार स्थापित होने की प्रवृति होती है । उनका यह विचार "से" के नियम "- "पूर्ति अपनी मांग स्वंय उत्पन्न करती है" पर आधारित था । यह विचार दीर्घकाल व निर्बाध अर्थव्यवस्था पर आधारित था । 1929-36 में विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी रही जिससे बड़े पैमाने पर बैरोजगारी फैल गई, फैक्टरियां बन्द हो गई व उत्पादन बहुत घट गया । मन्दी की यह स्थिति अपने आप दूर होने को नहीं आ रही थी अत: अर्थशास्त्रियों का पूर्ण रोजगार सम्बन्धी क्लासिकल सिद्धान्त पर से विश्वास उठ गया । ऐसे समय में केन्ज महोदय ने "रोजगार ब्याज तथा मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त" नामक पुस्तक में क्लासिकल सिद्धान्त की आलोचना की व साथ ही रोजगार व मन्दी से निपटने के लिए रोजगार निर्धारण का एक क्रमबद्ध सिद्धान्त प्रतिपादित किया । प्रस्तुत इकाई में इस नवीन सिद्धान्त की व्याख्या करेंगे व

यह देखने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार से इस सिद्धान्त ने समष्टि अर्थशास्त्र को अतिमहत्वपूर्ण बना दिया । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- समझ सकेंगे कि समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति फलन से क्या अभिप्राय है? एवं इनके द्वारा रोजगार के संतुलन स्तर का निर्धारण किस प्रकार होता है?
- जान पाएंगे कि प्रभावपूर्ण मांग क्या होती है एवं यह क्यों महत्वपूर्ण है?
- कीन्स के सिद्धान्त की कमियों से परिचित हो जाएंगे ।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

अर्थशास्त्र के प्रमुख दो विभाग क्रमश: व्यष्टि व समष्टि हैं । जिसमें से इस इकाई मे समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन किया जा रहा है । समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन कीन्स के रोजगार सिद्धान्त के बिना अधूरा है, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका को नहीं स्वीकार किया था व दीर्घकालीन सिद्धान्त दिये थे जो कि वास्तविकता से परे थे परन्तु कीन्स महोदय ने बेरोजगारी को स्वीकार किया व अर्थव्यवस्था की समस्याओं का अल्पकालीन हल प्रस्तुत किया । इस अध्याय में हम प्रभावपूर्ण मांग, समस्त मांग फलन व समस्त पूर्ति फलन, रोजगार, उत्पादन का अध्ययन करेंगे साथ ही कीन्स के सिद्धान्त का सारांश व उनकी कमियों के बारे में विचार करेंगे । इकाई के अन्त में शब्दावली, सन्दर्भ ग्रन्धों की सूची व अभ्यासार्थ प्रश्न दिये गये हैं ।

5.2 समग्र मांग फलन (Aggregate Demand Function)

अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की किसी एक संख्या को रोजगार पर लगाने पर जितना उत्पादन होता है, उसको बेचने से अर्थव्यवस्था के सभी उद्यमी कुल जितनी रकम प्राप्त करने की आशा करते हैं वह अर्थव्यवस्था की रोजगार के उस स्तर पर की समस्त माँग कीमत होती है । दूसरे शब्दो में, जब अर्थव्यवस्था में रोजगार का कोई एक स्तर हो तो उस समय उस स्तर पर हुए कुल उत्पादन को बेचने से जितनी राशि प्राप्त होने का आशा या आशंसा हो, वही कुल राशि रोजगार के उस स्तर की समस्त मांग कीमत होगी । प्रो0 कीन्स के अनुसार समस्त माँग फलन रोजगार के किसी दिये हुए स्तर को रोजगार के उस स्तर पर उत्पादित प्रदा के विक्रय से प्रत्याशित आय के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है।

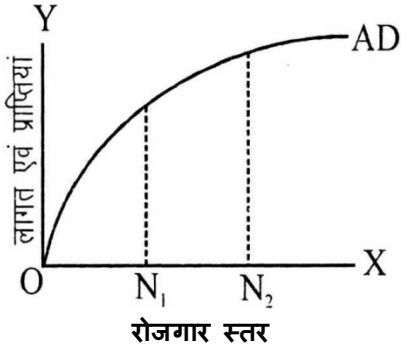

रोजगार स्तर

रेखाचित्र 5.1

चित्र 5.1 में समस्त माँग वक्र को दर्शाया गया है बायें से ऊपर दायी और से उठते हुए (ढाल) लिए होता है जो यह स्पष्ट करता है कि जैसे-जैसे रोजगार स्तर बढ़ता है समग्र माँग भी बढ़ती है । इसे समस्त माँग कीमत (Aggregate Demand Price) भी कहते हैं ।

5.3 समय पूर्ति फलन (Aggregate Supply Function)

जब अर्थव्यवस्था के सभी उद्यमी श्रमिकों द्वारा बनायी कुल वस्तुओं के लिए जितनी कुल राशि अवश्य मिलनी चाहिये ताकि वे उन श्रमिकों को लगाये रखे, उसे समस्त पूर्ति कीमत या समस्त पूर्ति फलन कहते हैं । अर्थात् अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की किसी एक संख्या को रोजगार में लगाने पर उन श्रमिकों द्वारा किये गये समूचे उत्पादन की कुल लागत को समस्त पूर्ति कीमत कहते है । स्पष्ट है कि उद्यमियों। को जब तक यह कुल लागत प्राप्त न हो रही हो, वे श्रमिकों की इस संख्या को कैसे रोजगार पर लगायेंगे । श्रमिकों की उस संख्या पर उम्पादन पर लगी हुई कुल लागत पूरी न होने पर उद्यमी उस संख्या से कम श्रमिक लगायेंगे । डिल्लर्ड के अनुसार, "समस्त पूर्ति फलन बिक्री की न्यूनतम राशियों की अनुसूची है जो रोजगार की विविध मात्राओं को प्रेरित करने के लिये आवश्यक होती है ।"

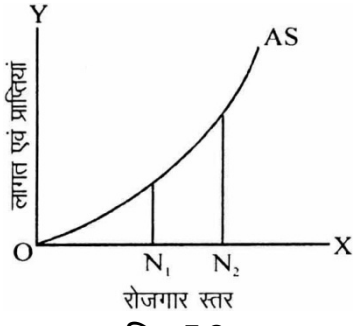

चित्र 5.2

चित्र 5.2 में समस्त पूर्ति वक्र को दिखाया गया है जो यह स्पष्ट करता है की प्राप्तियां बढ़ने की आशा पर रोजगार में वृद्धि होती जाती है ।

बोध प्रश्न - 1

1. समग्र मांग का अर्थ समझाइए
2. समग्र मांग के निर्धारक घटक कौनसे हैं?
3. समग्र पूर्ति से आपका क्या अभिप्राय है।
4. समग्र मांग वक्र का ढाल कैसा होता है?
5. समग्र पूर्ति वक्र का ढाल कैसा होता है?

5.4 रोजगार के सन्तुलन का निर्धारण (Determination of the Equilibrium Level of Employment)

कीन्स के अनुसार यदि समग्र माँग वक्र व समग्र पूर्ति वक्र को एक साथ एक ही चित्र में लिया जाय तो जिस बिन्दु पर समग्र मांग वक्र व समग्र पूर्ति वक्र बराबर होंगे वहीं रोजगार के सन्तुलन का बिन्दु होगा चित्र 5.1 व चित्र 5.2 को चित्र 5.3 में एक साथ रखा गया है ।

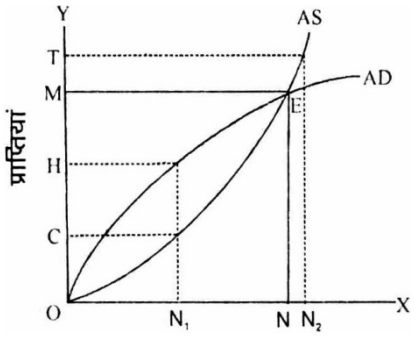

रोजगार पर लगाए गये श्रमिक

रेखाचित्र 5.3

पहले समस्त माँग वक्र को देखें यह स्पष्ट करता है कि रोजगार के भिन्न-भिन्न स्तरों पर उद्यमियों को कितनी-कितनी कुल राशि प्राप्त होने की आशा है जब वे ON_1 श्रमिको को रोजगार पर लगाते हैं तो वे यह आशा करते हैं कि उन्हें OH राशि सारे उत्पादन को बेचने से प्राप्त होगी । यदि समस्त पूर्ति वक्र को देखे तो यह वक्र दिखलाता है कि उद्यमियों को रोजगार के विभिन्न स्तरों पर कुल क्या-क्या राशि प्राप्त होगी जैसे यदि वे सोचते हैं कि उन्हें OC रूपये अवश्य प्राप्त होंगे तो वे ON_1श्रमिक काम पर लगायेंगे । चित्र संख्या 5.3 में कुल ON_2 व्यक्ति रोजगार चाहते हैं यदि उद्यमियों को OT रूपये प्राप्त होते हैं तो वे समस्त व्यक्तियों को रोजगार प्रदान कर देंगे, इससे अधिक आय प्राप्त होने पर भी और अधिक श्रमिक कार्य पर नही लगाये जायेंगे । यह बिन्दु पूर्ण रोजगार का बिन्दु है जिस पर अर्थव्यवस्था की समस्त कार्य शक्ति को कार्य प्राप्त होता है ।

अर्थव्यवस्था की समस्त माँग व समस्त पूर्ति द्वारा ही यह निर्धारित होता है कि उद्यमियों द्वारा कुल कितने आदमी रोजगार पर लगाए जाएंगे चित्र 5.3 में E बिन्दु से बाँई और जब तक रोजगार ON नहीं हो जाता समस्त माँग AD समस्त पूर्ति से अधिक है अर्थात अर्थव्यवस्था में उद्यमियों द्वारा प्रस्तुत उत्पादन की माँग कीमत उनके पूर्ति व्यय से अधिक है, अत: उद्यमियों में और अधिक श्रमिकों को रोजगार में लगाने के लिए प्रतियोगिता रहेगी । अब यदि श्रम संख्या ON से बढ़ जाती है तो AD वक्र AS वक्र के दायीं और चला जाता है अर्थात समस्त पूर्ति कीमत समस्त माँग कीमत की तुलना में अधिक हो जाती हैं अर्थात् रोजगार स्तर ON से बढ़ जाने पर उद्यमियों को हानि होगी । अत: वे कम व्यक्ति कार्य पर लगायेंगे जब तक कि रोजगार ON पर नहीं पहुँच जाता । ON रोजगार का वह स्तर है जहाँ समस्त माँग वक्र AD और समस्त पूर्ति वक्र AS एक दूसरे को काटते हैं यही सन्तुलन का बिन्दु होगा अन्य शब्दों में रोजगार तब सन्तुलन की अवस्था में होगा जब उद्यमियों को अपना उत्पादन बेचने मे उतनी रकम मिलने की आशा है । जितनी रकम उन्हें अवश्य मिलनी चाहिए । यही सन्तुलन का बिन्दु होगा ।

5.4.1 प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand)

रेखाचित्र 5.3 से यह स्पष्ट हो गया कि जब अर्थव्यवस्था की समग्र माँग और समग्र पूर्ति एक दूसरे के बराबर होते हैं, तो रोजगार सन्तुलन की स्थिति में होता है । जब समग्र माँग व समग्र पूर्ति में कोई परिवर्तन न हो प्राय: अल्पकाल में इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् जिस बिन्दु पर ये एक दूसरे को काटती है उस बिन्दु को सन्तुलन बिन्दु कहते हैं एवं यह एक अल्पकालीन सन्तुलन होगा और यह प्रभावपूर्ण माँग कहलाती है ।

5.4.2 प्रभावपूर्ण मांग पर पूर्ण रोजगार होना आवश्यक नहीं

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों में पूर्ण रोजगार की कल्पना की थी उनके अनुसार सन्तुलन बिन्दु पूर्ण रोरजगार बिन्दु होता है इसके विपरीत कीन्स ने सन्तुलन बिन्दु वह बिन्दु माना है । जिस पर प्रभावपूर्ण मांग होती है चित्र संख्या 5.3 से स्पष्ट होता है कि अर्थव्यवस्था में कुल श्रम संख्या ON_2 है परन्तु इस बिन्दु पर AS वक्र AD वक्र से ऊपर स्थित है । अत: उद्यमियों के लिए यह बिन्दु हानि का बिन्दु है । अत: उद्यमी इस बिन्दु तक रोजगार प्रदान नहीं करेंगे अपितु वे प्रभाव पूर्ण माँग E बिन्दु तक ही रोजगार प्रदान करेंगे, इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि अल्पकाल में सन्तुलन बिन्दु अर्थात प्रभावपूर्ण माँग पर अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी पायी जा सकती है, कीन्स ने प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धान्त में पूर्ण रोजगार की सामान्य अवस्था की आलोचना करते हुए बताया कि अर्थव्यवस्था में सामान्यत: अल्प रोजगार स्तर पर ही सन्तुलन हो जाता है । कीन्स की मान्यता थी कि अल्पकाल में उत्पादन की तकनीकी दशाओं, कच्चे माल और भौतिक साधनों की मात्रा में विशेष परिवर्तन सम्भव नहीं होने से समस्त पूर्ति फलन स्थिर रहता है इस प्रकार रोजगार स्तर निर्धारण में समस्त माँग फलन ही अधिक महत्वपूर्ण होता है ।

चित्र संख्या 5.4 से स्पष्ट है की समग्र पूर्ति फलन AS स्थिर है परन्तु समग्र मांग वक्र में वृद्धि अर्थात् ADF होने पर सम्पूर्ण श्रम शक्ति ON_2 को रोजगार प्राप्त हो जायेगा।

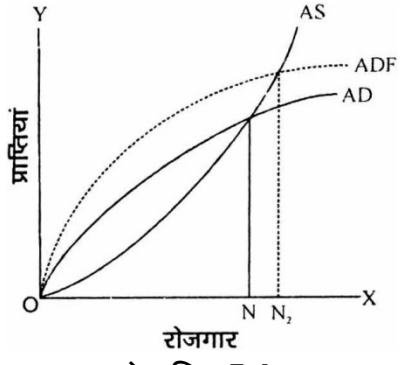

रेखाचित्र 5.4

बोध प्रश्न-2

(1) प्रभावपूर्ण मांग किसे कहते है?

(2) क्या समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति में संतुलन सदैव पूर्ण रोजगार स्तर पर होता है?

(3) असाम्य की दशा में साम्य हेतु क्रियाशील शक्तियाँ कौन सी है?

5.5 कीन्स का रोजगार सिद्धान्त एक दृष्टि में (Keynesian Theory at a Glance)

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रभावपूर्ण माँग कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का मुख्य स्तम्भ है । कीन्स प्रभावपूर्ण माँग बिन्दु से रोजगार का स्तर निर्धारित करता है एवं प्रभावपूर्ण माँग का बिन्दु स्वयं समग्र माँग फलन के साम्य से निर्धारित होता है । यदि सन्तुलन बिन्दु पूर्ण रोजगार बिन्दु से पूर्व होता है तो कीन्स प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि को आवश्यक मानते हैं । प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि समग्र पूर्ति फलन से सम्भव नहीं है क्योंकि समग्र पूर्ति फलन अल्पकाल में स्थिर रहती हैं अत: अल्पकाल में यदि पूर्ण रोजगार बिन्दु प्राप्त करना है तो समग्र माँग फलन में वृद्धि आवश्यक होगी । उनके अनुसार प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि के लिए दो घटक महत्वपूर्ण हैं (अ) उपभोग व्यय (ब) विनियोग व्यय इन दोनों में वृद्धि आवश्यक है । उनके अनुसार इस कार्य के लिए सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण है, इस प्रकार प्रभावपूर्ण माँग वृद्धि के लिये उपभोग व्यय (C), विनियोग व्यय (I), तथा सार्वजनिक व्यय (G) अर्थात् तीनों C+I+G की वृद्धि आवश्यक है ।

कीन्स के रोजगार सिद्धान्त के सभी स्वतन्त्र एवं परस्पर आश्रित घटकों का चित्रण एक दृष्टि में निम्न तालिका से स्पष्ट है :-

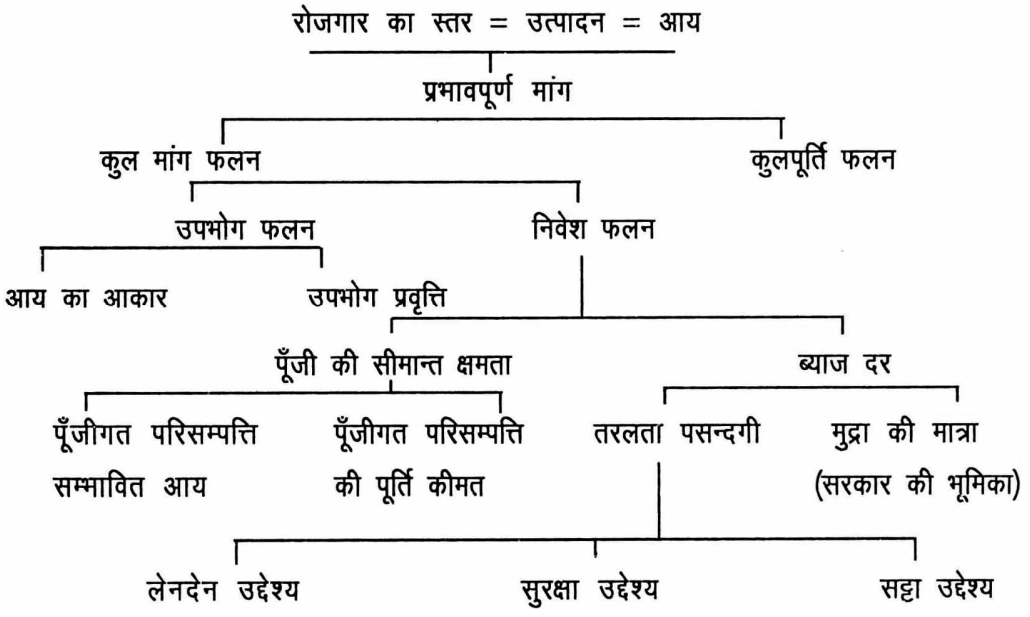

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि रोजगार स्तर के निर्धारण में प्रभावपूर्ण माँग आधार स्तम्भ है और यह कुल माँग फलन व कुल पूर्ति फलन द्वारा संचालित है, कुल पूर्ति फलन स्थिर है अत: निवेश व्यय, उपभोग व्यय व सार्वजनिक व्यय कुल माँग फलन के लिये महत्वपूर्ण है, इन तीनों में वृद्धि अल्पकाल में महत्वपूर्ण होगी व कोई भी अर्थव्यवस्था इन तीनों में वृद्धि करके ही पूर्ण रोजगार को प्राप्त कर सकेगी । कीन्स के रोजगार सिद्धान्त को सामान्य रोजगार सिद्धान्त के नाम से जानते हैं ।

बोध प्रश्न - 3

1. सीमान्त उपभोग प्रवृति का अर्थ बताइए।
2. पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का अर्थ समझाइए।
3. तरलता पसंदगी किसे कहते है?
4. मुद्रा की माँग क्यों की जाती है?

5.6 कीन्स के रोजगार सिद्धान्त की आलोचनाएं (Criticisms of the Keynesian Theory)

कीन्स के रोजगार सिद्धान्त में कई कमियां हैं जिनके कारण कुछ अर्थशास्त्रियों ने निम्न बिन्दुओं के आधार पर सिद्धान्त की आलोचनाएं की हैं -

(1) **यह सिद्धान्त बेरोजगारी की सभी दशाओं पर लागू नहीं होता** कीन्स का रोजगार सिद्धान्त स्फीतिक व अवस्फीतिक दोनों ही दशाओं पर लागू होता है, परन्तु बेरोजगारी के विभिन्न प्रकार है सभी का उपचार करने में यह सहायक नहीं है । यह सिद्धान्त चक्रीय बेकारी का समाधान प्रस्तुत करता है परन्तु शुम्पीटर, पॉल स्वीजी व क्लाइन के अनुसार तकनीकी बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी व छिपी हुई बेरोजगारी का समाधान प्रस्तुत करने में सहायक नहीं है ।

(2) **भ्रमात्मक मान्यताओं पर आधारित है** बन्द अर्थव्यवस्था, पूर्ण रोजगार आदि सभी मान्यताएं हैं जो वास्तविक जगत में नहीं पायी जाती पूर्ण प्रतियोगिता भी वास्तव में नहीं पाई जाती है ।

(3) **इसे सामान्य सिद्धान्त कहना गलत है** सर्वव्यापकता का अभाव है सभी देशों में समान रूप से यह लागू नहीं होता, सोवियत संघ, चीन व उन अर्थव्यवस्थाओं में जो समाजवाद पर आधारित है, के लिये यह सिद्धान्त बेकार है । यह पूर्ण रूप से पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं जैसे अमेरिका, इंगलैण्ड के लिये ही उपयोगी है । केन्स का सिद्धान्त कम विकसित अथवा विकासशील देशों पर भी लागू नहीं होता है ।

(4) **रोजगार के दीर्घकालीन घटकों की उपेक्षा** कीन्स का सिद्धान्त एक अल्पकालीन विश्लेषण है व रोजगार को प्रभावित करने वाले तत्कालीन घटकों का ही इस सिद्धान्त में समावेश हो पाया है । जबकि रोजगार को उत्पादन, तकनीक, संगठन, पूँजी आदि दीर्घकालीन तत्व भी प्रभावित करते हैं जिनकी इसमें उपेक्षा की गई है ।

(5) **समष्टि मूलक स्वरूप** कीन्स का रोजगार सिद्धान्त समष्टि धारणाओं जैसे कुल उपभोग, कुल विनियोग, कुल बचत आदि पर ही आधारित है अत: व्यष्टि धारणाओं को छोड़ दिया गया है जबकि उत्तम परिणामों के लिए समग्र व व्यष्टि दोनों धारणाओं का साथ में अध्ययन आवश्यक है ।

(6) **विनियोग पर आवश्यकता से अधिक जोर देना** इस सिद्धान्त में उपभोग का स्थान अत्यधिक गौण है जिसे अल्पकाल में स्थिर मान लिया गया है सही नहीं है ।

(7) **रोजगार स्तर तथा प्रभावपूर्ण मांग में सीधा सम्बन्ध मान लेना ठीक नही है** इस बात का कोई सांख्यिकी प्रमाण नहीं पाया जाता है । हैजलिट के अनुसार प्रभादपूर्ण माँग तथा रोजगार-स्तर में कोई प्रत्यक्ष क्रियात्मक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है ।

(8) **विदेशी व्यापार के प्रभाव की और ध्यान नही दिया गया है** कीन्स का रोजगार सिद्धान्त बन्द अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है जबकि किसी देश की रोजगार स्थिति आयात-निर्यात तथा भुगतान सन्तुलन की स्थिति से भी प्रभावित होती है ।

(9) **त्वरक को स्थान नही दिया गया** इस सिद्धान्त में गुणक को ही स्थान दिया गया है । वास्तव में गुणक व त्वरक की परस्पर क्रिया पायी जाती हैं ।

(10) **प्रावैगिक विश्लेषण का अभाव** यह एक तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण है । कीन्स ने अपने विश्लेषण में समयान्तर की धारणा की उपेक्षा की है, जैसे निवेश बढ़ते ही रोजगार बढ़ जायेगा परन्तु व्यवहार में निवेश का परिणाम आने में एक निश्चित समय लगता है ।

(11) **कीन्स** का ब्याज दर का सिद्धान्त अनिश्चित हैं ।

(12) **कीन्स के विचार न तो मौलिक है और न ही नवीन है** कुछ विद्वानों के अनुसार "कीन्स के जो भी विचार सही है, मौलिक नही है और जहाँ कहीं मौलिकता है वहाँ ही गलती है ।" हैज़लिट का भी यही विचार है ।

5.7 कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्व अथवा प्रयोग (Importance and use of the Keynesian Theory)

कीन्स के रोजगार सिद्धान्त की अनेक अर्थशास्त्रियों ने खुलकर आलोचना की है, फिर भी कीन्स ने आर्थिक विचारों के इतिहास में क्रान्ति लाकर नये युग का सूत्रपात किया है । उन्होंने राज्य की भूमिका के महत्व को बनाकर पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं को नई दिशा दी है । यह कह सकते हैं कि समष्टि अर्थशास्त्र को महत्वपूर्ण बनाने का श्रेय भी कीन्स को है । संक्षेप में निम्न बिन्दु रोजगार सिद्धान्त के महत्व को स्पष्ट करते हैं ।

(1) **समष्टि अर्थशास्त्र का विकास** कुल आय, कुल बचत, कुल विनियोग, कुल उपभोग जैसे तत्वों पर जोर देकर कीन्स ने समष्टि अर्थशास्त्र को महत्वपूर्ण बनाया है ।

(2) **बेरोजगार का निराकरण** कीन्स ने मन्दीकाल की नीति बनाई है । उन्होंने पूर्णरोजगार का मार्ग भी बताया है ।

(3) **सरकार को भूमिका** क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने राज्य की भूमिका की उपेक्षा की थी कीन्स ने पूँजीवादी राष्ट्रों में राज्य हस्तक्षेप नीति का समर्थन किया एवं यह स्पष्ट किया कि मन्दीकाल में बेकारी की समस्या के निराकरण में राज्य के प्रभावी हस्तक्षेप का महत्व है ।

(4) **मौद्रिक नीति की सार्थकता** कीन्स ने स्पष्ट किया कि अल्पकाल में आज दर एक निष्क्रिय तल है अत: निवेशों में वृद्धि के लिये मौद्रिक नीति एक कारगर उपाय है । आजकल सरकारों के लिये स्फीति की अवस्था में मौद्रिक नीति का अत्यधिक उपयोग किया जाता है ।

(5) **व्यापार चक्रों व बेकारी नियन्त्रण में उपयोगी** यह सिद्धान्त विकसित राष्ट्रों में व्यापार चक्रों के नियन्त्रण, तथा मन्दीकाल में उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या समाधान में अत्यन्त उपयोगी रहा है । तात्कालिक अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट की न्यूडील नीति इसकी परिचायक है।

(6) **अल्पकालीन विश्लेषण का महत्व** कीन्स ने अल्पकालीन विश्लेषण प्रस्तुत करके व्यवहारिकता व वास्तविकता के पक्ष को छुआ है । बेरोजगारी के नियन्त्रण में तत्कालीन उपचारों का विशेष महत्व है । कीन्स ने विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी में बेरोजगारी के नियन्त्रण के लिये जो नीति सुझाई वह सामयिक तथा व्यावहारिक है ।

(7) **विनियोगों का महत्व** कीन्स के अनुसार अल्पकाल में उपयोग की भाग स्थिर रहती है । इसलिए रोजगार वृद्धि विनियोग की मात्रा पर निर्भर करती हैं ।

(8) **राजकोषीय नीति** कीन्स ने रोजगार वृद्धि के लिये राजकोषीय नीति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

(9) **कीन्स ने** हीनार्थ प्रबंधन (Deficit Financing) की नीति पर प्रकाश डाला है।

(10) **कीन्स ने इस बात का खण्डन किया है कि मजदूरी** दरें घटाकर रोजगार बढ़ाया जा सकता है।

(11) **राष्ट्रयि आय, राष्ट्रीय उपभोग, बचत तथा विनियोग** आदि धारणाओं को महत्व देकर कीन्स ने सभी देशों में सामाजिक लेखे तैयार करने की नीति को प्रोत्साहित किया है।

हैरिस ने ठीक ही कहा है कि इतने अल्पकाल में कीन्स ने सरकारी नीति को जितना अधिक प्रभावि किया निःसन्देह कोई अन्य अर्थशास्त्री नहीं कर पाया था।

5.8 सारांश (Summary)

कीन्स के रोजगार सिद्धान्त को सक्षेंप में निम्न बिन्दुओं के द्वारा व्यक्त किया जा सकता हैं।

(1) राष्ट्रीय आय रोजगार की मात्रा पर निर्भर करती हैं। क्योंकि कुल आय कुल उत्पादन के बराबर होती है और उत्पादन की मात्रा रोजगार - स्तर पर निर्भर करती हैं।

(2) कुल रोजगार कुल प्रभापूर्ण माँग के बराबर होती है। सन्तुलन की अवस्था में कुल माँग कुल पूर्ति के बराबर होती है।

(3) सन्तुलन बिन्दु पर कुल माँग वक्र, वक्र कुल पूर्ति वक्र को काटता है।

(4) कीन्स ने कुल पूर्ति क्रिया को अल्पकाल में स्थिर माना है उनके अनुसार अल्पकाल में उत्पादन की तकनीकी दशाओं' कच्चे माल और भौतिक साधनों की मात्रा में विशेष परिवर्तन सम्मद नही है अत: कुल पूर्ति फलन स्थिर रहता है अत: प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि में यह सहायक नहीं है।

(5) कीन्स ने अपने अल्पकालीन सामान्य रोजगार सिद्धान्त में कुल माँग क्रिया को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

(6) कुल माँग फलन में उपभोग व्यय व नितेश व्यय सम्मिलित होती है अन्य शब्दों में कुल माँग कुल व्यय की मात्रा निर्धारित करती हैं जिसमें उपभोग-व्यय तथा निवेश व्यय को सम्मिलित किया जाता है।

(7) उपभोग व्यय का निर्धारण आय की मात्रा तथा उपभोग प्रवृति के द्वारा होता है। अल्पकाल में उपभोग थय स्थिर रहता है। उपभोग व्यय तथा आय में अन्तर रहता है, क्योंकि आप का एक भाग बचत के रूप में रख लिया जाता है।

(8) निदेश व्यय दो बातों पर निर्भर करता है (A) पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा (B) बाज दर। निदेश व्यय को एक अस्थिर तल माना गया है, जिसका कुल माँग पर काफी प्रभाव पडता है। कीन्स के सिद्धान्त में निवेश को अत्यधिक महत्व दिया गया है।

(9) पूँजी की सीमान्त दक्षता का निर्धारण दो बातों पर निर्भर करता है (A) लाभ की आशंसा (B) पूँजीगत पदार्थो को नये सिरे से बनाने की लागत। क्योंकि लाभ की आशंसाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसलिए पूँजी की सीमान्त दक्षता में भी काफी उतार-चढाब होता है। नये पूँजीगत पदाथों की लागत अथवा पूर्ति कीमत अल्पकाल में स्थिर रहती है।

(10) समग्र माँग फलन, कुल उपभोग व्यय (C) तथा कुल विनियोग व्यय (I) के सामूहिक योग पर निर्भर करता है। सार्वजनिक व्यय को जोडने पर समग्र माँग फलन निर्भर है (C+I+G) के योग पर।

(11) वियोगों की माँग स्वयं दो घटको पर निर्भर करती हैं (A) पूँजी की सीमान्त कुशलता तथा (B) ब्याज दर।

(12) आज दर दो बातो पर निर्भर करती हैं (A) तरलता अधिमान तथा (B) मुद्रा की मात्रा। तरलता अधिकतम के तीन उद्देश्य होते है, लेनदेन, सुरक्षा तथा सट्टा। मुद्रा की मात्रा सरकार की मौद्रिक नीति द्वारा नियन्त्रित होती है। कीन्स ने ब्याज दर को भी अल्पकाल में स्थिर तल माना है अत: सरकार की मौद्रिक नीति एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

(13) निवेश प्रेरणा जिससे रोजगार स्तर प्रभावित होता है, इस बात पर निर्भर करती है कि पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा बाज दर में कितना अन्तर है। ब्याज दर पूँजी की सीमान्त क्षमता से कम होने पर निवेश प्रेरणा अधिक होगी। चूँकि ब्याज दर को स्थिर माना गया हैइसलिए मुख्य निर्धारक पूँजी की सीमान्त क्षमता ही है।

(14) ''सामान्य सिद्धान्त' का सार यह है कि रोजगार बढ़ाने के लिए प्रभाबपूर्ण माँग में वृद्धि की जाए और यह तभी सम्भव है जब निवेश व्यय में वृद्धि की जाय।

(15) गुणक के कार्यकरण के परिणाम स्वरूप निवेश में वृद्धि आय व रोजगार में कई गुना अधिक वृद्धि करती हैं, क्योंकि निवेश की एक इकाई अपने आप बाद में कई गुना निदेश उत्पन्न कर देती है।

(16) कीन्स का रोजगार सिद्धान्त पूँजीवादी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन अधिक्य एवं मन्दीकालीन बेरोजगारी के निराकरण का सिद्धान्त है। जो कि मुद्रा-स्फीति के नियन्त्रण तथा अल्प रोजगार सन्तुलन की अवस्थाओं को समझने में सहायक है।

(17) मन्दीकाल में बेरोजगारी को मिटाने का एक यही आसान एवं व्यावहारिक सिद्धान्त है।

5.9 शब्दावली (Glossary)

समग्र -मांग फलन	Aggregate Demand Function
समग्र पूर्ति फलन	Aggregate Supply Function
प्रभावपूर्ण मांग	Effective Demand
पूँजी की सीमान्त दक्षता	Marginal Efficiency of Capital
उपभोग प्रवृत्ति	Propensity to Consume
हीनार्थ प्रबन्धन	Deficit Financing
सामाजिक लेखे	Social Accounting
गुणक	Multiplier
त्वरक	Accelerator

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

H.L. Ahuja, Macro Economics -Theory and Policy

M.L. Seth, Macro Economics

डॉ.टी.टी. सेठी, मेक्रो अर्थशास्त्र।

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit -end Questions)

1. प्रभावपूर्ण मांग से क्या अभिप्राय है?
2. कुल मांग फलन व कुल पूर्ति फलन से क्या अभिप्राय है? समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति फलनों की सहायता से प्रभावपूर्ण मांग के स्तर का निर्धारण कीजिए।
3. कीन्स के रोजगार सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. कीन्स के रोजगार सिद्धान्त के महत्व बताइए।
5. एक अर्थव्यवस्था में, कीन्स के अनुसार, आय तथा रोजगार के मुख्य निर्धारक तत्व कौन-कौन से हैं?
6. कीन्स के रोजगार सिद्धान्त में प्रभावपूर्ण मांग की भूमिका की विवेचना कीजिए। क्या प्रभावर्ण मांग का बिन्दु सदैव पूर्ण रोजगार बिन्दु होता है।

7. कीन्स के रोजगार सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। इस सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्व बताइए।

इकाई -06

कीन्स का उपभोग फलन

(Keynesian Consumption Function

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 उपभोग की प्रवृत्तिं

6.2.1 उपभोग की प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले तल

6.2.2 उपभोग की औसत प्रवृत्ति (APC)

6.2.3 बचत की औसत प्रवृत्ति (APS)

6.2.4 उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC)

6.2.5 बचत की सीमान्त प्रवृत्ति (MPS)

6.3 उपभोग फलन के विभिन्न स्वरूप

6.3.1 समयपश्चता युक्त एवं समयपश्चता विहीन उपभोग फलन

6.3.2 रैखिक एष गैर रैखिक उपभोग फलन

6.3.3 दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन उपभोग फलन

6.4 कीन्स का उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम

6.4.1 अवधारणा

6.4.2 मान्यताएं

6.4.3 निहित तत्व

6.5 कीन्सीय उपभोग फलन की विशेषताएं

6.6 बचत एवं निदेश

6.6.1 परम्परावादी दृष्टिकोण

6.6.2 कीन्सीय दृष्टिकोण

6.8 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 सन्दर्भ ग्रन्ध

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- उपभोग फलन किसे कहते हैं एवं यह किन तत्वों पर निर्भर होता है।
- उपभोग की प्रवृत्ति की गणना के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,

- उपभोग फलन के विभिन्न स्वरूपों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- कीन्स का उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- कीन्सीय उपभोग फलन की विशेषताओं, महत्व एवं आलोचना से अवगत हो सकेंगे; एवं
- बचत एवं निवेश के परम्परावदी व कीन्सीय दृष्टिकोण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

उपभोग फलन का अर्थ

उपभोग फलन अथवा उपभोग प्रवृत्ति का अर्थ उपभोग की इच्छा मात्र करना ही नहीं वरन् उपमोग फलन का अर्थ कुल उपभोग व्यय से है। उपभोग जय तथा उपभोग को प्रभावित करने वाले विमिन्न चरों जैसे मौद्रिक आय (Y) मूल्य स्तर (P) जीवन-निर्वाह स्तर (S) आज की दर (R) सम्पत्तियों के वास्तविक मूल्य (W) तथा आय-वितरण (d) आदि के बीच पाये जाने बाले फलनात्मक सबन्ध को उपभोग फलन कहते हैं। प्रतीकात्मक रूप से इस सन्दय को निम्नवत् प्रकट किया जाता है:

$$C = f (Y, P, S, r, W, d)$$

कीन्स का उपभोग फलन

कीन्स आय को ही प्रमुख रूप से उपभोग का निर्धारक तल मानते हैं। अत: उन्होंने उपभोग तथा आय के बीच सम्बन्ध के रूप में उपभोग फलन को परिभाषित किया जबकि उपभोग पर पडने बाले अन्य सभी प्रभावों को स्थिर माना।

$$C = f (Y)$$

इस प्रकार कीन्स के अनुसार उपयोग फलन, उपभोग (C) तथा आय (Y) के बीच फलनालक सम्बन्य को प्रकट करता है, जहां C आश्रित चर है और Y एक स्वतंत्र चर है।

कीन्स ने सूत्र के रूप में उपभोग फलन को निम्न रूप में परिभाषित किया :

$$C = a+bY$$

सूत्र में: C = उपभोग Y = आय a = स्थिर राशि है जो न्यूनतम अथवा स्वायत उपभोग को व्यक्त करती है।

b = उपभोग फलन के ढाल को दर्शाता है।

स्थिरांक a स्वतंत्र उपभोग का सूचक है तथा यह आय में वृद्धि के साथ नहीं बढ़ता। यदि आय शून्य हो तब भी उपभोग की न्यूनतम मात्रा जीवन व्यापन हेतु आवश्यक है। a उपभोग की वही न्यूनतम मात्रा है। a एक धनात्मक राशि है अर्थात् आय के शून्य होने पर भी इसकी मात्रा धनात्मक होगी। स्थिरांक b उपभोग फलन की ढाल को मापता है तथा यह प्रदर्शित करता है कि आय में एक इकाई वृद्धि परिणामस्वरूप उपभोग में कितनी वृद्धि होगी।

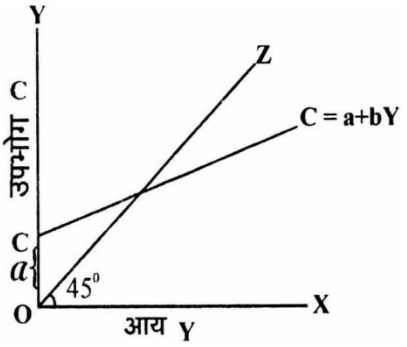

रेखाचित्र 6.1

उपभोग वक्र

रेखाचित्र 6.1 के अनुसार कीन्स के उपभोग फलन को प्रकट करने के लिए X अक्ष पर आय को तथा Y अक्ष पर उपभोग को दर्शाया जाता है। चित्र में रेखा OZ, X अक्ष व X अक्ष के साथ 45^0 डिग्री का कोण बनाती है। अत: इस पर स्थित सभी बिन्दु X व Y अक्ष से समान दूरी पर होंगे। अर्थात OZ रेखा पर उपभोग व आय एक दूसरे से बिलकुल बराबर है और जब आय में वृद्धि होगी तब उपभोग में भी उतनी ही वृद्धि होगी। परन्तु वास्तव में जब आय में वृद्धि होती है तो उपभोग बढ़ता है परन्तु उतना नहीं जितना कि आय बढ़ती है क्योंकि आय में वृद्धि का कुछ भाग बचा लिया जाता है। जो अत: OZ रेखा उपभोग वक्र को प्रदर्शित नहीं करेगा। रेखाचित्र में CC उपभोग प्रवृत्ति को व्यक्त करता है जो OZ रेखा से भिन्न है। आय के कुछ स्तर तक बढ़ जाने पर यह उपभोग वक्र OZ रेखा के नीचे स्थित है जिसका अर्थ है, उपभोग आय से कम है। वह बिन्दु जिस पर CC और OZ वक्र एक दूसरे को काटते हैं, के बायीं ओर उपभोग वक्र, रेखा OZ के ऊपर स्थित है। इसका अर्थ है कम आय पर उपभोग की मात्रा आय से अधिक है।

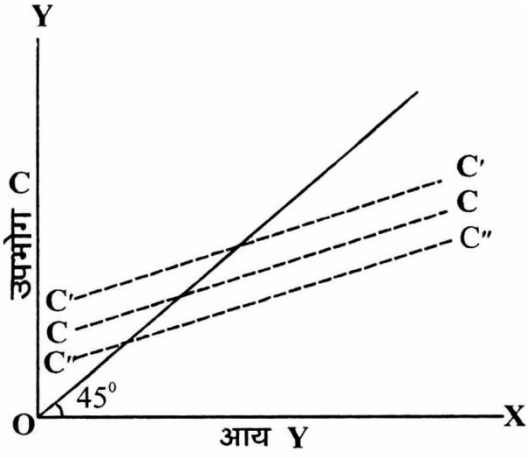

रेखाचित्र 6.2

उपभोग में परिवर्तन

रेखाचित्र 6.2 से स्पष्ट है कि आय में वृद्धि के साथ आय और उपभोग के बीच का अन्तर बढ़ता जाता है। आय के अतिरिक्त उपभोग फलन को निर्धारित करने वाले तत्वों (जैसे व्याज दर, कीमत स्तर, सरकार की कर नीति आदि में परिवर्तन हो जाये तो समस्त उपभोग

फलन विवर्तित हो जाता है। जब उपभोग फलन में वृद्धि होती है तो इसका अर्थ है आय के विभिन्न स्तरों पर उपभोक्ता पहले से

अधिक मात्रा में उपभोग पर व्यय करता है तथा उपभोग फलन का वक्र ऊपर हो जाता है। (चित्र में CC से C'C') इसके विपरीत जब उपभोग फलन में कमी आ जाती है तो समस्त उपभोग फलन बक्र नीचे आ जाता है अर्थात उपभोग फलन के कम होने पर उपभोक्ता आय के विभिन्न स्तरों पर पहले से कम उपयोग करते हैं। (चित्र 6.2 मेंC''C'')

कीन्स का उपभोग फलन निम्न वास्तविक तथ्यों पर आधारित है-

(क) जब आय में वृद्धि हो तो उपभोग जय में भी वृद्धि होगी पर अपेक्षाकृत कम मात्रा में अर्थात्

$$\Delta C < \Delta Y \text{ या } \frac{\Delta C}{\Delta Y} < 1$$

(ख) आय में होने वाली वृद्धि उपभोग बय तथा बचत के बीच एक निश्चित अनुपात में विभक्त होगी। अर्थात

$$\Delta Y = \Delta C + \Delta S$$

(ग) आय में वृद्धि के साथ उपभोग अव तथा बचत दोनों ही में वृद्धि होगी।

बोध प्रश्न -01

1. आय उपभोग फलन से आप क्या समझते है?
2. उपभोग व आय के बीच क्या सम्बन्ध है? रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए।
3. कीन्स का उपभोग फलन, अन्य से किसे प्रकार भिन्न है?

6.2 उपभोग की प्रवृत्ति (Propensity to Consume)

6.2.1 उपभोग की प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले तत्व

कीन्स के अनुसार उपभोग तीन प्रकार के तत्वों से प्रभावित होता है -

(1) आय स्तर

(2) वस्तुपरक तत्व

(3) व्यक्तिपरक तत्व

(1) **आय स्तर** - उपभोग के स्तर को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व आय है। जिसके संदर्भ में ऊपर विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

(2) **वस्तुपरक तत्व** -वस्तुपरक तत्व अर्थव्यावस्था के लिए बाह्य तत्व होते हैं जिनमें त्वरित गीत से परिवर्तन होते हैं एवं उनका उपभोग क्रिया पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। कीन्स ने निम्न वस्तुपरक तत्वों का विवरण दिया गया है जो उपभोग को प्रभावित करते हैं।

(i) **आकस्मिक लाभ या हानि -** कभी-कभी पर्याप्त राशि आकस्मिक लाभ के रूप में प्राप्त हो जाती है। जैसे - कम्पनियों के शेयरों का मूल्य अचानक बढ़ जाने से अंशधारियों को लाभ होता है और वह पहले से अधिक उपभोग करने में समर्थ हो जाता है।

(ii) **ब्याज की दर** - यदि बैंकों द्वारा व्याज की दर में वृद्धि कर दी जाये तो लोग अधिक आय के लाल में अधिक रकम बचाने लगते हैं। इससे उपभोग की मात्रा में कमी आना स्वाभाविक है।

(iii) **राजकोषीय नीति** - यदि कर की दरें सरकार द्वारा बढ़ा दी जाये तो जनता के पास उपभोग के लिर कम रकम बचती है। सरकार किन वस्तुओं पर कर लगाती है, यह तथ्य उपमोग को विशेष रूप से प्रमावित करता है। यदि अनिवार्य आवश्यकताओं पर कर बढ़ाया जाता है तो उपभोग में विशेष परिश्र्तन नहीं आता है किन्तु आरामदायक आवश्यकताओं पर कर बढ़ाने से उपभोग कम होने की सम्भावना रहती है।

(iv) **मजदूरी की दरों में परिवर्तन** - मजदूरी दरों में वृद्धि से उपभोग फलन ऊँचा होता है परन्तु यदि मजदूरी की तुलना में कीमतों में अधिक वृद्धि होती है तो वास्तविक मजदूरी घट जाती है यह उपभोग को कम कर देता है।

(v) **प्रत्याशाओं में परिवर्तन** - यदि भविषय में इस बात की सम्भावना हो कि कीमतें गिरेंगी तो उपभोग में कमी आ जाती है। यदि भविष्य में युद्ध की आशंका हो तो संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

(3) **व्यक्तिपरक तत्व -** वस्तुपरक तत्व प्राय: समाज के समूर्ण ढांचे को प्रभावित करते हैं क्योंकि उनका सचन्ध आष्टि क वातावरण के समूचे स्वरूप से होता है। किन्तु कुछ तत्व ऐसे भी होते हैं जो सर्वथा व्यक्तिगत मान्यता पर आधारित होते हैं। इन तत्वों में लोगों के वे प्रयोजन अथवा उद्देश्य सम्मिलित हैं जो लोगों को अपनी आय में से कुछ भाग बचाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ये कारण ऐसे होते हैं जिनमें अल्पकाल में स्थिर होने की प्रवृति होती है तथा सम्माबित परिवर्तन दीर्घकाल में होते हैं। इसके अन्तर्गत सम्मिलित तल हैं - सम्पत्ति को एकत्रित करने की इच्छा, जिससे समाज में प्रतिष्ठा रहे, अपने उत्तराधिकारी को अधिक सम्पत्ति उत्तराधिकार में छोड़ने की इच्छा, वृद्धावस्था, बेरोजगारीबीमारी, दुर्घटना आदि से सुरक्षित रहने की इच्छा। उपर्युक्त तत्व लोगों को बचत करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं तथा उपभोग प्रवृत्ति को कम कर देते हैं। परन्तु कई ऐसे तत्व भी हैं जो अधिक मात्रा में उपभोग के लिए प्रेरित करते हैं जैसे फैशन पर खर्च करने की इच्छा, व्यर्थ व्यय तथा आडम्बरपूर्ण उपभोग।

औसत उपभोग फलन और सीमान्त उपभोग फलन

अब तक हमने देखा आय के बदलने पर उपभोग-व्यय बदलता है, परन्तु इस परिवर्तन का आकार क्या होगा इसके लिए हमें औसत उपभोग फलन और सीमान्त उपभोग धारणाओं का प्रयोग किया जाता है।

6.2.2 उपभोग की औसत प्रवृत्ति (Average propensity to Consume - APC)

कुल उपभोग व्यय तथा कुल आय के अनुपात को उपयोग की औसत प्रवृत्ति कहते हैं। अर्थात् यह आय कि विशेष स्तर से उपभोग व्यय का अनुपात है।

$$APC = \frac{C}{Y}$$

आरेखीय रूप में, औसत उपभोग प्रवृत्ति वक्र C का कोई भी बिन्दु होता है। रेखाचित्र 6.3 में वक्र C पर APC को बिन्दु R मापता है और वह है $\frac{OC'}{OY'}$ है। वक्र C का दाई ओर को चपटा हो जाना घटती APC को प्रकट करता है। ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है APC घटती जाती है क्योंकि उपभोग पर व्यय की गई आय का अनुपात कम होता जाता है। उपभोग वक्र के किसी निश्चित बिन्दु पर APC उस बिन्दु को मूल बिन्दु से मिलतने बाली रेखा के ढाल के द्वारा प्रदर्शित होता है।

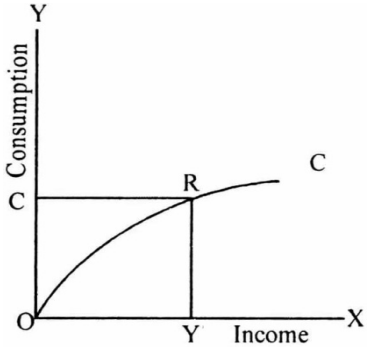

रेखाचित्र 6.3

6.2.3 बचत की औसत प्रवृत्ति (Average Propensity to Save -APS)

औसत बचत प्रवृत्ति आय तथा बचत के बीच सम्बन्ध को व्यक्त करती है अर्थात्

$$APS = \frac{S}{Y}$$

चूँकि Y= C+S

$$\frac{Y}{Y} = \frac{C}{Y} + \frac{S}{Y}$$

1 = APC + APS

औसत बचत प्रवृत्ति आय में वृद्धि के साथ बढ़ती जाती है।

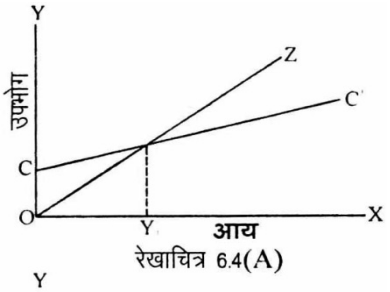

रेखाचित्र 6.4(A)

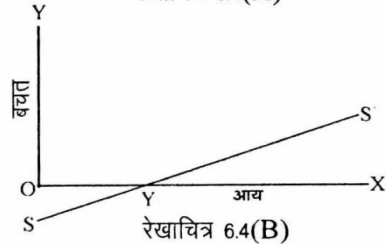

रेखाचित्र 6.4(B)

रेखाचित्र 6.4 (A) में CC'' उपभोग वक्र तथा रेखाचित्र 6.4 (B) SS' बचत वक्र है जो OZ रेखा (आय रेखा) तथा उपभोग वक्र में अन्तर को व्यक्त करता है। आय के OY, स्तर तक उपभोग की मात्रा आय से अधिक है अर्थात् समाज ऋणात्मक बचतें करता है। OY, से आगे धनात्मक बचतें हैं। चित्र से स्पष्ट है जहां APC कम हो रही है वहां APS रही है।

6.2.4 उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC)

उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति, कुल उपभोग के स्तर में होने वाले परिवर्तन तथा कुल आय के स्तर में होने वाले परिवर्तन के बीच का अनुपात है अर्थात् यह आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोग में वृद्धि को दर्शाता है।

$$MPC = \Delta C / \Delta Y$$

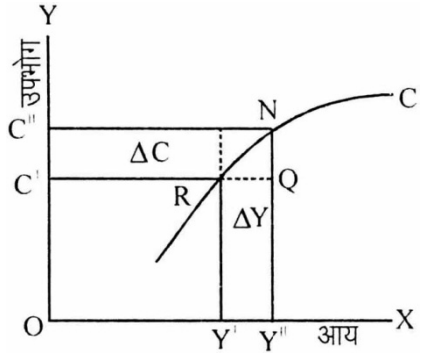

रेखाचित्र 6.5

आरेखीय रूप में, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को वक्र C की ढलान द्वारा मापा जाता है। चित्र संख्या 6.5 में $\frac{NQ}{RQ}$ द्वारा MPC को दर्शाया गया है जहां NQ, उपभोग में परिवर्तन है (ΔC) और RQ आय में परिवर्तन (ΔY) है।

- **सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को विशेषताएं**

(i) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का मूल्य सदैव धनात्मक होता है तथा एक से कम होता है। अर्थात् (O < MPC < 1)

इसका अर्थ है आय में होने वाली वृद्धि उपभोग पर व्यय नहीं की जाती और जब आय घटती है तो उपभोग व्यय उस अनुपात में नहीं घटता। MPC कमी शून्य नहीं होती।

(ii) निर्धन वर्ग की सीमान्त उपमोग प्रवृत्ति धनिकों की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि उनकी आय का स्तर कम होने के कारण सारी आय अपने उपभोग पर व्यय कर देते है। जबकि धनिक दर्ग में आय का स्तर निर्धनों से बहुत अधिक होता है और वे अपनी पूरी आय उपभोग पर व्यय नहीं कर पाते। अल्पविकसित देशों में MPC अधिक और विकसित देशों में MPC कम होने का यही कारण है।

(iii) दीर्घकाल में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर हो जाती है। दीर्घकाल में उपभोग में लगभग उसी अनुपात में वृद्धि होने लगती है जिस अनुपात में आय में वृद्धि होती है।

(iv) आय में वृद्धि के साथ सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति घटती जाती है।

6.2.5 बचत की सीमान्त प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Save-MPS)

बचत की सीमान्त प्रवृत्ति, आय की वृद्धि और बचत की वृद्धि के पारस्परिक अनुपात को यक्त करती है । सूत्र के रूप में-

$$MPS = \frac{\Delta S}{\Delta Y}$$

सीमान्त बचत प्रवृत्ति यह प्रकट करती है कि अतिरिक्त उपभोग-योग्य आय का कितना भाग बचाया जाता है।

सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति के बचि सम्बन्ध

समीकरण C + S = Y से सिद्ध होता है कि आय में कोई वृद्धि (ΔY) या तो उपभोग में वृद्धि करेगी (ΔC) बचत में वृद्धि (ΔS) करेगी अर्थात्

$\Delta Y = \Delta C + \Delta S$?

उपर्युक्त समीकरण के दोनों पक्षों में ΔY से भाग देने पर

$$\frac{\Delta Y}{\Delta Y} = \frac{\Delta C}{\Delta Y} + \frac{\Delta S}{\Delta Y}\left(\frac{\Delta C}{\Delta Y} = MPC \frac{\Delta S}{\Delta Y} = MPS\right)$$

1 = MPC + MPS

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा औसत उपभोग प्रवृत्ति में सम्बन्ध

औसत उपभोग प्रवृत्ति किसी आय के स्तर पर उपभोग का आय से अनुपात होता है, परन्तु सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति आय तथा उपभोग दोनों में हुई वृद्धियों या कमियों का अनुपात होती हैं।

(i) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC), औसत उपभोग प्रवृति में परिवर्तन की दर को बताता है।

(ii) जब आय में वृद्धि होती है तो MPC घट जाती है, परन्तु औसत उपमोग प्रवृत्ति तुलना में अधिक घटती है, इसके बिपरीत जब आय घटती है तो MPC तथा APC दोनों बढ़ती है, परन्तु MPC की तुलना में APC अपेक्षाकृत कम तेजी से बढ़ती है।

(iii) अल्पकाल में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कोई परिवर्तन नहीं होता तथा MPC < APC

(iv) दीर्घकाल में MPCतथा APC दोनों ही बराबर हो जाते हैं।

(v) सीमान्त उपभोग प्रवृति अल्पकालीन विश्लेषण में उपयोगी होता है इसके विपरीत APC दीर्घकालीन विश्लेषण में उपयोगी होता है।

बोध प्रश्न -02

1. उपभोग को प्रभावि करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।
2. औसत उपभोग प्रवृत्ति व सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति में क्या अन्तर है? इनके बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करें
3. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति की विशेषताओं का उल्लेख करें।

6.3 उपभोग फलन के विभिन्न स्वरूप (Different Forms of Consumption Function)

उपभोग फलन के स्वरूपों का अध्ययन हम निम्न वर्गो के आधार पर करेंगे-

उपभोग फलन के स्वरूप

(i) समय–पश्चता विहीन	(i) रैखिक उपभोग फलन	(i) अल्पकालीन उपभोग फलन
(ii) समय–पश्चता युक्त उपभोग फलन	(ii) गैर रैखिक उपभोग फलन	(ii) दीर्घकालीन उपभोग फलन

6.3.1 समयपश्चता विहीन उपभोग फलन एवं समयपश्चता युक्त

समयपश्चता विहीन उपभोग फलन जब किसी समयावधि में होने वाला उपभोग, उसी समयावधि की आय पर निर्भर हो अर्थात् t अवधि में उपभोग t अवधि की आय से सम्बन्धित हो तो इस सम्बन्ध को बताने वाला फलन समय पश्चता विहीन उपभोग फलन कहलाता है। सूत्रानुसार-

$C_t = f\ (Y_t)$

कीन्स ने इसी प्रकार उपभोग को स्वीकार किया है।

समयपश्चता युक्त उपभोग फलन इस प्रकार के फलन में किसी अवधि में उपभोग उससे पूर्व की अवधि की आय से सम्बन्धित होता है। सूत्र के अनुसार- $C_t = f\ (Y_{t-l})$

कीन्स से परिवर्ती अर्थशास्त्रियों ने समयपश्चता युक्त उपभोग फलन का प्रयोग किया है।

6.3.2 रैखिक एवं गैर रैखिक उपभोग फलन

रैखिक उपभोग फलन

यदि आय के प्रत्येक स्तर पर MPC स्थिर हो अर्थात आय के सापेक्ष उपभोग व्यय में होने वाले परिवर्तन की दर स्थिर रहे तो उपभोग फलन रैखिक होगा और इसे प्रदर्शित करने वाला उपभोग वक्र एक सीधी रेखा के रूप में होगा। रैखिक फलन निम्नांकित समीकरण द्वारा व्यक्त होगा।

$C = a + bY$ जहां $b>0$

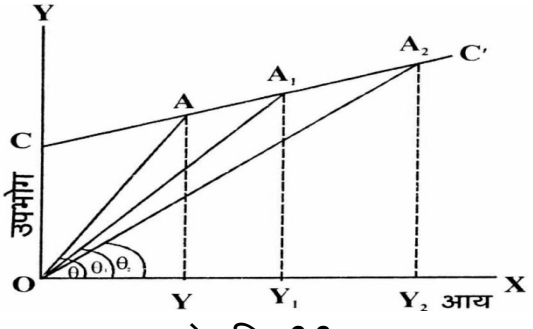

रेखाचित्र 6.6

रेखाचित्र 6.6 के अनुसार उपभोग वक्र CC' के बिन्दु A, A_1, A_2 पर उपभोग का स्तर क्रमश: YA, YA_1 तथा YA_2 होगा जबकि आय क्रमश: OY,OY_1 और OY_2 होगी। अत: A, A_1, तथा A_2 बिन्दु पर औसत उपभोग प्रवृत्ति AY/ OY ,A_1Y_1/OY_1 तथा A_2Y_2/OY_2 होगी। दूसरे शब्दों में बिन्दु A, A_1, व A_2 बिन्दु परAPC क्रमश: OA, OA_1 व OA_2 रेखा के ढाल अर्थात $\tan\theta_1$, $\tan\theta_1$, व $\tan\theta_2$ के बराबर होगा। चूँकि $\tan\theta > \tan\theta_1 > \tan\theta_2$ । अत: जैसे-जैसे हम उपभोग वक्र पर दाहिनी ओर अग्रसर होंगे वैसे-वैसे उपभोग की औसत प्रवृत्ति घटती जायेगी।

MPC उपभोग फलन के ढाल के आधार पर ज्ञात की जाती है। रैखिक उपभोग फलन में उपभोग वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर ढाल समान व स्थिर होगा अत: फलन के प्रत्येक बिन्दु पर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर होगी।

गैर-रैखिक उपभोग फलन

कीन्स ने गैर-रैखिक फलन का प्रतिपादन इस आधार पर किया कि आय की उत्तरोत्तर वृद्धि की अपेक्षा उपभोग में हासमान गति से वृद्धि होगी। अर्थात आय में वृद्धि के फलस्वरूप उपभोग फलन का ढाल घटेगा और उपभोग फलन गैर-रैखिक होगा।

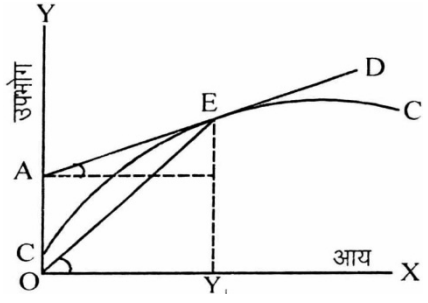

रेखाचित्र 6.7

रेखाचित्र 6.7 में CC' गैर-रैखिक उपभोग फलन है। बिन्दु E पर औसत उपभोग प्रवृत्ति EO रेखा के ढाल $\left[\frac{EY_1}{OY_1}\right]$ के बराबर होगी जो आय स्तर की वृद्धि के साथ घटती जायेगी।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति ज्ञात करने के लिए E बिन्दु पर CC' की स्पर्श रेखा AD खींची गई। E पर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्पर्श रेखा AD के ढाल अर्थात् $\tan\theta$ के बराबर होगी। चित्र से स्पष्ट है कि आय में वृद्धि के साथ स्पर्श रेखाओं द्वारा समानान्तर के साथ बनाये गये कोण लगातार घटते जायेंगे। अर्थात् सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति निरन्तर घटती जायेगी।

इस प्रकार जब MPC स्थिर हो तो उपभोग फलन रैखिक होगा और जब MPC गिरती हुई हो तो उपभोग फलन गैर-रैखिक अथवा वक्र के रूप में होगा। गैर-रैखिक उपभोग फलन में आय वृद्धि के साथ MPC तथा APC दोनों में ही हास होता है पर MPC के हास की गति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र होती है।

6.3.3 दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन उपभोग फलन

अल्पकालीन गैर-अनुपाती एवं दीर्घकालीन अनुपाती उपभोग आय के सम्बन्धों के मध्य दृश्य असंगति सामंजस्य स्पष्ट करने की दृष्टि से अर्थशास्त्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार की परिकल्पनाओं को उभारा गया है। दीर्घकालीन उपभोग आय अनुपात (C/Y = APC) स्थिर रहता है। दीर्घकालीन उपयोग फलन C = bY समीकरण का स्वरूप ग्रहण करता है तथा दीर्घकाल में औसत उपभोग की प्रवृत्ति में कोई गिरने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। दीर्घकाल में उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC) उपभोग की औसत प्रवृत्ति (APC) के बराबर होती है। दीर्घकालीन उपभोग फलन रेखा मूल बिन्दु से शुरू होने वाली सीधी रेखा होती है।

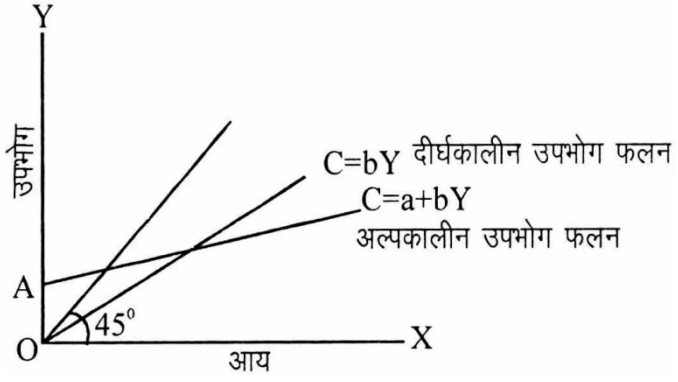

रेखाचित्र 6.8

अल्पकालीन उपभोग फलन में उपभोग आय अनुपात (C / Y = APC) आय में वृद्धि के साथ घटता जाता है। कीन्स ने इसी उपभोग फलन की चर्चा की है जिसका स्वरूप C = a + bY होता है।

6.4 कीन्स का उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम (Psychological Law of Consumption)

6.4.1 अवधारणा

इस नियम को 'उपभोग सम्बन्दी आधारभूत नियम'' भी कहते हैं। इस सिद्धान्त में प्रो. कीन्स ने उपभोग की सामान्य प्रवृत्ति का उल्लेख किया है। इसकी मुख्य बातें निम्न प्रकार है-

(i) कुल आय में वृद्धि होने पर, कुल उपभोग व्यय में भी वृद्धि होती है किन्तु उपभोग जय में वृद्धि, आय की वृद्धि की तुलना में कम होती हे।

(ii) आय में जो वृद्धि होती है, उसे उपभोग एह बचत के रूप में एक निश्चित अनुपात में विभाजित किया जाता है।

(iii) आय में वृद्धि के फलस्वरूप एक व्यक्ति के उपयोग एवं बचत दोनों में वृद्धि होती है। उपभोग में इसलिए वृद्धि होती है, क्योंकि आय बढ़ने से एक व्यक्ति पहले की तुलना में अधिक संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।

6.4.2 कीन्स की मनोवैज्ञानिक नियम की मान्यताएं

(i) इस नियम को लाग होने के लिए अर्थव्यवस्था में सामान्य परिस्थितियां विधमान रहनी चाहिए। अर्थात् युद्ध, अत्यधिक मुद्रा प्रसार क्रान्ति आदि स्थितियां नहीं होनी चाहिए।

(ii) वर्तमान मनोवैज्ञानिक संस्थागत स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए जिससे लोगों की उपभोग प्रवृत्ति स्थिर बनी रहती है।

(iii) देश में एक समृद्ध पूँजीवादी अर्थव्यवस्था होनी चाहिए जिसमें सरकार का उपभोग पर कोई प्रीतबन्धि न हो।

6.4.3 कीन्स के मनोवैज्ञानिक उपभोग नियम के निहित तत्व

(i) नियम से यह ज्ञात होता है कि उपभोग कय, अधिकांशत: आय पर निर्भर करता है तथा उपभोग फलन स्थिर रहता है अर्थात् चूँकि लोग अपनी आय में हुई वृद्धि की अपेक्षा कम व्यय करते हैं। इसलिए जब तक इस कमी को पूरा करने के लिए निवेश की मात्रा नहीं बढ़ाई जायेगी तब तक अधिकांश उत्पादन तथा रोजगार उपलब्ध कराना लाभदायक नहीं होगा।

(ii) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए या तो उपभोग व्यय में वृद्धि हो अथवा निवेश में वृद्धि हो अन्यथा देश में बेरोजगारी तथा मंदी की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। अल्पकाल में उपभोग फलन स्थिर होता है, अत: देशहित निदेश बढ़ाने में है ।

(iii) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के इकाई से कम होने के कारण आय में वृद्धि होने पर उपभोग में वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है जिससे बचत अन्तर की समस्या उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप देश में सामान्य अत्युत्पादन तथा बेरोजगारी उत्पन्न हो जाने की आशंका होती है।

(iv) यदि उपभोग व्यय न बढ़ाया जाय तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कम हो जाती है अर्थात्

लाभ की प्रत्याशित दर गिर जाती है जिसमें निवेश की मांग कम हो जायेगी तथा देश की आगे उन्नति रूक जायेगी।

(v) कीन्स के इस नियम से व्यवसायिक अथवा व्यपार चक्रों (Trade Cycles) के मोड़ बिन्दुओं का भी पता चलता है। जब यह चक्र शिखर पर पहुँच जाता है तथा जनसाधारण की आय बड़ी अधिक हो जाती है तो चक्र नीचे की ओर गुड जाता है क्योंकि उपभोग एक सीमा के पश्चात बढ़ाया नहीं जा सकता। अत: चक्र नीचे पहुँचकर पुन: ऊपर की ओर इस कारण चल पडता है क्योंकि उपभोग व्यय एक विशेष सीमा के पश्चात और घटाया नहीं जा सकता।

6.5 कीन्सीय उपभोग फलन की प्रमुख विशेषताएं (Features of Keynesian Consumption Function)

कीन्स के उपभोग फलन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) आय उपभोग का महत्वपूर्ण निर्धारक है और आय में वृद्धि से उपभोग बढ़ता है। इसके विपरीत प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि ब्याज की दर प्रमुख रूप से लोगों के उपभोग व वचत को निर्धारित करती है।

(ii) कीन्स के विचारानुसार सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति शब्द से अधिक और इकाई से कम होती है।

(iii) कीन्स के उपभोग फलन के अनुसार औसत उपभोग प्रवृत्ति आय में वृद्धि के साथ कम हो जाती है।

(iv) कीन्स ने अपने सिद्धान्त को आय तथा रोजगार के स्तर में अल्पकालीन परिवर्तन की व्याख्या करने पर केन्द्रित रखा। चूँकि उपभोग फलन में अल्पकाल में अधिक परिवर्तन नहीं होते, वह इसे स्थिर मानकर आय तथा रोजगार के निर्धारण की व्याख्या करता है।

किन्सीय उपभोग फलन का महत्व

आर्थिक विश्लेषण तथा आर्थिक विचारों के सम्बन्ध में उपभोग फलन की धारणा का अपूर्व स्थान है। कीन्स द्वारा प्रतिपादित उपभोग फलन का आधुनिक अर्थव्यवस्था में बहुत महत्व है। हेन्सन ने तो इसे ''आधुनिक आर्थिक विचारों की युगान्तरकारी घटना' कहा है। कीन्स की उपभोग फलन समझी धारणा की उपादेयता निम्नांकित रूपों में व्यक्त की जा सकती हैं-

1. **विनियोग के महत्व का प्रतिपादन** कीन्स के अनुसार बेरोजगारी को दूर करने के लिए अधिक विनियोगों की व्यवस्था की जानी चाहिए। उन्होंने मंदी के युग में सरकार द्वारा पूँजी विनियोग की सलाह दी है।
2. **'से' के बाजार नियम का खण्डन** ''से'' के नियमानुसार पूर्ति स्वयं अपनी मांग उत्पन्न करती है। परन्तु कीन्स के अनुसार यदि समूर्ण आय का उपभोग नहीं होता तथा उसका कुछ भाग बचा लिया जाता है तो पूर्ति अपनी मांग पूरी तरह नहीं उत्पन्न करती और मांग की अपेक्षा अधिक होगी।
3. **पूंजी को सीमान्त उत्पादकता की प्रवृत्ति** उपभोग फलन से यह स्पष्ट होता है कि आय के बढ़ने पर, उपभोग उसी दर से नहीं बढ़ता अत: उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में कमी हो जाती है एवं उत्पादन में भी कमी होती है जिससे पूँजीगत वस्तुओं की मांग में भी कमी आती है जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के गिरने का कारण होता है। इसे बचने के लिए उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि आश्यक है।
4. **व्यापार चक्र** प्रभावी मांग, रोजगार, विनियोग तथा आय में वृद्धि से भी समृद्धि की स्थिति उत्पन्न होती है। यदि प्रभावी मांग कम होने लगे तो समृद्धि का क्रम रूककर अवसाद की स्थिति आ जाती है। इस प्रकार उपभोग फलन से व्यापार चक्र के मोड़ बिन्दुओं की व्याख्या करने में सहायता मिलती है।
5. **सरकारो हस्तक्षेप की आवश्यकता** 'से' का बाजार का नियम अहस्तक्षेप की नीति पर आधारित है किन्तु कीन्स ने इसका खण्डन किया और माना कि जब अर्थव्यवस्था अत्युलादन एवं बेरोजगारी की स्थिति पैदा हो जाती है तो सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

6. **अधिबचत एवं न्यून विनियोग के प्रतिकूल परिणाम** कीन्स के अनुसार आय बढ़ने के साथ उपभोग प्रवृत्ति घटती जाती है तथा आय और उपभोग के बीच अन्तर बढ़ता जाता है। दूसरी ओर बचत बढ़ती है जिसका यदि विनियोग नहीं किया गया तो न्यून विनियोग के कारण दीर्घकालीन स्थैतिक स्थिति आ जाती है।
7. **अल्प रोजगार संतुलन की व्याख्या** कीन्स ने स्पष्ट किया कि प्रभावपूर्ण मांग का संतुलन बिन्दु पूर्ण रोजगार के पहले ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि उपभोक्ता अपनी पूरी आय की वृद्धि को उपभोग पर व्यय नहीं करते एवं मांग में कुछ कमी बनी रहती है।

किन्सीय के 'उपभोग प्रवृर्ति' विचार की आलोचना

1. प्रो. कीन्स ने उपभोग फलन को एक प्रवृत्ति के रूप में निरूपित किया है किन्तु आलोचकों के अनुसार स्परूप गणितीय है, जो आय और उपभोग के बीच सम्बन्य व्यक्त करता है।
2. केन्स की उपभोग प्रवृत्ति को सांख्यिकी प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता।
3. प्रो. कीन्स ने उपभोग को आय से सम्बचित किया है किन्तु आलोचकों के अनुसार अन्य तत्व भी उपभोग को प्रभावित करते हैं जैसे आय और धन के बीच का अनुपात एवं धन का आकार।
4. कीन्स ने उपभोग की व्याख्या संख्यात्मक दृष्टिकोण से तो की है किन्तु इसके गुणात्मक पहलू का विवेचन नहीं किया।
5. प्रो. गार्डनर एक्ले के अनुसार "कीन्स की उपभोग क्रिया न तो आगमन तर्क का अच्छा उदाहरण है और न ही निगमन तर्क का"।

6.6 बचत एवं निवेश (Saving and Investment)

6.6.1 परम्परावादी दृष्टिकोण

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है, जहां बचत और निवेश हमेशा समान होते हैं। उनके अनुसार बचत और निवेश ब्याज की दर के फलन है अर्थात्

S = f (r) और I = f (r) जहां r ब्याज दर, S बचत और I निवेश का धोतक है। अत: निवेश और बचत बराबर है और यदि किसी अवधि में पूर्ण रोजगार नहीं है तो बचत और निवेश बराबर नहीं होंगे। इस अन्तर को ब्याज दर से दूर किया जा सकता है। जब व्याज की दर बढ़ती है तो बचत बढ़ती है और निवेश घट जाता है। जाज की दर तथा बचत की बीच सीधा तथा ब्याज की दर व निदेश के बीच विलोम सचन्द है। यदि किसी समय निदेश की अपेक्षा बचत कम होती है, तो ब्याज की दर बढ़ती है, निवेश घट जाता है। ऐसा तब तक होता है जब तक कि बचत और निवेश बराबर नहीं जो जाते। इसके विपरीत, जब निवेश की अपेक्षा बचत अधिक हो तो ब्याज की दर घटती है और बचत तब तक घटती है जब तक नई व्याज दर पर दोनों बराबर नहीं हो पाते।

रेखाचित्र 6.9 में SS' बचत वक्र है, जो आज की दर में वृद्धि से ऊपर की ओर दाएं चलता है। II निवेश वक्र है। OR बाज दर पर E संतुलन बिन्दु है जहां बचत व निवेश RE के बराबर है। यदि निवेश बढ़कर (I_1I_1) RH पर पहुँच जाता है तथा बचत RE ही रहे तो ब्याज की दर बढ़कर OR^1 कर देने पर बचत व निवेश बराबर होंगे।

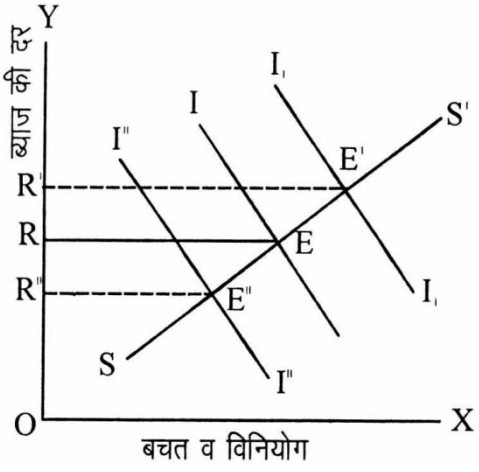

रेखाचित्र 6.9

यदि निवेश RE से गिरकर RK (I"I") हो जाये तो बचत RE > RK और ब्याज की दर OR" से गिरकर E" पर बचत तथा निवेश में समानता स्थापित कर देती है।

6.6.2 कीन्सीय दृष्टिकोण

कीन्स परम्पराकदी विचारधारा से सहमत नहीं थे कि बचत तथा निदेश के बीच समानता बाज की दर के माध्यम से स्थापित होती है तथा यह समानता केवल निवेश वक्र को सरकाती है। कीन्स इस विचार से भी असहमत थे कि पूर्ण रोजगार स्तर पर बचत तथा निवेश समान होते हैं। बचत निवेश समानता के सबन्ध में कीन्स ने दो विचार प्रस्तुत किये-

1. बचत तथा निवेश के भींच लेखांकन अथवा परिभाषित समानता

कीन्स ने अपनी पुस्तक General Theory में बताया कि बचत तथा निवेश समस्त समुदाय के लिए मात्रा में अनिवार्यत: समान होते हैं क्योंकि वे एक ही चीज के विभिन्न पक्ष हैं। कीन्स ने चालू अवधि में बचत और निवेश को चालू आय से, चालू उपभोग के आधिक्य के रूप में परिभाषित किया।

सूत्रानुसार-

$S_t = Y_t - C_t$

$I_t = Y_t - C_t$

$\Rightarrow S_t = I_t$

जहां S बचत, I निवेश Y आय, C उपभोग तथा t चालू अवधि है।

बचत और निवेश समरूप है क्योंकि वे ऐसे परिभाषित की गई है कि वे सदैव बराबर है।

2. फलनात्मक समानता

अथवा अनुसूची के अर्थ में बचत और निवेश में समानता लाने का कार्य आय का समायोजनकारी यन्त्र करता है, जो कि आज की दर में परिवर्तनों से सम्बन्धित क्लासिकी विचारधारा से नितान्त भिन्न है। आय के संतुलन स्तर पर बचत तथा निदेश समान होते है । जब निवेश की अपेक्षा बचत बढ़ जाती है, तो आय घट जाती है और जब बचत की अपेक्षा निवेश बढ़ जाता है तो आय बढ़ जाती है। आय, बचत तथा निवेश में परिवर्तनों की यह प्रावैगिक प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि 'बचत तथा निवेश के बीच न केवल समानता बल्कि संतुलन भी स्थापित नहीं हो जाता।

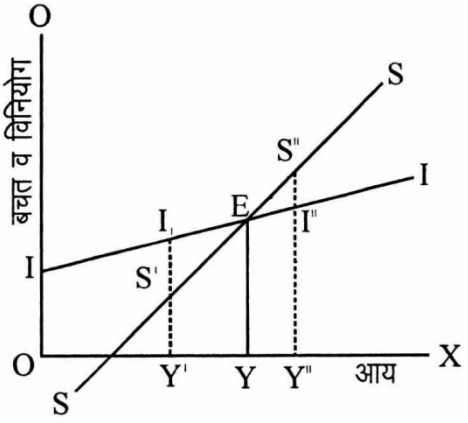

रेखाचित्र 6.10

रेखाचित्र 6.10 में SS बचत वक्र तथा II निवेश वक्र है। जब आय OY^1 है तो बचत की अपेक्षा निवेश अधिक है, I, $Y>S^1$ Y^{11} अपेक्षाकृत अधिक निवेश के परिणामस्परूप गुणक प्रक्रिया के मार्ग से आय तथा बचत में तब तक वृद्धि होती चलेगी जब तक कि संतुलन आय स्तर OY पर बचत व निवेश समान नहीं हो जाते (E संतुलन बिन्दु) जब आय OY^{11} हो जाती है तो निवेश की अपेक्षा बचत बढ़ जाती है, परिणामस्वरूप गुणक की विपरीत प्रक्रिया के मार्ग से आय तब तक घटती चलेगी तब तक OY आय स्तर पर बचत और निवेश बराबर नहीं हो जाते।

इस प्रकार केवल संतुलन की स्थिति में ही बचत और निवेश समान होते हैं। 67

बोध प्रश्न -03

1. कीन्सीय उपभोग फलन की विशेषताओं की व्यख्या कीजिए।
2. उपभोग फलन के महत्व को समझाइए।
3. कीन्स उपभोग फलन की अवधारणा की किस आधर पर आलोचना की गई?
4. बचत और निवेश के परस्पर सम्बन्धों के परम्परावादी एवं कीन्सीयवादी दृष्टिकोणों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

6.7 सारांश (Summary)

कीन्स की "उपभोग फलन" धारणा ने आर्थिक विचारों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। इससे विनियोग और उपभोग की प्रक्रियाओं में सुधार करने की प्रेरणा मिलती है और

तदनुसार ही सरकारी अर्थनीतियों में परिवर्तन हुए हैं। प्रोडडले डिलार्ड ने उपभोग प्रवृत्ति का महत्व बताते हुए कहा है कि 'उपभोग प्रवृत्ति की धारणा का बहुत अधिक व्यावहारिक महत्व है तथा यह आर्थिक विश्लेषण को बहुत सरल बना देता है।" प्रस्तुत इकाई में कीन्स द्वारा बताई गयी विभिन्न उपभोग प्रवृत्तियों का विवरण दिया गया है। उपभोग फलन के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा की गयी है।

इस इकाई में कीन्स के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त, जो उपभोग से सम्बन्धित है का भी उल्लेख है। कीन्स ने आय को ही उपभोग का निर्धारक मान कर अपना सिद्धान्त दिया जो कि अन्य अर्थशास्त्रियों के लिए आलोचना का विषय बना।

प्रस्तुत अध्याय में औसत उपभोग प्रवृत्ति, सीमान्त उपभोग, औसत बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति का विश्लेषण दिया गया है और इनके बीच सम्बन्धों तथा इनके महत्व का भी उल्लेख किया गया।

बचत एवं निवेश से सम्बन्धित परम्परावादी विचारधारा तथा कीन्सवादी दृष्टिकोण के बीच अन्तर स्पष्ट किया गया है तथा संतुलन हेतु बचत एह निवेश का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है, इसे चित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

6.8 शब्दावली (Glossary)

उपभोग फलन	Consumption Function
आय	Income
औसत उपभोग प्रवृत्ति	Average Propensity to Consume (APC)
औसत बचत प्रवृत्ति	Average Propensity to Save (APS)
सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति	Marginal Propensity to Consume (MPC)
सीमान्त बचत प्रवृत्ति	Marginal Propensity to Save (MPS)
वस्तुपरक तत्व	Objective Factors
व्यक्तिपरक	Subjective
समयपश्चता विहीन उपभोग फलन	Consumption Function Without time lag
समयपश्चता युका उपभोग फलन	Consumption Function With time lag
गैर-रैखिक उपभोग फलन	Linear Consumption Function
अल्पकालीन उपभोग फलन	Non -Linear Consumption Function
दीर्घकालीन उपभोग फलन	Long -Term Consumption Function
कीन्स का उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम	Keynes' Psychological Law Of Consumption
लेखांकन अथवा परिभाषित समानता	Accounting or Definitional identity
फलनात्मक समानता	The Functional Equality

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

Ahuja. H.L., “Advanced Macro Economic Theory”, S. Chand & Com. Ltd., Delhi

Jhingan. M.L., “Macro Economic”, Konark Publishers Pvt. Ltd., New Delhi.

Singhai. G.C.& Mishra J.P., “Macro Economic Analysis”, Sahitya Publications

Dwivedi. D.N., ‘’Macro Economic Theory & Policy”, Tata Mc Grow Hill Publishing Company Limited, New Delhi

Shapiro Edward, “Macro Economic Analysis’’, Galgotia Publication Pvt. Ltd., New Delhi.

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit- end Questions)

1. उपभोग फलन क्या है? कीन्सीय उपभोग फलन के मुख्य लक्षण क्या हैं?
2. कीन्स की मनोवैज्ञानिक उपभोग नियम के महत्व एवं सीमाओं की व्याख्या कीजिए।
3. निम्न कथनों की व्याख्या कीजिए और उनमें संगीत कीजिए।
   (क) बचत निवैश के सदैव समरूप है।
   (ख) बचत निवेश के बराबर तभी होती है जब अर्थव्यवस्था संतुलन में हो।
4. कीन्स का उपभोग फलन आर्थिक विश्लेषण में युग प्रवर्तक औजार है। विवेचना कीजिए।
5. उपभोग प्रवृत्ति की अवधारणा रोजगार के सिद्धान्त में कैसे महत्वपूर्ण स्थान रखती हे?
6. बचत तथा निवेश के सम्बन्ध में क्लासिकी विचारधारा क्या है? कीन्सीय विचारधारा किस अर्थ में भिन्न है, सचित्र वर्णन कीजिए।

इकाई -07

विनियोग - स्वायत्त विनियोग प्रेरित विनियोग विनियोग के निर्धारत घटक

(Investment- Autonomous Investment, Induced Investment, Determinants of ' Investment)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 नियोग

7.2.1 विनियोग का अर्थ

7.2.2 विनियोग का महत्व

7.3.3 विनियोग को प्रोत्साहित करने के उपाय

7.3 विनियोग के प्रकार

7.3.1 स्वायत्त विनियोग

7.3.2 प्रेरित विनियोग

7.3.3 विनियोग के अन्य प्रकार

7.4 विनियोग से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्त

7.4.1 विनियोग का त्वरक सिद्धान्त

7.4.2 विनियोग का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त

7.4.3 टोबिन द्वारा निवेश का क्यू (q) सिद्धान्त

7.5 विनियोग के निर्धारक तत्व

7.5.1 ब्याज की दर

7.5.2 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता

7.6 सारांश

7.7 शब्दाबली

7.8 संदर्भ ग्रन्ध

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य (Objectives)

उपभोग के साथ-साथ प्रभावपूर्ण मांग का एक अन्य निर्धारक घटक विनियोग है। किसी देश के आय, उत्पादन एवं रोजगार के स्तर का निर्धारण विनियोग की मात्रा पर निर्भर करता है, क्योंकि उपभोग अल्पकाल में स्थिर रहता है। विनियोग में परिवर्तन प्रभावपूर्ण मांग में

परिवर्तन उत्पन्न करता है जिससे आय, उत्पादन एवं रोजगार का स्तर प्रभावित होता है। इस बात को पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि जिस अनुपात में आय बढ़ती है उपभोग उस अनुपात में नहीं बढ़ता। इसलिए निवेश की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि:

- विनियोग का अर्थ क्या है?
- विनियोग के मुख्य प्रकार कौनसे हैं एवं उनका क्या अर्थ है?
- विनियोग किन-किन बातों पर निर्भर करता है; एवं
- विनियोग से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

निवेश पूर्ण रोजगार स्तर प्राप्त करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण यंत्र है एवं पूँजीवादी अर्थव्यवास्था में सम्पन्नता की कुंजी है। इस इकाई के भाग 7.2 में सर्वप्रथम निवेश अथवा विनियोग का अर्थ स्पष्ट किया गया है। यह अर्थ सामान्य बोलचाल की भाषा से अलग है। सामान्य बोलचाल की भाषा में शेयर बाजार में रूपया लगाना विनियोग है परन्तु अर्थशास्त्री इसे वास्तविक विनियोग नहीं मानते उनकी दृष्टि से विनियोग से अभिप्राय नए पूँजीगत पदार्थों का सृजन है। भाग 7.3 में विनियोग के प्रमुख प्रकारों स्वायत्त विनियोग एवं प्रेरित विनियोग को स्पष्ट किया गया है। भाग 7.4 में विनियोग के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है एवं भाग 7.5 में विनियोग के निर्धारक घटकों का वर्णन किया गया है। इकाई के अन्त में सारांश, शब्दावली व सन्दर्भ ग्रन्धों की सूची दी गई हे।

7.2 विनियोग (Investment)

7.2.1 विनियोग का अर्थ

साधारण बोलचाल की भाषा में निवेश का अर्थ है उन शेयरों, स्टॉक, ऋण-पत्रों तथा प्रीतभूतियों को खरीदना जो पहले से स्टॉक मार्केट में विधमान हो। परन्तु यह वास्तविक निदेश नहीं है क्योंकि यह तो वर्तमान परिसम्पत्तियों का हस्तान्तरण मात्र है। केन्ज्वादी शब्दाबली में - विनियोजन का सचच उस वास्तविक विनियोजन से हैं जो पूँजी पदाथों में वृद्धि करे। पूँजीगत पदार्थो जैसा कि मशीनें, उपकरण, औजार, निर्माण कार्य जैसे कि मकान, दुकान और फैस्ट्रियों की इमारतें आदि तथा सार्वजनिक निर्माण कार्य जैसे कि नहरें, सड़कें, पुल और बांधों में वृद्धि को ही अर्थशास्त्र में निवेश कहा जाता है। इस सभी प्रकार की पूँजी से आगे चलकर देश के उत्पादन में वृद्धि होती है।

विनियोग से अभिप्राय सामान्यतया उन वस्तुओं के उत्पादन से है जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त हो, इस प्रकार ऐसी वस्तुएं जो प्रत्यक्षरूप से उपभोग में नहीं आती, उन्हें विनियोग कहा जाता है। अन्य शब्दों में विनियोग से अभिप्राय उत्पादन क्रिया में प्रयुका उस बचत से होगा जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन में सहायक हो। **श्रीमती जान रोबिन्सन के अनुसार "विनियोग का अर्थ है पूँजी में होने वाली वृद्धि वह उस समय होता है जब नया मकान बनाया**

जाता हैअथवा नई फैक्टरी का निर्माण किया जाता है। विनियोग का अर्थ है वस्तुओं के चालू स्टॉक में वृद्धि की जाय "। स्टोनियर एवं हेग लिखते हैं, "निवेश से हमारा अभिप्राय चालू प्रतिंभूतियो, बॉण्डों एवं शेयरों को खरीदने से न होकर नए कारखानों एवं मशीनों आदि को खरीदने से है" ।

विनियोग ही पूँजी है। अत: किसी भी अर्थव्यवस्था में किसी समय में होने वाला विनियोग पूँजी की वृद्धि के बराबर होगा और विभिन्न समयावधि में की गई विनियोग की मात्रा के आधार पर अर्थव्यवस्था के पूँजी स्टॉक को ज्ञात किया जा सकता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने विनियोग मांग को ब्याज की दर का फलन बताया था अर्थात I = f (r) व्यक्तिगत क्षेत्र में उधमी जब अर्थव्यवस्था किसी अतिरिक्त पूँजीगत साधन का निर्माण करते हैं तो वे यह अवश्य देखते हैं कि उस पूँजीगत साधन से उन्हें कितना शुद्ध लाभ प्राप्त होगा अर्थात् लाभ की अपेक्षित दर क्या होगी? यदि अपेक्षित लाभ दर बाज दर से अधिक होती है तो उधमी विनियोग के लिए प्रोत्साहित होगा अन्यथा नहीं। उस बिन्दु तक उधमी विनियोग करेगा जिस बिन्दु पर लाभ की दर लाज की दर के बराबर हो जाये। लाभ की दर यदि आज की दर से कम है तो उधमी विनियोग के लिए प्रोत्साहित नहीं होगा। इस प्रकार अप्रत्याशित आय, उधमी को विनियोग की प्रेरणा देती है।

7.2.2 विनियोग का महत्व

किसी देश में राष्ट्रीय आय और रोजगार की मात्रा को निर्धारित करने में निवेश का महत्वपूर्ण हाथ होता है । अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति प्राय: स्थिर रहती है अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, इसलिए अल्पकाल में राष्ट्रीय आय और रोजगार का स्तर निर्धारित करने में निवेश की मात्रा जितनी अधिक होगी, राष्ट्रीय आय और रोजगार उतना ही अधिक होगा ।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पर संतुलन इसलिए नहीं होता क्योंकि पूर्ण रोजगार के स्तर पर जो बचत होती है निवेश उसके बराबर नहीं होती । जब पूर्ण रोजगार स्तर पर बचत की मात्रा से निवेश कम होता है तो अर्थव्यवस्था का संतुलन पूर्ण रोजगार की स्थिति से पूर्व ही स्थापित हो जाता है अर्थात् अल्प-रोजगार संतुलन स्थापित हो जाता है । कीन्स ने स्वतंत्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अल्परोजगार संतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाने की विवेचना की थी । इसके विपरीत जब निवेश की मात्रा पूर्ण रोजगार के स्तर पर बचत से अधिक होती है तो देश में मुद्रा स्फीति अर्थात् मूल्यवृद्धि की दशा उतन्न हो जाती है । अत: हम देखते हैं कि देश में राष्ट्रीय आय, रोजगार और कीमतों को निर्धारित करने में निवेश का महत्वपूर्ण स्थान है।

7.2.3 विनियोग को प्रोत्साहित करने के उपाय

अर्थव्यवस्था में रोजगार स्तर उपभोग तथा विनियोजन पर निर्भर करता है । अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति प्राय: स्थिर रहती है । अत: रोजगार में वृद्धि के लिए मुख्यत: विनियोजन पर ही निर्भर रहना पड़ता है । विनियोजन को प्रोत्साहित करने वाले उपायों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जाता है।

(i) **सस्ती मुद्रा नीति** विनियोजन को प्रोत्साहित किए जाने के सम्बन्ध में कीन्स ने पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ाने का सुझाव दिया । मन्दी से छुटकारा प्राप्त करने के लिए कीन्स ने सस्ती मुद्रा नीति के साथ-साथ राजकोषीय उपायों को अपनाने का सुझाव दिया है ।

(ii) **एकाधिकार की प्रवृत्ति पर नियंत्रण** बड़ी फर्मो की यह सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वे उत्पादन के क्षेत्र में अपना एकाधिकार एवं प्रभुत्व स्थापित करना चाहती है, जिससे छोटी फर्मा द्वारा किये जाने वाले विनियोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । अत: क्लेन के अनुसार सरकार को बड़ी फर्मा की एकाधिकार सम्बन्धी प्रवृत्तियों पर नियत्रंण हेतु उचित उपाय करें । इस प्रकार नीति से प्रतियोगिता तथा विनियोजन को प्रोत्साहन मिलेगा ।

(iii) **मूल्य समर्थन नीति** मूल्यों में होने वाले उतार-चढ़ावों से निजी विनियोजन पर प्रतिकूल प्रभाब पडता है । अत: निजी विनियोजन को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक है कि कीमतों में स्थिरता लाई जाए । इसके लिए क्लेन ने सुझाव दिया कि सरकार को मूल्य समर्थन की नीति अपनानी चाहिए ।

(iv) **निगम करों में कमी** निगम कर विनियोजन पर विपरीत प्रभाव डालते हैं । अत: लाभों पर कर नहीं लगाया जाना नही और यदि आवश्यक हो तो इस प्रकार लगाया जाए कि नवीन विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े ।

(v) **मजदूरी में कटौती** क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की धारणा थी कि मुद्रा मजदूरी में कटौती करके विनियोजन को प्रोत्साहित किया जा सकता है । जब मुद्रा मजदूरी घटाई जाती है तो लागतें कम हो जाती है मांग बढ़ती है जिससे विनियोजन में वृद्धि होती है ।

(vi) **अनुसंधान एवं नवप्रवर्तन को बढ़ावा देना** सरकार को अनुसंधान एवं नवप्रवर्तन के कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए । विविध उद्योगों के सम्बन्ध में किए गये अनुसंधानों की उपलब्धियों को उद्योगों को प्रदान किया जाना चाहिए तथा उद्योगों में नवप्रवर्तन को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वे उससे लाभ उठा सकें ।

(vii) **समुद्दीपन नीति** समुद्दीपन नीति निजी विनियोजन को प्रोत्साहन करने के उद्देश्य से सार्वजनिक निर्माण कार्यो पर सरकार व्यय से सम्बन्ध रखती है । मन्दीकाल में निजी विनियोजन को प्रोत्साहित करने के लिए जब सरकार बैंकिग व्यवस्था से उधार लेती है तो निष्क्रिय बाकी रोकड सक्रिय हो जाते हैं; बैंक जमा बढ़ते हैं नई साख का निर्माण होता है । इस तरह की समुद्दीपन वित्त प्रबन्ध की रीति ही पुनरूत्थान में सहायक होती है । यह न केवल संस्थागत बचतकर्त्ताओं के विनियोजन को सुगम बनाती है बल्कि उधार जमा तथा सामान्य व्यापार पुनरूत्थान को प्रोत्साहन देकर मौद्रिक नीति की अनुपूर्ति भी करती

(viii) **लीफ रींकिंग** यह सार्वजनिक व्यय के माध्यम से अनुत्पादक कार्यो को चलाने का एक तरीका है । यदि सरकार के पास कोई उत्पादक कार्य न हो तो वह लोगों को अनुत्पादक कार्यो जैसे गड्ढ़े की खुदाई कराकर पुन: उसे मिट्टी से भराने का कार्य प्रदान करे ताकि उनकी क्रयशक्ति बढ़े और प्रभाशपूर्ण मांग में वृद्धि हो सके ।

इसके साथ ही सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों का विकास करके प्रशासकीय विभागों का विस्तार करके, निर्यात में वृद्धि करके तथा विभिन्न रोजगार योजनाएं चलाकर सार्वजनिक विनियोग में वृद्धि की जा सकती है ।

बोध प्रश्न-01

1. विनियोग से आप क्या समझते है?
2. उन करकों का वर्णन करें जो विनियोग फलन को प्रोत्साहित करते है।
3. अल्पविकसित देश में निवेश के महत्व का परीक्षण कीजिए।

7.3 विनियोग के प्रकार (Types of Investment)

विनियोग को सामान्यत: निम्न दो वर्गो में बांटा जा सकता है (1) स्वायत्त विनियोग तथा (2) प्रेरित विनियोग ।

7.3.1 स्वायत्त विनियोग

स्वायत्त या स्वतंत्र विनियोग से अभिप्राय उस निवेश से हो जो आय में कमी और वृद्धि के फलस्वरूप घटता-बढ़ता नहीं है । अन्य शब्दों में स्वायत्त विनियोग एक स्थिर उपभोग स्तर पर किया जाता है तथा आय एवं उत्पादन के परिवर्तनों से प्रमावित नहीं होता । कीन्स अपने आय-व्यय दृष्टिकोण अथवा आय गुणक मॉडल में स्वतंत्र निवेश की धारणा का प्रयोग करते हैं । स्वतंत्र निवेश को रेखाचित्र 7.1 में दर्शाया गया है । स्वायत विनियोग वक्र OX अक्ष के समानान्तर होता है ।

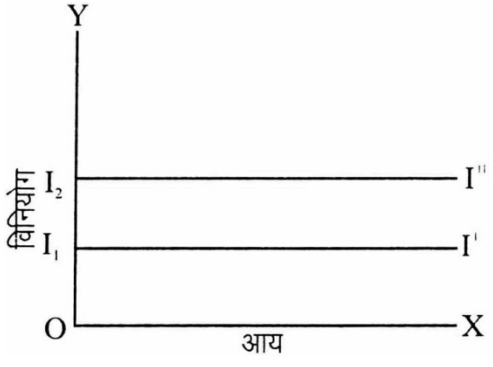

रेखाचित्र 7.1

रेखाचित्र 7.1 से स्पष्ट है कि आय के सभी स्तरों पर ओआई OI_1 स्थिर रहता है । वक्र का ऊपर की ओर सरक कर I_1I'' पर जाना आय के सभी स्तरों पर OI_1 की स्थिर दर से विनियोजन बढ़े हुए प्रवाह को प्रकट करता है । किसी सर्वथा नई फैक्ट्री या कम्पनी की स्थापना तथा सार्वजनिक विनियोग इसके उदाहरण है । इस नियोजन का बाह्य साधन जैसे नवप्रवर्तन, आविकार, जनसंख्या या श्रम शक्ति की वृद्धि, अनुसंधान, सामाजिक तथा कानूनी संस्थाएं, मौसम परिवर्तन, युद्ध, क्रांति इत्यादि प्रभावित करते हैं । यह मांग में परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता बल्कि यह मांग को प्रभावित करता है । बिल्डिंग, बांध, सड़कों, नहरों, स्कूलों', अस्पतालों

इत्यादि पर किया गया व्यय विनियोजन स्वायत होता है, क्योंकि इन परियोजनाओं में किया गया विनियोजन सामान्यतया सार्वजनिक नीति से सम्बन्धित रहता है । इसलिए स्वायत विनियोजन को सार्वजनिक विनियोजन समझा जाता है । दीर्घकाल में सब प्रकार का निजी विनियोजन स्वायत बन जाता है क्योंकि इसे बाह्यजात साधन प्रभावित करते हैं ।

7.3.2 प्रेरित विनियोग

प्रेरित विनियोजन वह है जो उपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि होने के कारण मशीन आदि पूँजीगत साज सामान का उत्पादन बढ़ाने के लिए किया जाता है । प्रेरित विनियोजन आय स्तर के परिवर्तनों से प्रभावित होता है । प्रेरित निवेश राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ बढ़ता है तथा उसकी कमी के साथ घटता है । इस तरह प्रेरित विनियोजन आय का फलन होता है, अर्थात् $I = F(Y)$

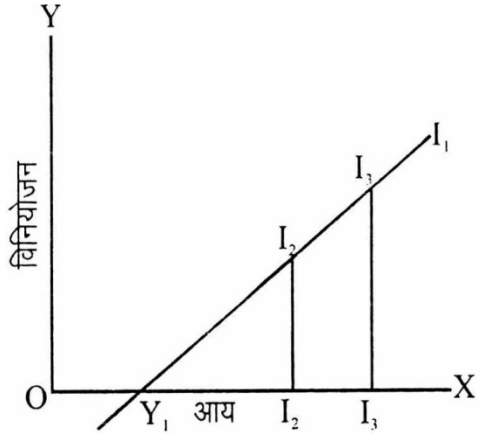

रेखाचित्र 7.2

रेखाचित्र 7.2 से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय अथवा उत्पादन के स्तर Y_1 पर प्रेरित निदेश I_1, है, राष्ट्रीय आय के बढ़ कर Y_2 हो जाने से यह I_1 हो जाता है । इसका कारण यह है कि जब राष्ट्रीय आय अथवा राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है तो यदि पहले से उपर्युक्त उत्पादन क्षमता मौजूद नहीं है तो अधिक मात्रा में वस्तुओं के उत्पादन के लिए अधिक मात्रा में नए पूँजी-पदार्थो की आवश्यकता होती है जिसके निर्माण में निवेश किया जाता है ।

आय की वृद्धि से प्रेरित निवेश के निर्धारण की आर्थिक दृष्टि से भी व्या की जा सकती है । जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो इससे बस्तुओं तथा सेवाओं के लिए अधिक समस्त मांग उत्पन्न होती है । बढ़ती हुयी समस्त मांग आर्थिक तेजी की दशा का सूचक होती है जो उद्यमकर्त्ताओं की लाभ कमाने की आशंसाओं को बढ़ा देती है और वे बस्तुओं की मांग में वृद्धि की पूर्ति के लिए पूँजी पदार्थो के निर्माण में अधिक निदेश के लिए प्रेरित होते हैं ।

प्रेरित विनियोजन की निम्न दो अवधारणाएं हैं.

1. **औसत विनियोजन प्रवृत्ति** विनियोजन का आय से अनुपात औसत विनियोजन प्रवृत्ति कहलाता है ।

   औसत विनियोग प्रवृत्ति $= \frac{\text{विनियोग}}{\text{आय}}$

$$API = \frac{I}{Y}$$

2. **सीमान्त विनियोग प्रवृत्ति** विनियोजन में परिवर्तन का आय में परिवर्तन से अनुपात सीमान्त विनियोग प्रवृत्ति कहलाता है अर्थात्

सीमान्त विनियोग प्रवृत्ति = $\frac{\text{विनियोग मे परिवर्तन}}{\text{आय में परिवर्तन}}$

$$MPI = \frac{\Delta I}{\Delta Y} \quad \text{या} \quad MPI = \frac{DI}{DY}$$

(यदि निवेश फलन संतत हो)

- **प्रेरित विनियोजन की विशेषताएं**
  1. प्रेरित विनियोजन आय सापेक्ष होता है अर्थात बह आय में परिवर्तन के साथ-साथ बदलता रहता है ।
  2. प्रेरित विनियोजन उपभोग बस्तुओं की मांग में वृद्धि के कारण किया जाता है ।
  3. आय तथा प्रेरित विनियोग के मध्य सीधा सम्बन्य पाया जाता है ।
  4. यह विनियोजन सामान्यतया निजी उद्यमियों द्वारा किया जाता है तथा लाभ से प्रेरित होता है।

7.3.3 विनियोग के अन्य प्रकार

(i) **निजी विनियोजन** निजी विनियोजन लाभ प्रत्याशाओं से प्रमावित होता है । यह लाभ लोचालक होता हैं निजी विनियोजन दो साधनों पर निर्भर ब्याज है- ब्याज की दर तथा पूँजी की सीमान्त दक्षता । निजी विनियोग वास्तव में प्रेरित विनियोजन होता है ।

(ii) **सार्वजनिक विनियोजन** सरकारी क्षेत्र में किये गये विनियोजनों को सार्वजनिक विनियोजन कहते हैं । फैक्ट्रियों का निर्माण, रेले, संचार साधनों तथा शक्ति परियोजनाओं आदि पर केन्द्र सरकार व्यय करती है । अस्पतालों, स्कूलों, नहरों, सड़कों आदि पर राज्य सरकारों द्वारा किये गए व्यय सार्वननिक व्यय के उदाहरण हैं ।

(iii) **सकल एवं शुद्ध विनियोजन** किसी देश में किया गया सभी तरह का विनियोजन सकल विनियोजन कहलाता है । यह कुल पूँजी परिसम्पत्ति में एक वर्ष के दोरान हुई वृद्धि के बराबर होता है । सकल विनियोजन में से मूल्य हास तथा अप्रचलन प्रभार घटा देने के बाद जो बचता है वह शुद्ध विनियोजन होता है, अत:

शुद्ध बिनियोन = सकल विनियोजन - मूल्यहास तथा अप्रचलन मार

(iv) **ऐच्छिक तथा अनैच्छिक व्यय** जब एक विशिष्ट उद्देश्य से योजनाबद्ध ढंग से विनियोजन किया जाता है तो बह ऐच्छिक विनियोजन होता है । बर्तमान पूँजी भण्डार में वृद्धि के लिए सुविचारित नीति से किया गया विनियोजन योजनाबद्ध अथवा ऐच्छिक विनियोजन होता है । जब मांग में अप्रत्याशित कमी के कारण स्टॉक का संचय हो जाता है तो वह अनैच्छिक या अयोजनाबद्ध विनियोजन होता है ।

बोध प्रश्न-02

1. विनियोजन कितने प्रकार के होते है ?कीन्स नेकिस प्रकार के विनियोजन का समर्थन किया है?
2. आप प्रेरित निवश से क्या समझते है? प्रेरित निवश के निर्धारकों की विवेचना कीजिए।
3. स्वायत निवेश की धारणा को चित्र के माध्यम से स्पष्ट करें।

7.4 विनियोग से सम्बन्धित विमिंन्न सिद्धान्त (Theories of Investment)

7.4.1 विनियोग का त्वरक सिद्धान्त

जे.एम. क्लार्क द्वारा दिए गए विनियोग के त्वरक सिद्धान्त के अनुसार जब देश की आय में वृद्धि होती है तो निवेश को बढ़ाना होता है अर्थात निबल निवेश आय अथवा उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप बढ़ाता है । अन्य शब्दों में निबल निबेश आय अथवा उत्पादन में वृद्धि का फलन है । आय में वृद्धि, वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ा देती है क्योंकि आय वृद्धि के कारण लोगों की क्रय शक्ति बड़ जायेगी । वस्तुओं की मांग में वृद्धि से वर्तमान पूँजी के स्टॉक जैसे कि मशीनों के अधिक गहन उपयोग द्वारा उत्पादन बढ़ा कर मांग को बढ़ाया जाता है किन्तु यदि पूँजी स्टॉक का पहले से ही पूर्ण अथवा अनुकूलतम उपयोग हो रहा है और इस प्रकार कोई आधिक्य क्षमता नहीं है तो आय के बढ़ने के फलस्वरूप अधिक पूँजी पदार्थो की आवश्यकता होती है ताकि आय में हुयी वृद्धि से उत्पन्न मांग की पूर्ति के लिए उत्पादन बढ़ाया जा सके । इस प्रकार आय के बढ़ने से निवेश अर्थात् पूँजी के स्टॉक में वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है । इस प्रकार प्रोत्साहित निवेश 'प्रेरित निवेश ' कहलाता है । निवेश के त्वरक सिद्धान्त के अनुसार आय के बढ़ने पर निवेश में कई गुना अधिक वृद्धि होती है । आय के बढ़ने के फलस्वरूप निवेश में जितने गुना अधिक वृद्धि होती है उसे त्वरक कहते हैं । इस सिद्धान्त से यह निहित तत्व प्राप्त होता है कि यदि राष्ट्रीय आय बढ़ रही है तो निबल धनात्मक होगा किन्तु यदि राष्ट्रीय आय अथवा उत्पादन स्थिर रहे तो निबल शून्य हो जायेगा ।

उत्पादन के एक दिये हुए स्तर को उत्पादित करने के लिए आवश्यक पूँजी की मात्रा को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

$$K_t = \upsilon Y_t$$

जहां K_t आवश्यक पूँजी का स्टॉक है Y_t उत्पादन का स्तर है और υ पूँजी-उत्पादन अनुपात है । यह पूँजी उत्पादन अनुपात के बराबर होता है जहां K पूँजी तथा Y आय का सूचक है । त्वरक के सिद्धान्त में पूँजी उत्पादन अनुपात को स्थिर माना जाता है । अतएव पूँजी-उत्पादन अनुपात के स्थिर रहने की दशा में उत्पादन अथवा आय में कोई भी परिवर्तन पूँजी के स्टॉक में आनुपातिक परिवर्तन करेगा ।

जब आय Y_{t-1} अवधि (t-1) में से बढ़कर t अवधि में Y_t हो तो आवश्यक पूँजी का स्टॉक k_{t-1} से बढ़कर kt हो जायेगा जो क्रमश: uY_{t-1} तथा u Y_t के अन्तर के समान है ।

$$K_t - K_{t_{-1}} = \upsilon Y_{t-I} - \upsilon Y_{t-I}$$

$$K_t - K_{t-I} = \upsilon(Y_t - y_{t-I})$$

चूँकि पूँजी स्टॉक में वृद्धि $(K_t - Y_{t-I})$ किसी वर्ष में हुए निवेश को व्यक्त करती है अत:

$$K_t - K_{t-I} = I_t \upsilon(Y_t - Y_{t-I})$$

स्पष्ट है कि दर्ष T में $(t-I)$ की तुलना में आय में वृद्धि $(Y_t - Y_{t-I})$ के फलस्वरूप I_t में υ गुणा वृद्धि होगी । अत: υ अर्थात् पूँजी उत्पाद अनुपात ही है जो त्वरक को दर्शाता है ।

- **त्वरक सिद्धान्त की मान्यताऐं**
  1. उपभोग वस्तुओं के उद्योगों में अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता का अभाव है ।
  2. पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता विद्यमान हो ।
  3. पूँजी-उत्पादन-अनुपात स्थिर है ।
  4. उत्पादन के साधन सजातीय तथा पूर्णतया विभाज्य है ।
  5. वित्त तथा अन्य आगतों की पूर्ति अत्यधिक लोचदार है ।
- **त्वरक सिद्धान्त की सीमाएं**
  1. यह सिद्धान्त तब लागू नहीं होता जब अर्थव्यश्स्था में पहले से निष्क्रिय अथश अप्रयुक्त अतिरिक्त उत्पादन शक्ति विद्यमान हो या पूँजीगत उद्योगों में अधिक मशीनें पहले से हो ।
  2. त्वरक सिद्धान्त में पूँजी उत्पाद अनुपात सदैव स्थिर रहता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है ।
  3. त्वरक सिद्धान्त के क्रियाशील हेतु उपभोग बस्तुओं की बढ़ी मांग का स्थायी स्वमाव का होना आवश्यक है ।
  4. त्वरक सिद्धान्त तभी सफलतापूर्वक लागू होगा जब अर्थव्यश्स्था में साधनों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो ।
  5. साख की पर्याप्त सुविधा उपलव्य होना आवश्यक है ।
  6. अवसाद की स्थिति में त्वरक सिद्धान्त लागू नहीं होगा ।

7.4.2 विनियोग का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त

नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने निवेश के सिद्धान्त में कुछ सुधार किए हैं जिनका व्यापारिक चक्रों की व्याख्या करने में बड़ा महत्व है । यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करता है कि फर्मे किसी समय कितना पूँजी पदार्थो का स्टॉक दीर्घकाल में रखना चाहेंगी, किन तत्वों पर निर्भर करता है । अर्थात् 'अभिष्ट पूँजी स्टॉक' किन तत्वों पर निर्भर करता है ।

फर्मो द्वारा अभिष्ट पूँजी स्टॉक पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा पूँजी की किराया कीमत द्वारा निर्धारित होता है । पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का अर्थ है कि पूँजी की एक इकाई उत्पादन के लिए प्रयोग करने पर वस्तु उत्पादन में कितनी वृद्धि करती है । पूँजी की

किराया कीमत सामान्यतया ब्याज की दर द्वारा मापी जाती है । जिस पर ऋण प्राप्त करके पूँजीगत पदार्थो को उत्पादित करने अथवा खरीदने के लिए प्रयोग किया जाता है । अपने लाभ अधिकतम करने के लिए फर्मे उतनी मात्रा में पूँजी स्टॉक स्थापित करना चाहेंगी जिससे पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पूँजी की किराया लागत अर्थात् ब्याज की दर के समान हो जाये ।

रेखाचित्र 7.3 से स्पष्ट है कि वक्र MPK गिरता हुआ है जो यह प्रदर्शित करता है कि जैसे एक विशेष उत्पादन की मात्रा Y_I के लिए पूँजी को अधिक प्रयोग किया जाता है, उसका सीमान्त उत्पादन MPK घटता जाता है ।

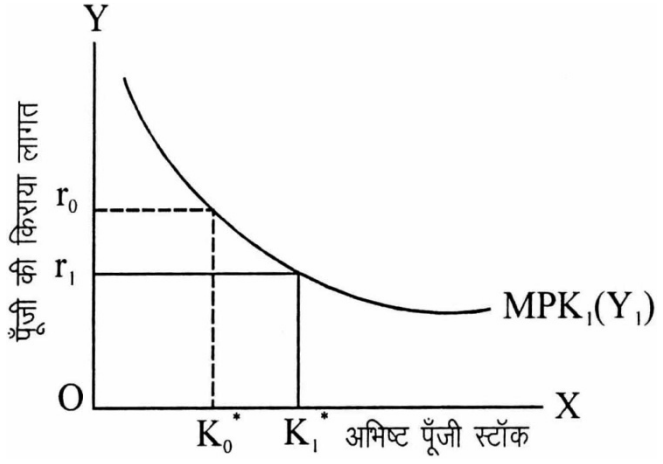

रेखाचित्र 7.3

रेखाचित्र 7.3 से स्पष्ट है कि यदि पूँजी की किराया लागत (अथवा व्याज की दर) r_0 के बराबर है तो अधिकतम लाभ सुनिश्चित करने के लिए पूँजी स्टॉक की अभिष्ट मात्रा K_0* के समान है जहां पर कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MPK_I) पूँजी की किराया लागत के समान है । यदि पूँजी की किराया घट कर r_I हो जाती है तो वस्तु की Y_I मात्रा उत्पादित करने के लिए अभिष्ट पूँजी स्टॉक की मात्रा बढ़कर K_I* हो जायेगी क्योंकि पूँजी की कम लागत पर श्रम के स्थान पर अधिक पूँजी का प्रयोग होगा । अत: संतुलन की दशा में-

पूँजी की सीमान्त मूल्य उत्पादकता = पूँजी की किराया लागत

पूँजी स्टॉक की अभिष्ट मात्रा न केवल पूँजी की किराया लागत पर निर्भर करती है, बल्कि यह वस्तु उत्पादन के स्तर द्वारा भी निर्धारित होती है । यदि पूँजी की कीमत कम है तो बस्तु की एक दी हुई मात्रा उत्पादित करने के लिए श्रम की तुलना में पूँजी का अधिक प्रयोग होगा । यदि वस्तु की अधिक मात्रा का उत्पादन करना है तो एक दी हुई पूँजी की किराया लागत पर अधिक पूँजी तथा अधिक श्रम की आवश्यकता होगी ।

रेखाचित्र 7.4 में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का वक्र MPK_I उत्पादन की Y_I मात्रा को दिया हुआ माना गया है । पूँजी की किराया लागत r_0 दी हुई होने पर तथा उत्पादन की मात्रा Y_I होने पर पूँजी का अभिष्ट स्टॉक K_0* के समान है । यदि वस्तु की अधिक मात्रा का उत्पादन करना है तो पूँजी तथा श्रम दोनों की अधिक मात्राओं का प्रयोग किया जायेगा और पूँजी की सीमान्त उत्पादकता वक्र दायीं ओर को सरक जायेगा (MPK_I से MPK_2) अत:

स्टॉक की मात्रा संतुलन की स्थिति में पूँजी की किराया लागत (अर्थात् बास्तविक ब्याज की दर) के अलावा वस्तु उत्पादन की मात्रा पर भी निर्भर करती है ।

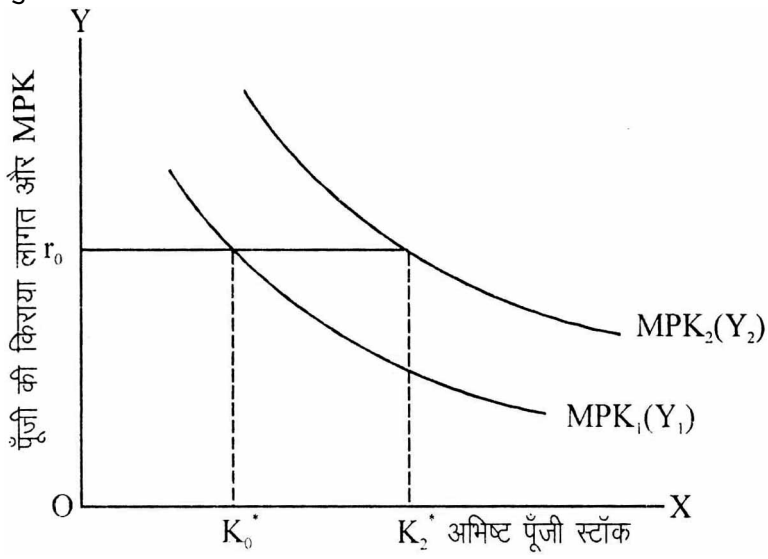

रेखाचित्र 7.4

उपर्युक्त विश्लेषण से पूँजी स्टॉक के निर्धारक तत्वों को निम्न फलन के रूप में व्यक्त कर सकते हैं-

$K^*=F(r,Y)$

K^* = अभिष्ट पूँजी स्टॉक

r = पूँजी की किराया लागत

Y = उत्पादन स्तर

7.4.3 टोबिन द्वारा निवेश का q सिद्धान्त

अमेरिका के बिख्यात अर्थशास्त्री जेम्स टोबिन ने शेयर मार्केट में दशाओं को पूँजी स्टॉक में वृद्धि (अर्थात निदेश) को निर्धारित करने में महत्यपूर्ण स्थान दिया । टोबिन के अनुसार शेयर मार्केट में उतार-चढ़ाव निवेश की दर को बहुत सीमा तक प्रभावित करता है । स्टॉक मार्केट में शेयरों की कीमतें जब बढ़ जाती है तो उनसे यह प्रदर्शित होता है कि फर्मों को बड़ी मात्रा में लाभ अर्जित करने की समभावनाएं हैं । अर्थात् भविष्य में शेयर होल्डर उनमें निवेश से अधिक आय प्राप्त कर सकेंगे । अत: शेयरों की ऊँची कीमतें निवेश अथवा पूँजी स्टॉक में वृद्धि को प्रोत्साहित करती है ।

टोबिन के अनुसार फर्मे अपने निवेश सम्बन्धी निर्णय निम्न अनुपात के आधार पर तय करती है जिसे टोबिन का q कहा जाता है ।

$$q = \frac{\text{स्थापित पूँजी का शेयर मार्केट की कीमतों द्वारा निर्धारित मूल्य}}{\text{स्थापित पूँजी की प्रीतस्थाप न लागत}}$$

q अनुपात के ऊपरी संख्या अर्थव्यवस्था की फर्मो में स्थापित पूँजी का कुल पूंजी का मूल्य है जो शेयर मार्केट में शेयरों की वर्तमान कीमतों द्वारा निर्धारित होता है । q अनुपात की

नीचे की संख्या फर्मो की स्थापित पूँजी की साधनों तथा कच्चा माल की वर्तमान कीमतों पर उत्पादित करने की लागत है ।

टोबिन के अनुसार अर्थव्यवस्था में निदेश इस बात पर निर्भर करता है कि q इकाई से कम है अथवा अधिक । यदि q इकाई से अधिक है तो इसका अर्थ है स्थापित पूँजी का शेयर कीमतों द्वारा निर्धारित मूल्य उसकी वर्तमान में प्रतिस्थापन लागत से अधिक है । अर्थात् पूँजी स्टॉक में वृद्धि अर्थात् अधिक निवेश करना लाभकारी होगा । परिणामस्परूप q के इकाई से अधिक होने

की स्थिति में निवेश प्रोत्साहित होगा और पूँजी स्टॉक में वृद्धि होगी । इसके विपरीत यदि q इकाई से कम है तो स्थापित पूँजी स्टॉक के शेयर बाजारों की कीमतों पर आधारित मूल्य उस पूँजी स्टॉक की प्रतिस्थापन लागत से कम होगी । इस स्थिति में फर्मे अपने पूँजी स्टॉक की घिसाई-पिटाई होने देंगे और इसका प्रतिस्थापन नहीं करेगी ।

टोबिन q अनुपात स्थापित पूँजी से अर्जित वर्तमान लाभों तथा उससे मविष्य में प्राप्त होने बाली प्रत्यशित लाभों पर निर्भर करता है । यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् प्राप्त होने वाली लाम-दर पूँजी की लागत से अधिक है तो स्थापित पूँजी से लाम अर्जित होंगे जो अधिक निवेश को प्रेरित करेगा जिससे फर्मो के शेयरों की कीमतें बढ़ जायेगी, परिणामस्परूप q अनुपात में वृद्धि होगी । इसके विपरीत यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता स्थापित पूँजी की प्रतिस्थापित लागत से कम हो तो स्थापित पूँजी पर हानि होगी जिससे फर्मो के शेयरों की कीमतें कम होगी और उनकी स्थापित पूँजी का मार्केट मूल्य घट जायेगा । जिससे q अनुपात कम हो जायेगा । टोबिन के q अनुपात की श्रेष्ठता यह है कि यह पूँजी निवेश की भविष्य में लाभ-अर्जित करने की प्रत्याशित समभावना तथा वर्तमान में पूँजी से प्राप्त लाभ दोनों का सूचक है । q सिद्धान्त अर्थव्यवस्था में शेयर मार्केट की भूमिका पर प्रकाश डालता है।

बोध प्रश्न-03

1. विनियोग के त्वरक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या किजिए।
2. निवेश के नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त में अभीष्ट पूँजी स्टॉक की अवधारणा को स्पष्ट करें।
3. टोबिन का q सिद्धान्त किस प्रकार अर्थव्यवस्था में शेयर मार्केट की भूमिका पर प्रकाश डालता है।

7.5 विनियोग के निर्धारक तत्व (Factors Determining Investment)

किसी स्वतंत्र उद्यम अर्थव्यवस्था में विनियोजन की प्रेरणा अथवा विनियोग की मात्रा को दो तल निर्धारित करते हैं ।

1. ब्याज की दर
2. पूँजी की सीमान्त उत्पादकता

$I = f(r, e)$ जहाँ I = विनियोजन की मात्रा

r = ब्याज की दर

e = पूँजी की सीमान्त उत्पादकता

कीन्सीय अर्थ में यहां विनियोजन से तात्पर्य निजी विनियोजन की मात्रा से है । अत: केवल निजी विनियोजन का निर्धारण ही पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा ब्याज की दर द्वारा होता है । जहां तक सरकारी विनियोजन का अर्थ है वह उपर्युक्त दोनों तत्वों से स्वतंत्र होता है।

7.5.1 ब्याज की दर

ब्याज की दर विनियोग प्रेरणा का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तल होता है । ब्याज की ऊँची दर विनियोग हतोत्साहित तथा नीची दर विनियोग क्रिया को प्रोत्साहित करती है, परन्तु ब्याज की दर अल्पकाल में लोचरहित होती है तथा यह विनियोजन स्तर को प्रभावित करने में असफल रहती है। साथ ही महान विश्वव्यापी मंदी के दौरान जब ब्याज की अत्यन्त नीची दरें भी विनियोग में वांछित वृद्धि करने में असमर्थ रही हैं तो कीन्स ने विचार व्यक्त किया है कि विनियोग ब्याज दर की अपेक्षा पूँजी की सीमान्त दक्षता से प्रभावित होता है । अन्य शब्दों में विनियोग की मात्रा को प्रभावित करने वाला एक अधिक महत्वपूर्ण घटक पूँजी की सीमान्त उत्पादकता है ।

7.5.2 पूंजी की सीमान्त उत्पादकता

साधारण रूप में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का अर्थ विनियोग से प्राप्त होने वाले लाभ की अनुमानित दर से लिया जाता है । प्रोडिलार्ड के अनुसार 'किसी पूँजीगत साधन की अतिरिक्त या सीमान्त इकाई लगाने से लागत' पर आय की जो अधिकतम दर प्राप्त होने की आशा हो उसे पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कहा जाता है ।

प्रो. कुरिहारा के अनुसार- पूँजी की सीमान्त दक्षता = $\frac{\text{प्रत्याशित आय}}{\text{पूँजी का पूर्तिमूल्य}}$

$$MEC = \frac{Q}{P}$$

प्रो. कुरिहारा के बिचार में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता दो बातों पर निर्भर करती है ।

(1) पूँजीगत साधनों की प्रत्याशित आय

(2) उस पूँजीगत साधन का पूर्ति मूल्य

प्रत्याशित आय का अर्थ किसी नये पूँजीगत साधन से भविष्य में प्राप्त होने वाली अनुमानित आय से होता है । प्रत्येक पूँजीगत साधन का अपना एक जीवनकाल होता है जिसके बाद वह साधन शून्य उत्पादन देता है अर्थात् उस पूँजीगत साधन का जीवनकाल समाप्त हो जाता है । एक पूँजीगत साधन अपने जीवनकाल के विभिन्न वर्षों में जो उत्पादन करता है उसे बेचकर उद्यमी जितनी रकम की आशा करते हैं उन्हें उस पूँजीगत साधनों के जीवनकाल के विभिन्न वर्षों की वार्षिक प्राप्तियां कहा जाता है । यदि हम पूँजीगत साधन की विभिन्न रुपों की शुद्ध वार्षिक प्राप्तियों का अनुमान लगाकर उन्हें जोड़ दे तो हमें प्रत्याशित आय ज्ञात करने के लिए पूँजीगत साधन से एक वर्ष में होने वाली अपेक्षित भौतिक उत्पादकता का अनुमान लगा लिया जाता है और इसमें अपेक्षित कीमत का गुणा कर दिया जाता है ।

पूँजी की सीमान्त दक्षता को निर्धारित करने वाला दूसरा तल पूँजीगत साधन की पूर्ति कीमत, कीमत है जिस पर वह साधन बाजार से खरीदा गया है । कीन्स ने साधन के पूर्ति मूल्य के स्थान पर पुनर्स्थापन लागत का प्रयोग किया है ।

यदि साधन की पुनर्स्थापन लागत = C_r पूर्ति कीमत

प्रत्याशित आय = Q

शुद्ध प्रत्याशित आय = Q - C_r

यदि पूँजीगत साधन का जीवनकाल हम एक वर्ष ही मान लें तथा

MEC = $\frac{\text{शुद्ध प्रत्याशित आय}}{\text{पूर्ति कीमत}}$

$$e = \frac{Q - C_r}{C_r} = \frac{Q}{C_r} - \frac{C_r}{C_r} = \frac{Q}{C_r} - 1$$

$$\frac{Q}{C_r} = 1 + e$$

$$C_r = \frac{Q}{1+e}$$

यदि पूँजीगत साधन का जीवनकाल n हो तो

$$C_r = \frac{Q_1}{1+e} + \frac{Q_2}{(1+e)^2} + \frac{Q_3}{(1+e)^3} + \ldots\ldots\ldots\ldots + \frac{Q_n}{(1+e)^n}$$

जहां r = (Rate of Discount) बट्टे की दर

पूँजी की सीमान्त दक्षता को प्रोकीन्स ने इस प्रकार परिभाषित किया कि यह वह दर है जो किसी पूँजीगत साधन के सम्पूर्ण जीवनकाल की वर्षिक प्रत्याशित आयों के वर्तमान मूल्यों को उस मशीन की पूर्ति कीमत के बराबर कर देती है ।

- **पूँजी की सीमान्त दक्षता को प्रभावित करने वाले तत्व**

पूँजी की सीमान्त दक्षता को प्रभावित करने वाले दो तब हैं अल्पकालीन तत्व तथा दीर्घकालीन तत्व ।

- **अल्पकालीन तत्व**
  - **उपभोग प्रवृत्ति** उपभोग प्रवृति में वृद्धि वस्तुओं की मांग में वृद्धि लाती है परिणामस्वरूप विनियोग की मांग व पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि होती है ।
  - **आय में परिवर्तन** आय में परिवर्तन उपभोग को परिवर्तित करता है फलस्वरूप पूँजी की सीमान्त दक्षता भी परिवर्तित हो जाती है ।
  - **अनुमानित लागत** पूँजीगत साधन की अनुमानित लागत तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है ।
  - **अनुमानित मांग** भविष्य में वस्तु की मांग बढ़ने की सम्भावना निश्चित रूप से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को बढ़ायेगी ।
  - **तरल परिसम्पत्ति** तरल परिसम्पत्ति के भण्डार में वृद्धि विनियोग की प्रेरणा में वृद्धि लायेगी जिससे पूँजी की सीमान्त दक्षता में वृद्धि हो जाती है ।

- **कराधान नीति** ऊँची कर की दर विनियोग को हतोत्साहित करके पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को कम करती है तथा नीची कर की दर विनियोग को प्रोत्साहित करके MEC को अधिक करती है ।

- **दीर्घकालीन तत्व**
  - **जनसंख्या** देश की जनसंख्या बढ़ने से वस्तुओं की मांग बढ़ने के कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है ।
  - **तकनीकी सुधार** उत्पादन की तकनीक में सुधार होने से साधनों की उत्पादकता बढ़ती है, लागत में कमी आती है और पूँजी की सीमान्त क्षमता में वृद्धि होती है ।
  - **नये क्षेत्र का विकास** अर्थव्यवस्था में नये क्षेत्रों का विकास विनियोग के अवसरों को बढ़ाता है जिससे पूँजी की सीमान्त क्षमता में वृद्धि होती है ।
  - **राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति** देश में राजनीतिक स्थिरता, शान्ति, सुरक्षा व संतुलित सामाजिक संरचना पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाती है जिससे पूँजी की सीमान्त क्षमता कम होगी ।

- **दीर्घकाल में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता क्यों गिरती है?**

दीर्घकाल में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की प्रकृति गिरने की होती है किन्तु अर्थशास्त्री इस बात पर एकमत नहीं हैं कि इसका कारण क्या है? कीन्स के अनुसार दीर्घकाल में पूँजी परिसम्पत्तियों के स्टॉक में वृद्धि होती है और उनके प्रतिफल में कमी हो जाती है अर्थात दीर्घकाल में सम्भावित आय गिरती है । दीर्घकाल में पूँजी परिसम्पत्तियां प्रचुर मात्रा में हो जाती है जिससे विनियोग बढ़ता है एवं उत्पादन में वृद्धि होती है फलस्वरूप वस्तुओं की कीमतों में कमी होती है एवं सम्भावित आय या प्रत्याशित प्रतिफल गिरने लगता है । पूँजीगत परिसम्पत्तियों का निर्माण उसी समय तक होता है जब तक आज की दर की तुलना में MEC अधिक होती है ।

यदि बाजार ब्याज दर एवं पूँजी की सीमान्त क्षमता दोनों समान है, ऐसी स्थिति में फर्म के पास अनुकूलतम पूँजी की मात्रा होती है । यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर की तुलना में कम है तो कोई भी फर्म विनियोग हेतु पूँजी उधार नहीं लेगी । MEC एवं ब्याज की दर में होने वाले असंतुलन को पूँजीस्टॉक में परिवर्तन करके दूर किया जा सकता है अथवा ब्याज की दर में परिवर्तन किया जा सकता है । चूँकि पूँजी स्टॉक में बहुत जल्दी परिवर्तन नहीं किया जा सकता, अत: संतुलन की स्थिति प्राप्त करने के लिए ब्याज की दर को आधिक महत्व दिया जाता है ।

- **पूँजी की सीमान्त क्षमता की धारणा की आलोचना**
- **अनिश्चित धारणा** प्रो. हैजलिट के अनुसार कीन्स के पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की व्याख्या में अस्पष्टता एवं अनिश्चितता का बोध होता है ।
- **पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित** प्रो. कीन्स ने अपना पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का विश्लेषण पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित किया है किन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता अवास्तविक है ।

- **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित** प्रो. कीन्स ने MEC की धारणा को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित किया है किन्तु यह एक वास्तविकता है कि अर्थव्यवस्था के अलग-अलग क्षेत्रों के लिए MEC अलग-अलग होती है ।
- **विनियोग मांग वक्र की व्याख्या अपूर्ण** प्रो. सौलनियर के अनुसार कीन्स की व्याख्या में कुल विनियोग मांग अनुसूची की सतुचित व्याख्या नहीं की गई है । इसमें पूँजी को शामिल किया गया परन्तु अन्य तत्वों की व्याख्या नहीं की गई ।

उपर्युक्त आलोचनाओं को दृष्टि में रखकर कहा जा सकता है कि MEC धारणा अस्पष्ट एवं भ्रामक तथा परस्पर विरोधी है ।

बोध प्रश्न -04

1. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में निवेश के निर्धारकों को समझाइए ।
2. पूँजी की सीमान्त उपयोगिता की धारणा की व्याख्या कीजिए । क्या आप इससे सहमत है कि दीर्घकाल में पूँजी की सीमान्त दक्षता गिरती है?
3. कौनसे तत्व पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करते हैं?

7.6 सारांश (Summary)

किसी देश में राष्ट्रीय आय और रोजगार की मात्रा को निर्धारित करने में विनियोग की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है । प्रस्तुत इकाई में विनियोग का अर्थ, विनियोग के महत्व और अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका की व्याख्या की गई है । अर्थव्यव्स्था में विनियोग की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए इसे प्रोत्साहित करने के उपाय भी बताये गये हैं । विनियोग के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त विश्लेषण इकाई में वर्णित है । कीन्स का निवेश सम्बन्धी निवेश, टोबिन का q सिद्धान्त और निवेश का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त भी इस इकाई में समावेशित है । विनियोग को निर्धारित करने वाले महत्वपूर्ण घटक पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर का भी वर्णन इकाई में संग्रहित है ।

7.7 शब्दावली (Glossary)

विनियोग	Investment
स्वायत विनयोग	Autonomous Investment
निजी विनियोग	Private Investment
सार्वजनिक विनियोग	Public Investment
सकल एवं शुद्ध विनियोग	Gross and Net Investment
विनियोग का त्वरक सिद्धान्त	Accelerator Theory of Investment
निवेश का नवप्रतिष्ठित सिद्धान्त	Neo Classical Theory of Investment
पूँजी की सीमान्त उत्पादकता	Marginal Efficiency of Capital
अभिष्ट पूँजी स्टॉक	Desired Capital Stock

7.8 संदर्भ ग्रन्थ (References)

Dwivedi, D.N.; "Macro Economic" Mc Graw Hill, New Delhi (नवीनतम संस्करण)

Shapiro, Edward, "Macro Economic Analysis" Himalaya Publications, New Delhi (नवीनतम संस्करण)

सिंघई, जी.सी एवं मिश्रा जे.पी"समष्टि आर्थिक बिश्लेषण" साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा ।

Ahuja H.L.; "Advanced Macroeconomic Theory" S.Chand & Company Publications, Delhi.

झिंगन एम.एल.; "समष्टि अर्थशास्त्र" कोणार्क पब्लिशर्स प्रा.लिदिल्ली ।

लाल एस.एन.; "समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण" शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद ।

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit - end Questions)

1. विनियोग को निर्धारण करने वाले कारकों और समष्टि अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में निवेश फलन की प्रकृति की विवेचना कीजिए ।
2. निवेश फलन का राष्ट्रीय आय के निर्धारण में क्या स्थान और महत्व है? इस फलन अस्थिरता का क्या कारण है?
3. पूँजी की सीमान्त दक्षता की धारणा अस्पष्ट तथा असंगतिपूर्ण है । व्याख्या कीजिए ।
4. स्वायत तथा प्रेरित निवेश क्या है? कीन्स ने स्वतंत्र निवेश का प्रयोग क्यों आय तथा रोजगार को बढ़ाने के लिए किया?

इकाई - 08

ब्याज के सिद्धान्त-परम्परागत, नव-परम्परागत एवं कीन्सयन (Theories of Interest-Classical Neo-classical and Keynesian)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 ब्याज का अर्थ एवं परिभाषा

- 8.2.1 शुद्ध बयाज
- 8.2.2 सकल ब्याज

8.3 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

- 8.3.1 ब्याज का उपयोग स्थगन अथवा प्रतीक्षा सिद्धान्त
- 8.3.2 आस्ट्रियन ब्याज सिद्धान्त
- 8.3.3 फिशर का अधि मान्यता सिद्धान्त
- 8.3.4 ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
- 8.3.5 ब्याज दर का निर्धारण
- 8.3.6 आलोचनाएं

8.4 का पद प्रतिष्ठित/ उधार देय कोष सिद्धान्त

- 8.4.1 उधार देय कोषों की मांग
- 8.4.2 उधार देय कोषों की पूर्ति
- 8.4.3 ब्याज दर का निर्धारण
- 8.4.4 आलोचनाएं

8.5 कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

- 8.5.1 नकदी अधिमान अथवा मुद्रा की मांग
- 8.5.2 मुद्रा की पूर्ति
- 8.5.3 ब्याज दर का निर्धारण
- 8.5.4 आलोचनाएं

8.6 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

- 8.6.1 आय संतुलन में IS वक्र
- 8.6.2 LM वक्र
- 8.6.3 ब्याज दर का निर्धारण

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 संदर्भ ग्रन्थ
8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- जान सकेंगे कि ब्याज से हमारा क्या अभिप्राय है,
- जान पाएंगे कि पूँजी के उपयोग के बदले ब्याज दिए जाने के क्या कारण है?,
- समझ सकेंगे कि ब्याज निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त कौन से हैं? एवं
- ब्याज निर्धारण को प्रभावित करने वाले विभिन्न तल कौन से हैं ।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की विभिन्न समस्याओं के विश्लेषण में ब्याज का महत्वपूर्ण स्थान है । प्राचीन अर्थशास्त्रियों के समय से आज तक प्राय: सभी अर्थशास्त्रियों ने ब्याज के सम्बन्ध में प्रचुर सिद्धान्तों का निर्माण किया है । फिर भी ब्याज का आर्थिक विश्लेषण मतभेदों से परिपूर्ण रहा है । साधारण भाषा में ब्याज का अभिप्राय उस मौद्रिक भुगतान से होता है जो ऋणदाता को ऋणी से ऋण के प्रयोग के बदले में प्राप्त होता है । प्रस्तुत इकाई में आज का अर्थ एवं विभिन्न परिभाषाएं देने के पश्चात आज सम्बन्धी प्रतिष्ठित, नव प्रतिष्ठित केन्जियन तथा आधुनिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है । उपर्युक्त सिद्धान्तों में से कुछ सिद्धान्त ब्याज के औचित्य अथवा कारणों की व्याख्या करते हैं, जबकि अन्य बाजार से ब्याज निर्धारण के तत्वों की विवेचना करते हैं ।

8.2 ब्याज का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Interest)

ब्याज का अभिप्राय उस मौद्रिक भुगतान से हैं जो ऋणदाता को ऋणी से ऋण के प्रयोग के बदले में प्राप्त होता हैं राष्ट्रीय आय का वह भाग जो पूँजी के प्रयोग के लिए पूँजीपतियों को दिया जाता है, ब्याज कहलाता है । प्रोमार्शल के शब्दों में **"किसी ऋणी द्वारा ऋण के प्रयोग के बदले दिया गया भुगतान ब्याज कहलाता है।**" प्रो. विक्सेल के अनुसार **"ब्याज वह भुगतान है जो पूँजी की उत्पादकता के कारण ऋणी द्वारा पूँजीपति को उसके त्याग के प्रतिफल के रूप में दिया जाता है।"**

प्रो. कीन्स ब्याज को एक विशुद्ध मौद्रिक घटना कहते हैं और कहते हैं **"ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए द्रव्य को तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।"** यह वह कीमत है जो द्रव्य को नकदी के रूप में संचय करने की इच्छा तथा द्रव्य की पूर्ति के मध्य संतुलन स्थापित करती है ।

ब्याज शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है, पहला शुद्ध ब्याज तथा दूसरा कुल ब्याज ।

8.2.1 शुद्ध ब्याज

शुद्ध ब्याज कुल ब्याज का वह भाग होता है जो पूँजीपति को पूँजी के प्रयोग के बदले में दिया जाता है । प्रोचैपमैन के शब्दों में "विशुद्ध आज केवल पूँजी के प्रयोग का भुगतान है । जब पूँजीपति को ऋण न चुकाये जाने का कोई खतरा न हो ओर न उसे उसकी वसूली के सम्बन्ध में कोई झंझट करना पडता है, तब उसे पूँजी के प्रयोग मात्र के बदले में जो भुगतान प्राप्त होता है उसे ही विशुद्ध अथवा वास्तविक ब्याज कहते हैं ।"

8.2.2 सकल ब्याज

वह समस्त भुगतान जो ऋणदाता को ऋणी से मूलधन के अतिरिक्त प्राप्त होता है, कुल ब्याज कहलाता है । इसमें वास्तविक ब्याज के अतिरिक्त जोखिम, असुविधा, प्रबन्ध आदि सेवाओं के पुरस्कार को भी सम्मिलित किया जाता है । कुल ब्याज के प्रमुख तत्व चार हैं ।

1. विशुद्ध ब्याज
2. जोखिम का पुरस्कार मार्शल ने जोखिम दो प्रकार की बताई है (1) व्यावसायिक जोखिम एवं (2) व्यक्तिगत जोखिम । जोखिम जितनी ज्यादा होगी, पूँजीपति इस जोखिम के लिए उतना ही अधिक प्रतिफल ब्याज के रूप में लेना चाहेगा ।
3. ऋणदाता की असुविधाओं का प्रतिफल
4. प्रबन्ध व ऋण व्यवस्था का प्रतिफल

   सकल ब्याज = शुद्ध ब्याज + जोखिम का प्रतिफल + असुविधा का प्रतिफल + प्रबन्ध का प्रतिफल।

बोध प्रश्न - 01

1. 'ब्याज' का अर्थ बताइये।
2. 'शुद्ध ब्याज' तथा 'सकल ब्याज' में अन्तर बताइये।

8.3 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory of Interest)

ब्याज के बारे में सबसे पहले प्रतिपादित सिद्धान्त प्रतिष्ठित सिद्धान्त ही है । ब्याज के बारे में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अलग-अलग मत हैं । यहां हम प्रतिष्ठित सिद्धान्त की व्याख्या दो भागों में करेंगे, प्रथम यह कि ब्याज क्यों उत्पन्न होता है तथा द्वितीय यह है ब्याज की दर का निर्धारण किस प्रकार होता है ।

ब्याज क्यों उत्पन्न होता है, इसके बारे में विभिन्न प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अलग-अलग मत हैं । इसके बारे में कई सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये जिनका विवेचन निम्नलिखित है ।

8.3.1 ब्याज का उपयोग स्थगन अथवा प्रतीक्षा सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सीनियर ने किया । सीनियर के अनुसार ब्याज त्याग का पुरस्कार है पूँजी को बचाने के लिए व्यक्ति को अपने वर्तमान उपभोग का परित्याग करना पड़ता है और इस परित्याग के बदले में व्यक्ति को प्राप्त पुरस्कार ब्याज कहलाता है ।

प्रसिद्ध समाजवादी लेखक कार्ल मार्क्स ने इस सिद्धान्त पर आपत्ति की और बताया की धनी व्यक्तियों को बचत करने में कोई कष्ट अथवा त्याग की आवश्यकता नहीं होती वे तो बिना किसी असुविधा के बचा लेते हैं, अत: ब्याज को त्याग का पुरस्कार कहना उपयुक्त नहीं क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार तो केवल निर्धनों को ही ब्याज दिया जाना चाहिए, धनवानों को नहीं । इस आपत्ति के निवारण हेतु मार्शल ने 'त्याग' शब्द के स्थान पर 'प्रतीक्षा' शब्द का प्रयोग उपयुक्त बताया । उनके अनुसार ब्याज प्रतीक्षा का प्रतिफल है ।

आलोचना

1. धारणा एक पक्षीय है यह केवल बचत के पूर्ति पक्ष पर ध्यान देती है, मांग पर नहीं ।
2. कुछ व्यक्ति बिना किसी त्याग अथवा प्रतीक्षा के भी बचा लेते हैं ।
3. प्रतीक्षा आधुनिक उत्पादन व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण तत्व है, इसे उत्पादन का एक पृथक साधन नहीं समझा जा सकता ।

8.3.2 आस्ट्रियन ब्याज सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1834 में जान रे ने किया इसको बाद में आस्ट्रियन अर्थशास्त्री बाम बाबर्क ने स्पष्ट किया । इस सिद्धान्त के अनुसार लोग भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्व देते हैं एवं ब्याज वर्तमान संतोष को भविष्य में स्थापित करने पर होने वाले घाटे की क्षतिपूर्ति करता है । ब्याज भविष्य के संतोष को वर्तमान के समकक्ष बनाने के लिए दिया जाता है ।

यह सिद्धान्त इस दृष्टि से उपयुक्त कहा जाता है कि यह इस बात की व्याख्या करता है कि ब्याज उत्पादक तथा अनुत्पादक दोनों प्रयोगों में क्यों उत्पन्न होता है क्योंकि दोनों में ही ऋणदाता अपनी वर्तमान आवश्यकताओं को भविष्य के लिए स्थगित करता है ।

आलोचनाएं

(i) सिद्धान्त एक पक्षीय है । इसमें केवल पूर्ति पक्ष पर ही ध्यान दिया गया है जबकि मांग की अवहेलना की गई है ।

(ii) इसमें मनोवैज्ञानिक भावना पर ही अधिक बल दिया गया है ।

(iii) इस धारणा को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता ।

8.3.3 फिशर का अधि मान्यता सिद्धान्त

यह सिद्धान्त इविंग फिशर ने प्रस्तुत किया और उनका सिद्धान्त बाम बाबर्क से मिलता जुलता है । फिशर के अनुसार मनुष्य वर्तमानर को भविष्य की अपेक्षा अधिक महत्व भविष्य की अनिश्चितता के कारण नहीं देता बल्कि ऐसा करना उसकी स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक वरीयता है ।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय को वर्तमान में ही व्यय करने को अधिक व्यग्र रहता है । मनुष्य रूपये बचाकर ऋण देने के लिए तभी प्रेरित होगा जब उसे कोई प्रलोभन दिया जाये और यह प्रलोभन है ब्याज । अत: ब्याज वह कीमत है जो मनुष्य द्वारा अपनी आय को वर्तमान उपभोग पर व्यय करने की व्यग्रता को दूर करने के लिए दी जाती है । अर्थात् ब्याज इसलिए दिया जाता है कि मनुष्य अपनी वर्तमान तुष्टि के लिए अधिमान्यता को त्यागने के लिए राजी हो जाये । फिशर के अनुसार ब्याज समय पसन्दगी की क्षतिपूर्ति है जो आय को वर्तमान में व्यय करने की व्यग्रता पर निर्भर है । समय पसन्दगी निम्न तत्वों पर निर्भर करती है ।

(1) आय का आकार व मात्रा

(2) व्यक्ति का स्वभाव

(3) आय का समयावधि में वितरण

(4) भविष्य में आय की निश्चितता

प्रो. फिशर का समय श्रीयता सिद्धान्त निम्न दो मान्यताओं पर आधारित हैं (1) मुद्रा की क्रय शक्ति में भविष्य में भी स्थिरता रहती है, उसमें समयावधि में कोई परिवर्तन नहीं होता तथा (2) ऋणदाता की परिस्थितियां व स्वभाव वर्तमान तथा भविष्य में समान ही रहते हैं ।

आलोचनाएं

(i) यह सिद्धान्त एक पक्षीय है क्योंकि यह केवल पूँजी के पूर्ति पक्ष पर ही ध्यान देता है और मांग पक्ष की पूर्णत: अवहेलना करता है ।

(ii) यह सिद्धान्त गलत मान्यताओं पर आधारित है । व्यवहारिक जीवन में द्रव्य की क्रय शक्ति व बचतकर्त्ता की परिस्थितियां दोनों में परिवर्तन होता रहता है ।

(iii) बचतकर्त्ताओं की मनोवैज्ञानिक धारणाओं का सही-सही मापन कर ब्याज दर का निर्धारण नहीं किया जा सकता ।

8.3.4 ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन माल्थस, जे.बीसे तथा केरे आदि अर्थशास्त्रियों ने किया जिनका बाद में जर्मन अर्थशास्त्री वान थ्यूनन ने भी समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता द्वारा होता है । साहसी या उत्पादक पूँजी की मांग उसकी सीमान्त उत्पादकता के कारण करते हैं और वे उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ब्याज दे सकते है।

अगर ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से अधिक हो तो उत्पादक को पूँजी के प्रयोग में हानि होगी और वह पूँजी की इकाइयां घटायेगा इससे पूँजी की सीमान्त उत्पत्ति बढ़कर ब्याज की

दर के बराबर हो जायेगी ओर अगर ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पत्ति से कम है तो उत्पादक को अधिक लाभ होने से वह पूँजी की इकाइयों में वृद्धि करेगा और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर के बराबर हो जायेगी । ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त ब्याज निर्धारण के लिए वितरण के लिए वितरण के सामान्य सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रयोग मात्र है ।

आलोचनाए

(i) यह सिद्धान्त केवल पूँजी की मांग पक्ष पर ध्यान देता है जबकि पूर्ति पक्ष की अवहेलना करता है, इसलिए एक पक्षीय सिद्धान्त है । यह सिद्धान्त केवल यह बताता है कि ब्याज पूँजी की उत्पादकता के कारण दिया जाता है, यह नहीं बताता कि बचतकर्त्ता ब्याज क्यों लेता है, इसलिए यह सिद्धान्त अपूर्ण एवं एक पक्षीय है ।

(ii) ब्याज की दर केवल पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर ही निर्भर नहीं करती वरन् अन्य कारणों, पूँजी की पूर्ति, ऋणदाता एवं ऋणी के सम्बन्धों तथा मौद्रिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है।

(iii) दीर्घकालीन सिद्धान्त है, यह ब्याज दर का अल्पकालीन निर्धारण का विश्लेषण करने में असमर्थ है ।

(iv) यह सिद्धान्त पूँजी प्रतियोगिता, पूँजी की पूर्ण गतिशीलता, उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता तथा सीमान्त उत्पादकता को मान सकने जैसी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है ।

(v) पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर निर्धारित नहीं करती बल्कि स्वयं उससे निर्धारित होती है । अर्थात् पूँजी की सीमान्त उत्पादकता स्वयं ब्याज दर पर आश्रित रहती है ।

(vi) यह सिद्धान्त अनुत्पादक कार्यों के लिए दिये गये ऋणों पर ब्याज का विश्लेषण नहीं करता ।

इस सिद्धान्त में उपर्युक्त कमियों के बावजूद भी यह पूँजी के मांग पक्ष की वैज्ञानिक विवेचना करता है तथा आधुनिक सिद्धान्त का एक आधार स्तम्भ है । यह सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि आज की दर कभी ऋणात्मक या शून्य नहीं हो सकती क्योंकि पूँजी की उत्पादकता कभी शून्य होने की सम्भावना नहीं है ।

8.3.5 ब्याज दर का निर्धारण

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर निवेश के लिए बचत की मांग तथा बचत की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है । बाजार में ब्याज की वह दर निर्धारित होगी जिस पर बचत की मांग एवं बचत की पूर्ति संतुलन में है ।

(i) पूँजी की मांग

पूँजी की मांग उन उद्यमियों द्वारा होती है जो पूँजी व्यापार अथवा उद्योग में लगाना चाहते हैं । पूँजी पदार्थों में उत्पादकता का गुण होता है । अर्थात् पूँजी पदार्थों की सहायता से अधिक मात्रा में उत्पादन सम्भव होता है जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त होती है । यदि इस अतिरिक्त आय में से मूल्य ह्रास को घटा दिया जाए तो पूँजी पदार्थों से प्राप्त आय ज्ञात होती है अर्थात् जब कोई नया पूँजी पदार्थ अथवा मशीन स्थापित की जाती है तो इससे फर्म की आय में वृद्धि होती है इस वृद्धि को पूँजी की सीमान्त आय उत्पादकता कहते हैं । ज्यों-ज्यों एक उद्यमकर्त्ता समान प्रकार की अधिक मशीनें लगाता जायेगा, मशीन की सीमान्त आय उत्पादकता घटती जायेगी इसलिए पूँजी की सीमान्त आय उत्पादकता वक्र बांये से दांये की नीचे

की ओर झुका होता है । पूँजी की मांग आज की दर पर निर्भर करती है सूत्र रूप में I = f (r) यह सम्बन्ध ऋणात्मक होता है ।

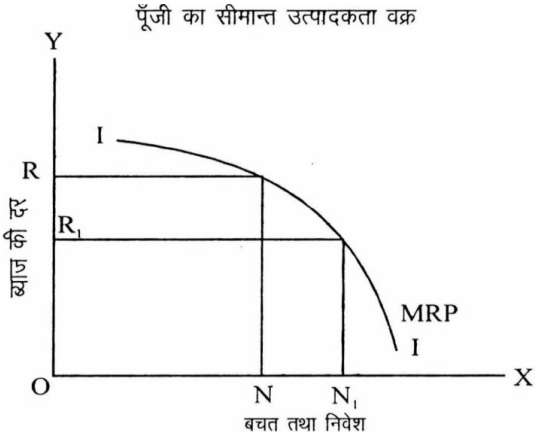

रेखाचित्र 8.1

रेखा चित्र 8.1 में X अक्ष पर बचत एवं निवेश एवं Y अक्ष पर ब्याज की दर को लिया गया है । जब ब्याज की दर OR है तो उद्यमकर्त्ता ON निवेश की मांग करेंगे, अब यदि ब्याज की दर घटकर OR_1 हो जाये तो पूँजी की मांग बढ़कर ON_1 हो जायेगी । इस प्रकार ब्याज की दर कम होने पर पूँजी की मांग में वृद्धि हो जाती है । MRP वक्र को निवेश के लिए बचत का मांग वक्र भी कहते हैं ।

(i) पूँजी की पूर्ति

निवेश के लिए पूँजी की पूर्ति उन लोगों द्वारा की जाती है जो अपनी सारी आय का उपभोग नहीं करते, यदि बचत अधिक करनी है तो ब्याज अधिक देना पड़ेगा क्योंकि जब उपभोक्ता अधिक उपभोग का त्याग करता है तो उसके लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता बढ़ जाती है । अत: कम ब्याज की दर पर कम मात्रा में बचत की पूर्ति होगी और ऊँची बाज की दर पर अधिक मात्रा में बचत की पूर्ति होगी अत: बचत पूर्ति वक्र बांये से दांयें ऊपर की और चढ़ता हुआ होता है जैसा कि रेखाचित्र 8.2 में दिखाया गया है । इस सिद्धान्त में यह माना गया है कि बचतों को संग्रह करके नही रखा जाता तथा बचतकर्त्ता अपनी बचतों को उधार दे देते हैं । बचत अथवा पूँजी की पूर्ति भी ब्याज की दर पर निर्भर होती है । सूत्र रूप में S = f (r)यह सम्बन्ध धनात्मक होता है।

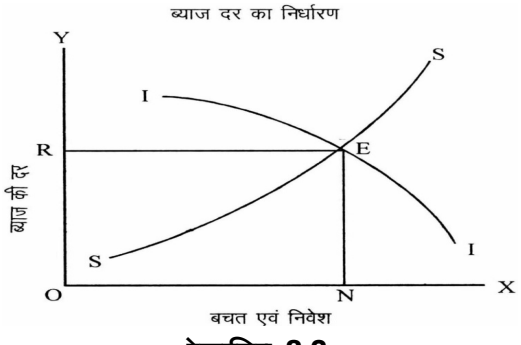

रेखाचित्र 8.2

(i) पूँजी की मांग एवं पूर्ति का संतुलन

ब्याज की दर उस स्तर पर निर्धारित होती है जिस पर निवेश के लिए बचतों की मांग एवं बचतों की पूर्ति एक दूसरे के बराबर होंगे ।

रेखाचित्र 8.2 में II निवेश मांग वक्र है और SS बचतों का पूर्ति वक्र है । निवेश मांग वक्र II तथा बचत पूर्ति वक्र SS एक दूसरे को OR ब्याज की दर पर काटते हैं अत: ब्याज की दर OR निर्धारित होगी । इस संतुलित ब्याज की दर पर बचत की मांग एवं बचत की पूर्ति दोनों ON मात्रा के बराबर है ।

यदि ब्याज की दर OR से अधिक हो तो इस पर बचत की पूर्ति मांग की तुलना में अधिक होगी । परिणामस्वरूप ब्याज की दर घटकर OR पर आ जायेगी । यदि ब्याज की दर OR से कम हो तो निवेश के लिए बचतों की मांग बचतों की पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जायेगी जिससे बचत की मांग करने वालों की परस्पर प्रतियोगिता के कारण ब्याज की दर बढ़कर पुन: OR हो जायेगी ।

8.3.6 आलोचनाएं

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की कई दृष्टियों से आलोचना की गई है । प्रमुख आलोचनाएं निम्नलिखित हैं ।

(1) आय के महत्व की उपेक्षा

बचत और विनियोग में समानता ब्याज दर से नहीं होती बल्कि आय के स्तर में परिवर्तनों द्वारा स्थापित होती है । इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आय के महत्व की उपेक्षा की है । प्रतिष्ठित सिद्धान्त आय स्तर में परिवर्तनों की अवहेलना इसलिए करता है क्योंकि यह साधनों के पूर्ण रोजगार की पूर्वमान्यता कर लेता है, जब साधन पूर्ण रोजगार की अवस्था में होंगे तब उत्पादन तकनीक के स्थिर रहने पर आय स्तर समान ही रहेगा ।

(2) पूर्ण रोजगार की मान्यता गलत

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त में साधनों के पूर्ण रोजगार की पूर्व मान्यता की आलोचना की गई है । प्रोडिलार्ड के अनुसार "ऐसे सिद्धान्त की रूपरेखा में जिसका निर्माण पूर्ण रोजगार की मान्यता पर किया गया है, प्रतीक्षा अथवा उपभोग परित्याग के पुरस्कार के रूप में ब्याज दर की धारणा स्वीकार्य है किन्तु यह धारणा कि साधन पूरी तरह से रोजगार अथवा काम में लगे हुए हैं, आधुनिक संसार की वास्तविक परिस्थितियों की दृष्टि से स्वीकार्य नहीं है ।

(3) निवेश में प्रतिंकलू प्रभावों की उपेक्षा

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार निवेश में वृद्धि उपभोग घटाने से ही सम्भव हो सकती है लेकिन उपभोग में कमी उपभोग पदार्थों के लिए मांग में कमी दर देगी जिससे पूँजी पदार्थों की मांग में कमी होगी ओर इस प्रकार निवेश करने की प्रेरणा पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । उपभोग की इस कमी के निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव की प्रतिष्ठित सिद्धान्त में उपेक्षा की गई है।

(4) बचत अनुसूची का निवेश अनुसूची में स्वतंत्र होने की पूर्व मान्यता गलत

प्रतिष्ठित सिद्धान्त में बचत अनुसूची को निवेश अनुसूची से बिल्कुल स्वतंत्र होना समझा जाता है जो ठीक और यर्थाथ नहीं है ।

(5) निवेश में परिवर्तन से आय में परिवर्तन की उपेक्षा

प्रतिष्ठित सिद्धान्त में निवेश में परिवर्तन से आय में होने वाले परिवर्तन और आय में परिवर्तन से उपभोग एवं बचत में होने वाले पीरवर्तनों की पूर्ण उपेक्षा कर दी है जो सही नहीं है।

(6) ब्याज दर निश्चित रुप से निर्धारित नहीं होती

केन्ज के अनुसार प्रतिष्ठित सिद्धान्त में ब्याज दर निश्चित रूप से निर्धारित नहीं होती। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बचत वक्र की स्थिति आय में परिवर्तन से बदलती रहती है, इस प्रकार यदि हमें आय का स्तर ज्ञात न हो तो ब्याज दर ज्ञात नहीं कर सकते, लेकिन यदि हमें ब्याज दर का पता न हो तो हमें आय का स्तर ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि ब्याज दर में परिवर्तन से निवेश मात्रा बदल जायेगी जो आय के स्तर को प्रभावित करती है । इस प्रकार प्रतिष्ठित सिद्धान्त में ब्याज दर निश्चित रूप से निर्धारित नहीं होती ।

(7) वर्तमान आय से बचत पूंजी का पूर्ति का केवल मात्र स्रोत नहीं हैं

प्रतिष्ठित सिद्धान्त में वर्तमान आय में से बचत को ही केवल निवेश हेतु पूँजी का एक मात्र स्रोत माना गया है जबकि लोगों के पास प्राय: गत वर्षों से संचित किया हुआ धन भी होता है जिसको किसी भी वर्ष में निकाला जा सकता है इसके अतिरिक्त बैंक साख भी निवेश योग्य राशियों का महत्वपूर्ण स्रोत होती है, जिसकी इस सिद्धान्त में पूर्ण रूपेण उपेक्षा की गई है ।

बोध प्रश्न - 02

1. ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त किन दो प्रशनों का उत्तर देने का प्रयास करता है?
2. ब्याज सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त तथा प्रतीक्षा सिद्धान्त के प्रतिपादन कौन थे?
3. प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण कैसे होता है?

8.4 ब्याज का नव प्रतिष्ठित/उधार देय कोष सिद्धान्त (Loanable Fund Theory of Interest or Neo Classical Theory of Interest)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय स्वीडन के अर्थशास्त्री विक्सैल को जाता है जिसे बाद में ओहलिन लिन्डाल, गुनार मिर्डल तथा बेन्ट हेन्सन आदि अर्थशास्त्रियों ने विकसित किया । ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त में ब्याज को केवल बचत तथा विनियोग पर निर्भर बताया परन्तु यह ब्याज निर्धारण में मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनों तत्वों पर ध्यान देता है । इसलिए ब्याज का ऋण देय कोष सिद्धान्त परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त पर एक सुधार है इसी कारण इसे ब्याज का नवीन क्लासिकल सिद्धान्त भी कहते हैं ।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज का प्रतिफल नहीं वरन् उधार देव कोषों के प्रयोग का प्रतिफल है । अर्थात आज दर का निर्धारण उधार देय कोषों की मांग एवं पूर्ति के साम्य से होता है । इस सिद्धान्त में उधार देय कोषों का अभिप्राय उस समस्त मुद्रा पूर्ति अथवा मात्रा से हैं जो बाजार में उधार लेन देन के लिए उपलब्ध है । हैबरलर ने उधार देय कोष के स्थान पर

'विनियोग्य कोष' तथा ओहलिन ने 'साख' शब्द का प्रयोग किया है । इस सिद्धान्त में ब्याज निर्धारण के लिए केवल बचत तथा विनियोग पर ही ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि मुद्रा की मात्रा तथा संग्रह की प्रवृत्ति पर भी ध्यान दिया जाता है । ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां उधार देय कोषों की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों में संतुलन स्थापित हो जाता है ।

8.4.1 उधार देय कोषों का मांग

उधार देय कोषों की मांग केवल निवेश के लिए ही नहीं होती वरन् उपभोग, संचय अथवा सरकार के द्वारा भी होती है । उधार देय कोषों की मांग मुख्य रूप से चार प्रकार की होती है ।

(i) निवेश के लिए ऋण की मांग

(ii) उपयोग के लिए ऋण

(iii) संचय के लिए मांग

(iv) सरकार के लिए मांग

(i) निवेश के लिए ऋण की मांग

निवेश के लिए ऋण की मांग ब्याज दर सापेक्ष होती है । यदि ब्याज की दर कम हो तो निवेश के लिए ऋण योग्य राशियों की मांग बढ़ जायेगी जबकि आज की दर अधिक होने पर निवेश के लिए ऋण योग्य राशियों की मांग कम हो जायेगी । अत: निवेश के लिए ऋण योग्य राशियों के मांग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुका हुआ होगा जैसा कि रेखा चित्र 8.3 में वक्र I द्वारा दर्शाया गया है ।

(ii) उपभोग के लिए ऋण

उपभोग के लिए ऋण वे लोग लेते हैं जो अपनी आय अथवा संचित धन से अधिक उपभोग करना चाहते हैं । उपभोग के लिए ऋण प्राय: टिकाऊ उपभोक्ता पदार्थ जैसे कि गृह निर्माण, मोटर कार, स्कूटर, टेलिविजन आदि क्रय करने के लिए प्राप्त किये जाते हैं । जब कि ब्याज की दरकम होती है तो लोग टिकाऊ उपभोक्ता पदार्थों के लिए अधिक ऋण लेने के लिए प्रेरित होंगे । अत: उपभोग के लिए ऋण की मांग का वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुका हुआ होता है, जैसा कि रेखा चित्र 8.3 में DS द्वारा दिखाया गया है ।

(iii) संचय के लिए मांग

संचय के लिए मुद्रा की मांग का अर्थ है लोग अपने पास अधिक नकद रूपया रखना चाहते हैं । संचय के लिए लोग दूसरों से ऋण नहीं लेते लेकिन अपने पास उपलब्ध ऋण योग्य राशियों को संचय करने के लिए प्रेरित होते हैं । जब ब्याज की दर अधिक होगी तो लोग अपेक्षाकृत अधिक रूपया ऋण पर दे देंगे और कम मात्रा में संचय करेंगे और ब्याज की दर कम होने पर अधिक मात्रा में रूपयों का संचय करेंगे । संचय के लिए मुद्रा की मांग वक्र भी बायें से दायें नीचे को झुका हुआ होगा जैसा कि रेखा चित्र 8.3 में वक्र H द्वारा दिखाया गया है ।

(iv) सरकार के लिए मांग

सरकार की आजकल युद्धकालीन व संकटकालीन परिस्थितियों का मुकाबला करने, विभिन्न विकास कार्यों को कार्यान्वित करने तथा सामाजिक सेवाओं के विस्तार के लिए बड़ी मात्रा में उधार देय कोषों की मांग करती है । यह भी एक प्रकार की विनियोग एवं उपभोग मांग है ।

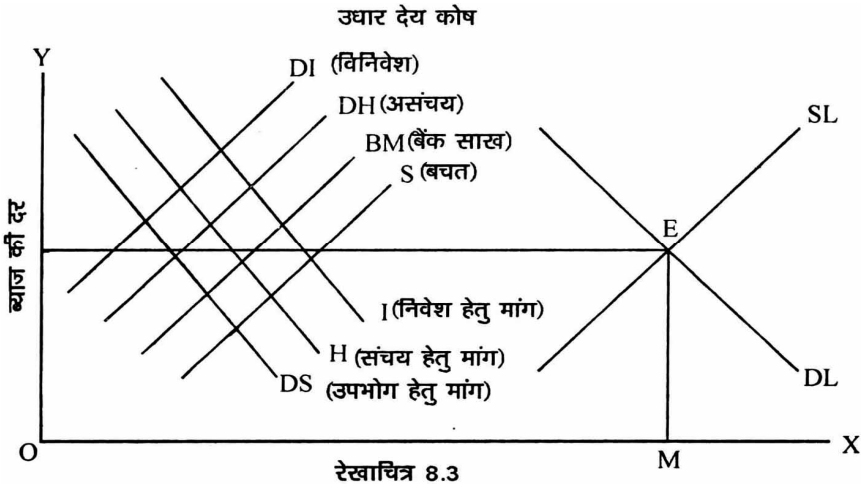

रेखाचित्र 8.3

8.4.2 उधार देय कोषों की पूर्ति

उधार देय योग्य कोषों की पूर्ति के पक्ष के भी कई अंग है जैसे-बचत, असंचय बैंक साख और व्यापार तथा उद्योग में निवेश किये गये रूपये में से निकालना आदि जिनका विवरण निम्नानुसार है ।

- **बचत**

ऋणयोग्य राशियों की पूर्ति का सबसे बड़ा स्रोत बचत है । बचत आय और उपभोग के अन्तर से उत्पन्न होती है । साधारणत: एक अवधि की आय को अगली अवधि में पूरा उपभोग न किया जाये तो बचत का सृजन होता है । बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है । एक निश्चित आय में से अधिक ब्याज की दर पर अधिक बचत की जायेगी और कम ब्याज की दर पर कम बचत की जायेगी । अत: बचत का वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता है जिसे रेखा चित्र 8.3 में S द्वारा दर्शाया गया

- **असंचय**

ऋणदेय कोषों की पूर्ति का दूसरा भाग है-संचित धन से कुछ रूपया निकाल लेना इस क्रिया से पूर्व संचित धन सक्रिय मुद्रा का रूप धारण कर लेता है और ऋण के लिए उपलब्ध हो जाता है इसलिए असंचय से ऋणयोग्य कोषों की पूर्ति बढ़ जाती है । ब्याज की दर बढ़ने के साथ-साथ असंचय की दर भी बढ़ जाती है इसलिए असंचय का वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होता है जिसे रेखा चित्र 8.3 में DH द्वारा दर्शाया गया है ।

- **बैंक साख**

जब बैंक नये ऋण देते हैं या जब वे बॉड का क्रय करते हैं तो इनका भुगतान साख का सृजन करके करते हैं तो यह बैंक साख ऋण योग्य राशियों की पूर्ति को बढ़ाती है । बैंक साख की पूर्ति भी ब्याज की दर पर निर्भर होती है । साधारण तथा बैंक उँची ब्याज दर पर अधिक

मात्रा में ऋण देने को प्रेरित होते हैं । इसलिए बैंक साख का पूर्ति वक्र भी बायें से दायें ऊपर को चढ़ता है जिसे रेखा चित्र 8.3 में BM वक्र द्वारा दर्शाया गया है ।

- **विनिवेश**

विनिवेश का अर्थ है कि उद्योगपतियों द्वारा व्यवसाय में लगे हुए धन को निकाल लेना और ऋण देने के लिए तैयार हो जाना, ऐसा तब होता है जब उद्योगपतियों को पूँजी पर लाभ की दर प्रचलित ब्याज की दर से कम प्राप्त हो रही हो । विनिवेश का वक्र भी ब्याज दर सापेक्ष होता है और ऊपर को बढ़ता हुआ होता है जैसा कि वक्र DI है ।

8.4.3 ब्याज दर का निर्धारण

ऋण देय कोषों की मांग एवं पूर्ति में संतुलन ऋण देय योग्य कोषों की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के संतुलन द्वारा ब्याज की दर निर्धारित होती है । ब्याज की दर उस स्तर पर संतुलन में होगी जहां ऋण योग्य राशियों की मांग की मात्रा व उनकी पूर्ति की मात्रा बराबर होगी । अर्थात् विनियोग + संचय + उपभोग के लिए ऋण + सरकारी मांग = बचत + बैंक साख +असंचित धन + विनिवेश

$$I + H + DS + G = S + BM + DH + DI$$

इस समीकरण का बायां पक्ष ऋण योग्य राशियों की मांग तथा दायां पक्ष ऋण योग्य राशियों की पूर्ति के विभिन्न भागों को दर्शाता है । रेखा चित्र 8.3 में SL वक्र DH, DI, S और BM वक्रों के क्षैतिज जोड़ तथा DL वक्र तीन I,H तथा DS के क्षैतिज जोड़ से प्राप्त होता है । DL तथा SL वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं, इससे हमें संतुलित ब्याज की दर OR प्राप्त होती है ।

ऊपर लिखे गये समीकरण से निम्न समीकरण निकाले जा सकते हैं ।

$$(I\text{-}DI) + (H\text{-}DH) = (S\text{-}DS) + Net\ I + Net\ H = Net\ S + BM$$

अर्थात् संतुलन स्तर पर निबल निवेश + निबल संचय निबल बचतों और बैंक साख के समान होते हैं । यहां यह आवश्यक नहीं है कि दोनों पक्षों के अलग भाग एक दूसरे के समान हो किन्तु संतुलन की अवस्था में अभीष्ट बचत अभीष्ट अथवा पूर्व नियोजित निवेश के बराबर होती है ।

आय में परिवर्तन होने पर बचत और निवेश में परिवर्तन हो जाता है फलस्वरूप ऋणयोग्य राशियों का पूर्ति वक्र SL तथा मांग वक्र DL भी बदल जायेंगे तथा अंत में ब्याज की दर वहां निर्धारित होगी जहां ऋणयोग्य राशिओं की मांग और पूर्ति समान हो तथा पूर्व नियोजित बचत तथा पूर्व नियोजित निवेश परस्पर समान हो ।

8.4.4 आलोचनाएं

यद्यपि उधार देय कोष सिद्धान्त परम्परावादी बचत निवेश सिद्धान्त पर एक सुधार है तथा यह ब्याज निर्धारण का विस्तृत विश्लेषण है फिर भी गार्डनर एक्ले आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएं की है ।

(i) संचय की धारणा गलत

केन्ज के अनुसार इस सिद्धान्त में प्रयुक्त संचय की गलत तथा अयथार्थ है क्योंकि यदि मुद्रा की मात्रा समान रहती है तो मुद्रा संचय में कमी अथवा वृद्धि नहीं हो सकती । चलन में मुद्रा किसी समय किसी व्यक्ति के पास तो अवश्य होगी तथा किसी व्यक्ति द्वारा मुद्रा का अधिक संचय किसी अन्य व्यक्ति द्वारा असंचय से रद्द हो जायेगा ।

(ii) आय स्तर में परिवर्तन की उपेक्षा अनुचित

यह सिद्धान्त भी परम्परावादी सिद्धान्त की भांति आय को स्थिर मानकर बचत की व्याख्या करता है । प्रोकीन्स के अनुसार बचत ब्याज की दर पर निर्भर नहीं करती वरन् आय स्तर पर निर्भर करती हैं आज दर ऊँची होने पर भी यदि आय का स्तर नीचा हो तो बचत नहीं हो सकती ।

(iii) ब्याज दर निर्धारण में सरकार तथा केन्द्रीय बैंक की उपेक्षा

आधुनिक युग में सरकार तथा केन्द्रीय बैंक अपनी मौद्रिक नीति से ब्याज का निर्धारण करते हैं जबकि इस सिद्धान्त में ब्याज दर निर्धारण में मौद्रिक संस्थाओं की भूमिका की उपेक्षा कर दी गई है ।

(iv) **भ्रमपूर्ण मान्यताएं**

इस सिद्धान्त में कई भ्रमपूर्ण मान्यताएं हैं जैसे - पूर्ण रोजगार, पूर्ण प्रतियोगिता आदि।

(v) आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा

परम्परावादी सिद्धान्त की भांति ही इस सिद्धान्त में भी आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा कर दी गई है जो उचित नहीं है । निवेश बढ़ने पर आय में वृद्धि होती है जबकि निवेश घटने पर आय में कमी होती है । वास्तव में ब्याज की दर, विनियोग, आय और बचत सभी परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं ।

(vi) ब्याज पर आनर्धारणीय

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर निर्धारण के लिए उधार देय कोषों की मांग और पूर्ति का ज्ञान होना आवश्यक है । इसके अभाव में आज दर निर्धारित नहीं की जा सकती लेकिन ऋण देय योग्य कोषों की मांग एवं पूर्ति दोनों का ही अनुमान लगाना बहुत मुश्किल है ।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद इस सिद्धान्त को परम्परावादी सिद्धान्त पर सुधार उपयुक्त होगा क्योंकि यह उससे अधिक विस्तृत, व्यावहारिक तथा समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा आधुनिक सिद्धान्त का आधार है ।

बोध प्रश्न - 03

1. ब्याज के नवप्रतिष्ठित सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया?
2. ऋण देय योग्य कोष का अर्थ बताइये।

8.5 कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त (Liquidity Preference Theory of Interest)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो.जे.एमकीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The General Theory of Employment Interest and Money' में किया । कीन्स ब्याज दर को विशुद्ध

मौद्रिक घटना मानते हैं । कीन्स ने ब्याज दर के विषय में प्रतिष्ठित तथा ऋण योग्य राशियों वाले सिद्धान्तों को गलत सिद्ध किया तथा इसके स्थान पर एक सर्वथा नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिसे ब्याज दर का नकदी अधिमान सिद्धान्त कहते हैं । कीन्स का मत है कि "प्रत्येक त्यक्ति द्रव्य को अपने पास तरल रूप में रखना चाहता है ओर ब्याज नकदी अधिमान अथवा द्रव्य की तरलता के परिणाम का पुरस्कार है ।" कीन्स के शब्दों में "ब्याज वह कीमत है जो द्रव्य को तरल रूप में रखने की इच्छा तथा द्रव्य की उपलब्ध पूर्ति के मध्य साम्य स्थापित करती है ।

8.5.1 नकदी अधिमान अथवा मुद्रा की मांग

कीन्स के सिद्धान्त में नकदी/तरलता अधिमान का अर्थ है कि लोग धन को नकद/तरल रूप में अपने पास रखना चाहते हैं । तरलता अधिमान का अर्थ है नकदी की मांग, अत: जब यह कहा जाये कि नकदी अधिमान अधिक है तो इसका अर्थ है कि लोग अपने पास धन को नकद रूप में संचित रखना अधिक पसन्द करते हैं । ब्याज ऐसा पुरस्कार या प्रलोभन है जिसके द्वारा लोगों की तरलता की इच्छा या अधिमान को खरीदा जा सकता है । तरलता अधिमान जितना अधिक होगा, ब्याज की दर भी उतनी ही उँची होगी ।

कीन्स के अनुसार लोगों में द्रव्य को तरल रूप में रखने की मांग निम्नलिखित तीन कारणों से होती है ।

(1) कार्य सम्पादन उद्देश्य

(2) दूरदर्शिता या सतर्कता उद्देश्य

(3) सट्टा उद्देश्य

(1) कार्य सम्पादन उद्देश्य

सभी लोगों को अपनी आवश्यकता की वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदने हेतु नकद मुद्रा की आवश्यकता होती हैं । प्राय: लोगों को आय निश्चित अवधि में मिलती है पर उन्हें दैनिक जीवन में निरन्तर कुछ न कुछ व्यय करते रहने के लिए अपने पास द्रव्य को तरल रूप में रखना पड़ता है । उपभोक्ता दिन प्रतिदिन के उपभोग के लिए तथा व्यवसायी अपने व्यापारिक खर्चों के लिए द्रव्य को तरल रूप में रखना चाहते हैं । यह मांग ब्याज की दर से प्रेरित न होकर लोगों की आय तथा उपभोग व्यय की आदत पर निर्भर करती है ।

(2) दूरदर्शिता या सतर्कता उद्देश्य

प्रत्येक व्यक्ति तथा व्यवसाय की यह प्रवृत्ति होती है कि वह कुछ नकदी अपने पास इसलिए रखे ताकि वह उसके संकट के समय काम आये । व्यक्ति दुर्घटना, बीमारी अथवा बेकारी जैसी दुर्घटनाओं से बचने के लिए द्रव्य को अपने पास तरल रूप में रखना चाहते हैं । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए द्रव्य की मांग ब्याज दर से नहीं बल्कि आय तथा लोगों की स्वाभाविक प्रवृत्ति पर निर्भर करती है।

(3) सट्टा उद्देश्य

द्रव्य को तरल रूप में रखने का तीसरा महत्वपूर्ण कारण लोगों में सट्टा द्वारा आकस्मिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति है । यहां केन्ज का अभिप्राय यह था कि लोग प्राय: अपने

पास नकदी रखना चाहते हैं जिससे कि दे बॉण्डों या प्रतिभूतियों के मार्केट में होने वाले उतार-चढ़ाव से लाभ कमा सके । सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य को तरल रूप में रखने की प्रवृत्ति तथा ब्याज दर में उल्टा सम्बन्ध होता है अर्थात् ब्याज की दर कम होने पर सट्टे के उद्देश्य के लिए द्रव्य की अधिक मात्रा तरल रूप में रखने की प्रवृत्ति होगी तथा इसके विपरीत ब्याज दर ऊँची होने पर द्रव्य की कम मात्रा तरल रूपये रखने की प्रवृत्ति होती है ।

द्रव्य की कुल मांग = द्रव्य की कार्य संपादन मात्रा + द्रव्य की सतर्कता मांग + द्रव्य की सट्टा मांग

यदि हम द्रव्य की कुल मांग को L माने तथा प्रथम दो उद्देश्यों के लिए की जाने वाली मुद्रा मांग को L_1 तथा सट्टा उद्देश्य के लिए की जाने वाली मुद्रा मांग को L_2 माने तो

$L = L_1 (Y) + L_2 (S)$

स्पष्ट है कि L_1 आय का फलन है जबकि L_2 ब्याज सापेक्ष होती है । रेखा चित्र 8.4 में विभिन्न ब्याज दरों पर तरलता अधिमान को दिखाया गया है ।

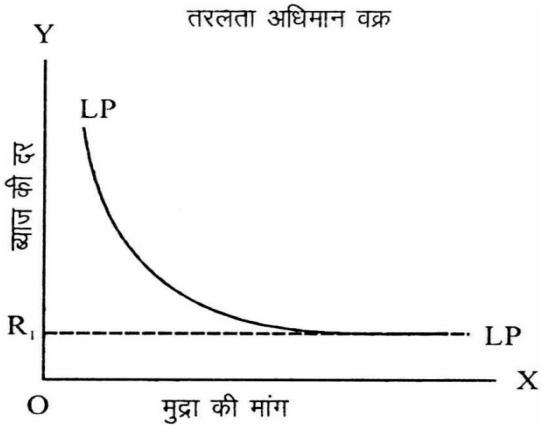

रेखाचित्र 8.4

रेखाचित्र 8.4 के अनुसार जैसे-जैसे ब्याज की दर कम होती है लोगों की मुद्रा मांग बढ़ती जाती है, लेकिन ब्याज की दर गिरते-गिरते ऐसी स्थिति में आ सकती है जहां लोगों की मुद्रा मांग अन्तत हो जाती है । (चित्र में OR_1) केन्ज ने इसे 'तरलता जाल' की संज्ञा दी है ।

8.5.2 मुद्रा की पूर्ति

मुद्रा की कुल पूर्ति का अर्थ किसी समय विशेष में प्राप्त अथवा मुद्रा की कुल मात्रा से हैं जिससे वास्तविक वैद्यानिक मुद्रा तथा साख मुद्रा दोनों का समावेश होता है । अगर हम मुद्रा की कुल पूर्ति को M माने और वैद्यानिक मुद्रा को M_1 तथा साख मुद्रा को M_2 माने तो द्रव्य की कुल पूर्ति

$$M = M_1 + M_2$$

M_1 मात्रा का निर्धारण मुद्रा अधिकारी द्वारा होता है, उस पर ब्याज की दर का प्रभाव नहीं पड़ता पर M_2 पर ब्याज दर का बहुत प्रभाव पड़ता है अर्थात साख मुद्रा की कुल पूर्ति ब्याज दर से बहुत प्रभावित होती है ।

8.5.3 ब्याज दर का निर्धारण

कीन्स के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण द्रव्य की मांग और पूर्ति की शक्तियों के साम्य से होता है । जिस ब्याज दर पर द्रव्य की कुल मांग और द्रव्य की कुल पूर्ति बराबर होंगे, वही ब्याज दर का निर्धारण होगा । यहां कीन्स तथा प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों में भिन्नता है । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार द्रव्य की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है जबकि कीन्स के अनुसार द्रव्य की पूर्ति मुद्रा अधिकारी अथवा साख निर्माणकर्त्ता संस्थाओं के द्वारा निर्गमित मुद्रा मात्रा पर निर्भर करती है । संक्षेप में कीन्स का ब्याज निर्धारण का सिद्धान्त निम्न प्रकार है ।

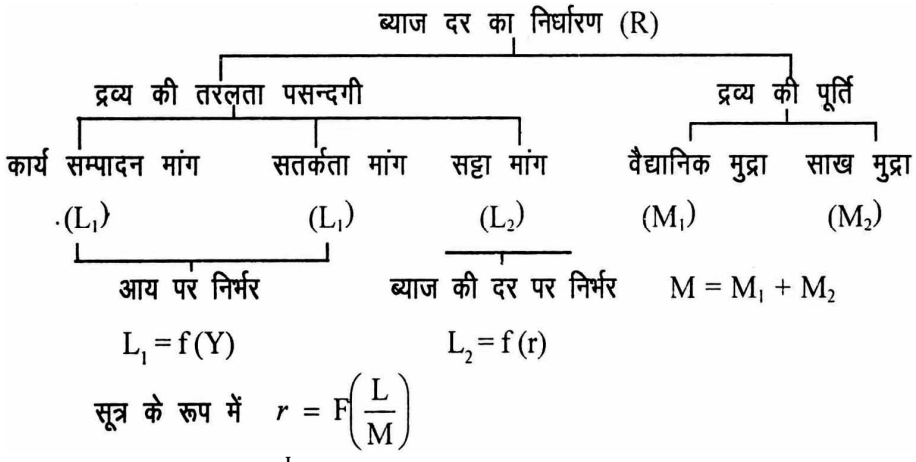

सूत्र के रूप में $r = F(\frac{L}{M})$

कीन्स के अनुसार द्रव्य की कार्य सम्पादन मांग तथा सतर्कता मांग ब्याज दर से प्रभावित न होकर स्वभाव, रूचि व आय पर निर्भर करती है । अत: L_1 अल्पकाल में स्थिर रहती है परन्तु सट्टा उद्देश्य के लिए द्रव्य की मांग ब्याज सापेक्ष होने के कारण ब्याज निर्धारण का एक महत्वपूर्ण घटक हैं कीन्स के शब्दों में ब्याज दर का निर्धारण मांग पक्ष की ओर से L_2 तथा पूर्ति पक्ष की ओर से मुद्रा की मात्र M के साम्य से होता है । जैसा कि निम्न रेखाचित्र 8.5 से स्पष्ट है ।

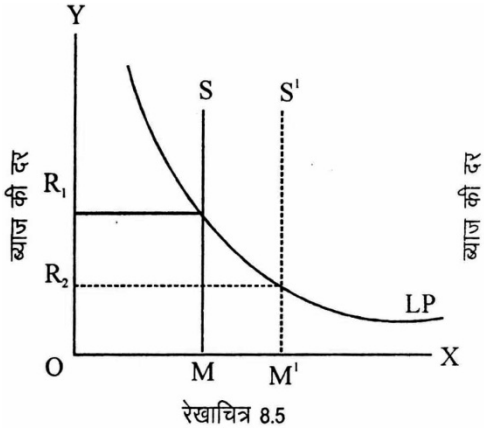

रेखाचित्र 8.5

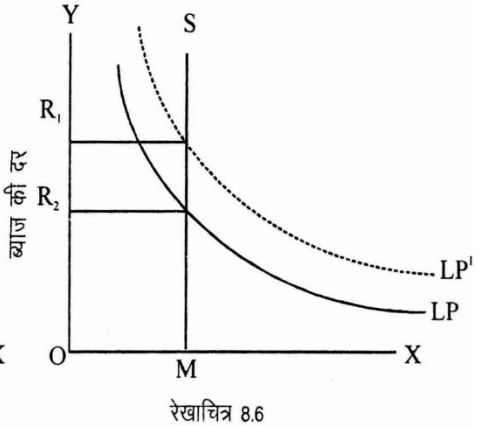

रेखाचित्र 8.6

रेखाचित्र 8.5 से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में मुद्रा मात्रा OM तथा LP नकदी अधिमान वक्र के दिये हुए होने पर OR_1 निर्धारित होती है । नकदी अधिमान वही रहते हुए मुद्रा पूर्ति OM से बढ़कर OM^1 हो जाने पर ब्याज की दर OR_1 से गिरकर OR_2 हो जायेगी, अत: मुद्रा अधिमान समान रहते हुए मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होने पर ब्याज की दर में कमी होगी ।

रेखा चित्र 8.6 में मुद्रा पूर्ति समान रहते हुए नकदी अधिमान में वृद्धि होने पर आज की दर में परिवर्तन दर्शाया गया है । मुद्रा पूर्ति MS रहते हुए नकदी अधिमान जब LP से LP_1 हो जाता है तो ब्याज की दर भी OR_2 से बढ़कर OR_1 हो जायेगी ।

स्पष्ट है कि मुद्रा की मांग अथवा पूर्ति में परिवर्तन होने पर ब्याज की दर में इस प्रकार परिवर्तन होता है कि मुद्रा की मांग और पूर्ति में फिर से संतुलन स्थापित हो जाता हैं संतुलन ब्याज दर स्थापित हो जाने का अर्थ यह है कि देश में लोग उस समय की विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी कुल परिसम्पत्ति का जितना भाग नकदी के रूप में और जितना भाग बॉण्डों, शेयरों आदि के रूप में उस प्रचलित ब्याज दर के होते हुए रखना चाहते हैं । वास्तव में भी उतना ही रखते हैं और जब तक लोगों की आशंकाओ अथवा परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं होता, वही स्थिति बनी रहती है ।

8.5.4 आलोचनाएं

यद्यपि कीन्स ने अपने सिद्धान्त में ब्याज दर से सम्बन्धित कई नवीन विचारों का समावेश किया है फिर भी इस सिद्धान्त में अनेक त्रुटियां होने से इसकी तीव्र आलोचना हुई है । मुख्य आलोचनाएं निम्न

(i) मुद्रा का आशय अस्पष्ट

रॉबर्टसन के अनुसार कीन्स ने मुद्रा का आशय पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया, कहीं उसने मुद्रा में केवल वैद्यानिक मुद्रा को सम्मिलित किया है और कहीं वैद्यानिक मुद्रा के साथ-साथ ऋणपत्रों, बॉण्ड, आदि को भी सम्मिलित किया है ।

(ii) अधूरा सिद्धान्त

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज दर तथा आय स्तर दोनों की चार तत्वों द्वारा निर्धारित होते हैं (1) निवेश मांग वक्र (2) बचत वक्र (3) नकदी अधिमान वक्र (4) मुद्रा पूर्ति, यदि इन चारों तत्वों में से कोई भी तत्व मालूम न हो तो हम संतुलन ब्याज दर ज्ञात नहीं कर सकते किन्तु कीन्स के नकदी अधिमान सिद्धान्त में केवल दो ही तत्वों का समावेश किया है इसलिए यह सिद्धान्त अधूरा है।

(iii) विरोधाभास तथा असंगत

कीन्स के सिद्धान्त में तार्किक विरोधाभास लगता है । कीन्स के सिद्धान्त के अनुसार मंदी के दिनों में नकद अधिमान अधिक होता है जिसके कारण ब्याज की दर अधिक होनी चाहिए जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है, मंदी के दिनों में ब्याज की दर कम होती है ।

(iv) एक पक्षीय एवं अपर्याप्त

कीन्स का ब्याज सिद्धान्त केवल मौद्रिक तत्वों को प्रधानता देता है जबकि ब्याज दर निर्धारण पर मौद्रिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है । कीन्स तरलता पसन्दगी पर अधिक बल देता है जबकि मुद्रा की पूर्ति पर कम, इसलिए यह सिद्धान्त एक पक्षीय प्रतीत होता है ।

(v) सिद्धान्त अल्पकालीन है

कीन्स का ब्याज का सिद्धान्त अल्पकालीन है । यह ब्याज दर निर्धारण के दीर्घकालीन तत्वों की उपेक्षा करता है ।

(vi) संकुचित क्षेत्र

कीन्स का सिद्धान्त केवल मौद्रिक अर्थव्यवस्था में ब्याज निर्धारण की व्याख्या करता है, यह उन अर्थव्यवस्थाओं में ब्याज निर्धारण की व्याख्या नहीं करता जहां मौद्रिक अर्थव्यवस्था न हो तथा वस्तु विनिमय व्यवस्था हो ।

(vii) ऋणी तथा ऋणदाता को पृथक-पृथक मानना अनुपयुक्त

कई बार व्यक्ति अपने ही द्रव्य को अपने व्यवसाय में लगाता है और ऐसी स्थिति में उसे प्राप्त होने वाले लाभ में ब्याज का अंश भी सम्मिलित रहता है, कीन्स ने इस तथ्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया ।

(viii) ब्याज के लिए बचत तथा प्रतीक्षा भी आवश्यक

कीन्स मानता है कि ब्याज केवल तरलता परित्याग का पुरस्कार है जबकि तरलता परित्याग से पहले उपयोग का त्याग एवं प्रतीक्षा भी आवश्यक है । इस प्रकार बिना त्याग एवं प्रतीक्षा के लिए ब्याज दर का निर्धारण नहीं कर सकता ।

(ix) ब्याज दर अनिर्धारणीय

कीन्स के सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर के निर्धारण के लिए सट्टा प्रवृत्ति के लिए द्रव्य की मांग ज्ञात करनी पड़ती है परन्तु सट्टा मांग स्वयं ब्याज दर पर निर्भर है । ब्याज दर के ज्ञान के बिना द्रव्य की सट्टा मांग निर्धारित नहीं की जा सकती । इस प्रकार एक दूसरे के ज्ञान के अभाव में आज दर अनिर्धारणीय हो जाती है ।

(x) भिन्न-भिन्न ब्याज दरों की उपेक्षा

यह सिद्धान्त भिन्न-भिन्न अवधि के लिए दिये गये ऋणों पर ली जाने वाली भिन्न-भिन्न ब्याज दरों का विश्लेषण नहीं करता जबकि व्यवहार में ऐसा ही होता है । इसी प्रकार यह समयावधि निवेशों की भी उपेक्षा करता है जो उपयुक्त नहीं है ।

यद्यपि कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की कई आलोचनाएं हुई है फिर भी इस सिद्धान्त ने आर्थिक विचारकों को नया दृष्टिकोण प्रदान किया और आर्थिक जटिलताओं के विश्लेषण में व्यावहारिकता का सूत्रपात किया । इस प्रकार यह सिद्धान्त इससे पूर्व प्रतिपादित सिद्धान्तों की तुलना में अधिक व्यापक एवं व्यवहारिक विश्लेषण है तथा यह उत्पादक-अनुत्पादक सभी ऋणों के सम्बन्धों में लागू होता है । साथ ही मौद्रिक नीति का व्यवहारिक दृष्टिकोण भी इस सिद्धान्त में निहित है ।

बोध प्रश्न - 04

1. तरलता अधिमान का अर्थ बताइये।
2. मुद्रा की सट्टा मांग किस पर निर्भर करती है?

3.	कीन्स के तरलता अधिमान ब्याज सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज दर का निर्धारण कैसे होता है?

8.6 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Interest)

आधुनिक अर्थशास्त्री जैसे कि जेआरहिक्स तथा ए.एचहैन्सन के अनुसार प्रतिष्ठित तथा ऋण योग्य राशियों के सिद्धान्त ब्याज निर्धारण का निश्चित समाधान प्रस्तुत नहीं करते और न ही कीन्स का तरलता अधिमान सिद्धान्त ब्याज निर्धारण का पूर्ण सिद्धान्त है । अत: उन्होंने कीन्स तथा प्रतिष्ठित सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करके ब्याज का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जिसे ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त कहा जाता है । कीन्स के नकदी अधिमान सिद्धान्त की सहायता से एक वक्र जिसे LM वक्र कहा जाता है । व्युत्पादित करते हैं तथा प्रतिष्ठित सिद्धान्त से एक वक्र जिसे IS वक्र कहा जाता है, व्युत्पादित करते हैं और फिर दो वक्रों IS तथा LM की परस्पर प्रतिच्छेदन द्वारा आज दर के निर्धारण की व्याख्या करते हैं । इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर की संतुलन दर वह दर है जहां अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्र तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों एक साथ संतुलन में होते हैं ।

8.6.1 आय संतुलन में IS वक्र

IS वक्र वास्तविक क्षेत्र में विभिन्न आय मात्राओं तथा विभिन्न ब्याज दरों के ऐसे संयोगों को प्रदर्शित करने वाला वक्र है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर कुल वास्तविक बचत (S) कुल वास्तविक विनियोग (I) के बराबर है । दूसरे शब्दों में IS वक्र आय तथा ब्याज दरों के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर कुल बचतों एवं कुल निवेशों में संतुलन होता है । IS वक्र अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्र में संतुलन का द्योतक है ।

रेखा चित्र 8.7 (A) में विभिन्न आय स्तरों पर बचतों तथा विभिन्न ब्याज दरों पर विनियोगों के ऐसे संयोगों को दर्शाया गया है जहां पर बचतों तथा निवेश में संतुलन है जबकि रेखा चित्र 8.7 (B) में IS वक्र आय की विभिन्न मात्राओं द्वारा ब्याज की विभिन्न दरों के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर बचतों व विनियोगों में संतुलन है ।

बचत तथा विनियोग (करोड़ रू.)

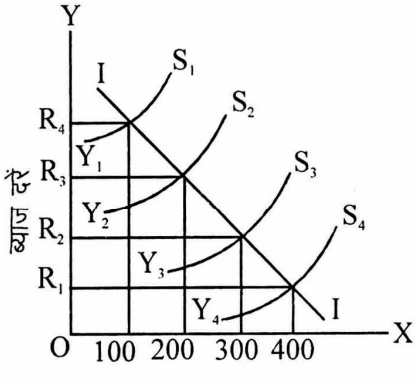

रेखाचित्र 8.7 A

आय स्तर (करोड़ रू.)

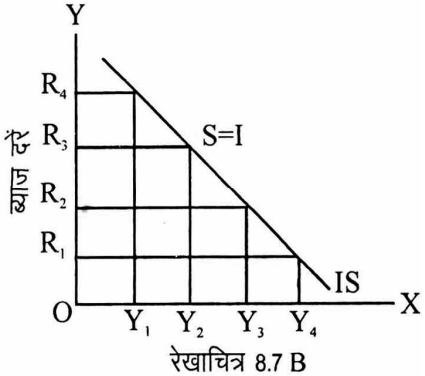

रेखाचित्र 8.7 B

IS वक्र ऊपर दायें से नीचे बायीं ओर गिरता हुआ होता है इसकी स्थिति बचत व विनियोग वक्रों की स्थिति के अनुसार बदलती रहती है ।

8.6.2 LM वक्र

LM वक्र अर्थव्यवस्था के मौद्रिक क्षेत्र में संतुलन का द्योतक होता है यह वक्र अर्थव्यवस्था में आय (Y) तथा ब्याज दरों (R) के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर मुद्रा की तरलता पसन्दगी कुल मांग (L) तथा मुद्रा पूर्ति (M) में समानता होती है । अर्थात् LM वक्र ब्याज दरों तथा आय के उन विभिन्न संयोगों को बताता है जिन पर मुद्रा की कुल मांग एवं मुद्रा की कुल पूर्ति में संतुलन होता है ।

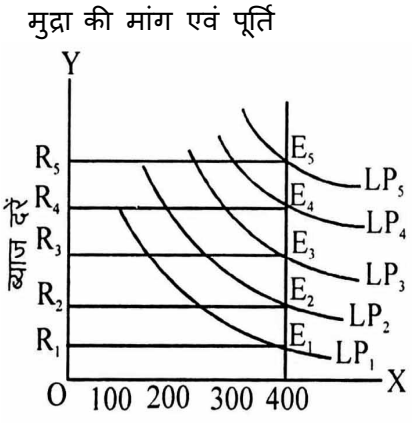

रेखाचित्र 8.8 (A)

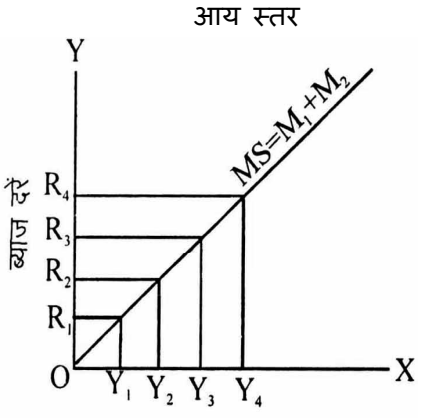

रेखाचित्र 8.8 B

रेखा चित्र 8.8 (A) में Y_1 आय स्तर पर R_1 ब्याज की वह संयोग दर है जिस पर मुद्रा की मांग एवं पूर्ति E_1 बिन्दु पर (L=M) बराबर है । रेखा चित्र 8.8 (B) में LM वक्र बताया गया है जो विभिन्न ब्याज दरों तथा विभिन्न आय स्तरों के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है जिन पर मुद्रा की कुल मांग और मुद्रा की कुल पूर्ति (MS) बराबर है । यह LM वक्र अर्थव्यवस्था में मौद्रिक क्षेत्र में संतुलन को व्यक्त करता है । LM वक्र दायें से बायें उपर की ओर उठता हुआ होता है क्योंकि जैसे-जैसे आय स्तर में वृद्धि होती है लोगों की तरलता पसन्दगी बढ़ती जाती है ।

8.6.3 ब्याज दर का निर्धारण

ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां IS तथा LM वक्र एक दूसरे को काटते हैं । IS तथा LM वक्र के इस परिच्छेदन बिन्दु पर ब्याज दर तथा आय का वह संयोग ज्ञात होता है जहां मौद्रिक क्षेत्र के साथ-साथ वास्तविक क्षेत्र भी संतुलन में होता है । अर्थात् IS तथा LM वक्र के परिच्छेदन बिन्दु पर अर्थव्यवस्था में ब्याज दर तथा आय का वह स्तर ज्ञात हो जाता है जिस पर आय संतुलन तथा मौद्रिक संतुलन दोनों शर्तें एक साथ पूरी हो जाती है ।

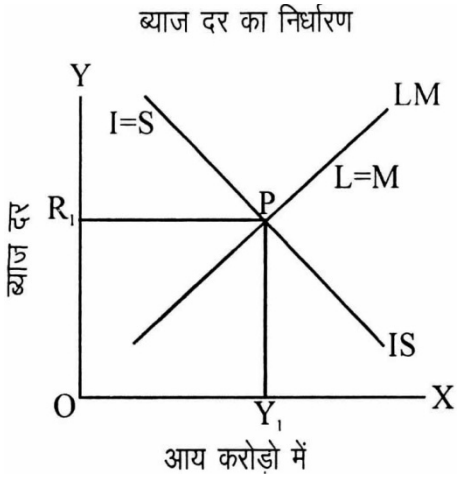

रेखाचित्र 8.9

रेखा चित्र 8.8 में IS तथा LM वक्र के परिच्छेदन बिन्दु P के अनुसार ब्याज दर OR_1 का निर्धारण होता है । स्पष्ट है कि जहां कीन्स के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त में केवल मौद्रिक संतुलन शर्त तथा प्रतिष्ठित सिद्धान्त में केवल वास्तविक क्षेत्र में संतुलन की शर्त पूरी होती है, वहां प्रोहिक्स हेन्सन के इस सिद्धान्त में दोनों शर्तें एक साथ पूरी होती है ।

IS तथा LM वक्र में परिवर्तन होने पर संतुलन बिन्दु में परिवर्तन होता है तथा साथ ही संतुलन ब्याज दर तथा आय स्तर में भी परिवर्तन हो जाता है ।

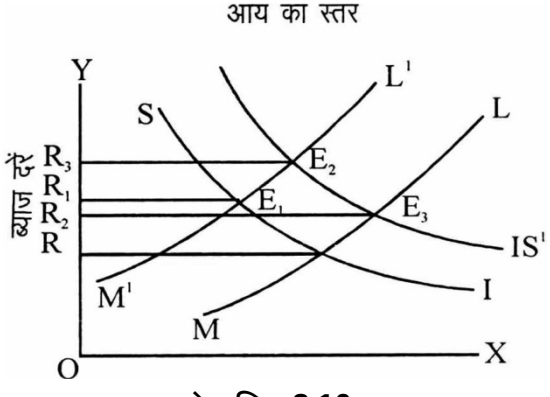

रेखाचित्र 8.10

रेखा चित्र 8.10 के अनुसार IS तथा LM वक्रों के परिच्छेदन बिन्दु E के अनुसार OR ब्याज दर का निर्धारण होता है । इस संतुलन बिन्दु पर माना कि तरलता अधिमान वक्र विवर्तित होकर L^1M^1 हो जाता है तो संतुलन बिन्दु E से E^1 तथा ब्याज दर OR से OR_1 हो जायेगी । तरलता अधिमान समान रहते हुए IS वक्र के विवर्तित होने पर संतुलन बिन्दु E_3 होगा तथा IS तथा LM दोनों ही वक्रों के विवर्तित होने पर नया संतुलन बिन्दु E_2 होगा । इस प्रकार बाजार में वास्तविक क्षेत्र अथवा मौद्रिक क्षेत्र में परिवर्तन होने पर ब्याज दर में भी परिवर्तन होगा ।

स्पष्ट है कि आधुनिक सिद्धान्त में निवेश मांग सूची, बचत मांग सूची, मुद्रा की मात्रा तथा द्रव्य की तरलता पसन्दगी चारों तत्वों का एकीकरण कर ब्याज की दर तथा आय के संदर्भ

में उनका समन्वित विश्लेषण किया जाता है । उपर्युक्त चार तत्वों में से किसी में भी परिवर्तन होने पर ब्याज की दर में परिवर्तन होता है ।

बोध प्रश्न - 05

1. ब्याज के दर के आधुनिक सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तकों के नाम बताइये।
2. IS वक्र क्या दर्शाता है?
3. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त में LM वक्र क्या दर्शाता है?

8.7 सारांश (Summary)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में ब्याज निर्धारण के सम्बन्ध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों में सदैव मतभेद रहे है । प्रतिष्ठित संप्रदाय ब्याज को बचत व निवेश की दृष्टि से निर्धारित करते हैं जबकि कीन्स ब्याज का कारण तरलता अधिमान के त्याग को मानते हैं । आधुनिक अर्थशास्त्री ब्याज निर्धारण में चार तत्वों को सम्मिलित करते हैं - निवेश अनुसूची, बचत अनुसूची, तरलता अधिमान (मुद्रा की मांग) तथा मुद्रा की पूर्ति । इन चारों तत्वों द्वारा वे IS तथा LM वक्र की व्युत्पत्ति करते हैं उनके प्रतिच्छेदन द्वारा अर्थव्यवस्था में ब्याज का निर्धारण होता है ।

8.8 शब्दावली (Glossary)

जोखिम (Risk)	ऋण योग्य कोष (Loanable Fund)
सकल ब्याज (Gross Investment)	LM वक्र (IS Curve)
शुद्ध ब्याज (Net Investment)	LM वक्र (LM Curve)
समय अधिमान (Time Preference)	बाजार बयाज दर (Market Rate of Interest)
सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity)	प्रतिष्ठित संप्रदाय (Classical School)
प्रतीक्षा (Waiting)	नव प्रतिष्ठित संप्रदाय (Non-Classical School)
सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity)	विनिवेश (Disinvestment)
सट्टा मांग (Speculative Demand)	असंचय (Dishoarding)
तरलता अधिमान(Liquidity Preference)	तरलता जाल (Liquidity Trap)
विनिमय उद्देश्य (Transaction Motive)	नियोजित निवेश (Planned Investment)
सावधानी उद्देश्य (Precautionary Motive)	

8.9 संदर्भ ग्रन्थ (References)

एच. एल. आहूजा, समष्टि अर्थशास्त्र ।

लक्षीनारायण नाभूरामका, समष्टि अर्थशास्त्र ।

बी.एल. ओझा, समष्टि अर्थशास्त्र ।

एम.एल. झिंगन, समष्टि अर्थशास्त्र ।

8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. ब्याज के क्लासिकल सिद्धान्त का सचित्र वर्णन कीजिए तथा इसकी कमियों पर प्रकाश डालिए।
2. ब्याज के उधार देय कोष सिद्धाप्त की सचित्र व्याख्या कीजिए ।
3. कीन्स के ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त में मुद्रा की मांग के विभिन्न उद्देश्यों का स्पष्टीकरण कीजिए ।
4. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ।

इकाई -09

गुणक एवं त्वरक सिद्धान्त

(Multiplier and Acceleration Principles)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 गुणक का सिद्धान्त

- 9.2.1 गुणक का अर्थ एवं कार्यकरण
- 9.2.2 गुणक की मान्यताएं
- 9.2.3 गुणक के रिसाव
- 9.2.4 गुणक की आलोचनाएं
- 9.2.5 गुणक का महत्व
- 9.2.6 प्रावैगिक गुणक

9.3 त्वरक का सिद्धान्त

- 9.3.1 त्वरक का अर्थ एवं मान्यताएं
- 9.3.2 त्वरक का कार्यकरण
- 9.3.3 त्वरक सिद्धान्त की आलोचनाएं

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 संदर्भ मन्थ

9.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- निवेश गुणक के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- निवेश गुणक के वास्तविक कार्यकरण से आप अवगत हो जाएंगे ।
- निवेश गुणक के महत्व व सीमाओं से परिचित हो जाएंगे ।
- त्वरक सिद्धान्त के अर्थ व कार्यकरण से परिचित हो सकेंगे ।
- त्वरक सिद्धान्त के महत्व व सीमाओं से परिचित हो जाएंगे ।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक अर्थव्यवस्था में आय एवं रोजगार के सिद्धान्त को समझने में गुणक के सिद्धान्त का बहुत महत्व है । गुणक आय एवं रोजगार के क्षेत्र के अतिरिक्त भी अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्रों में कार्य करता है । 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वीडन के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नट

विकसेल ने मुद्रा स्फीति सिद्धान्त में गुणक सिद्धान्त का प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से किया था । 1903 में जर्मन अर्थशास्त्री जोहेनसेन ने गुणक त्वरक प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन किया । परन्तु यह व्याख्याएं अनेक प्रकार से अपूर्ण थी । 1929 में गुणक सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीन्स द्वारा की गई । 1931 में प्रसिद्ध अंग्रेज अर्थशास्त्री काहन ने गुणक सिद्धान्त का विकास किया । 1936 में कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक General Theory में गुणक सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की । वास्तव में कीन्स का गुणक सिद्धान्त काहन के गुणक सिद्धान्त से भिन्न है क्योंकि काहन का गुणक रोजगार गुणक है जबकि कीन्स का गुणक निवेश गुणक या आय गुणक कहा जाता है । यह गुणक स्वायत निवेश के आय पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या करता है । प्रस्तुत इकाई में उसी निवेश गुणक की व्याख्या की जाएगी ।

इसी प्रकार अर्थव्यवस्था में प्रेरित निवेश के आय पर पढ़ने वाले प्रभावों की व्याख्या त्वरक द्वारा की जाती है । टीएनकार्वर प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने 1903 में उपयोग और शुद्ध निवेश में सम्बन्ध को समझा । परन्तु एफ्टेट्पियन ने इस सिद्धान्त का 1909 में विस्तार से विश्लेषण किया । त्वरण सिद्धान्त नाम अर्थशास्त्र में पहली बार 1917 में जेएमक्लार्क ने किया। इसको आगे हिक्स सैम्यूलसन और गुडविन ने इसका व्यापार चक्रों के विश्लेषण में प्रयोग किया ।प्रस्तुत प्रस्तुत अध्याय में उपयोग व प्रेरित निवेश के आय पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या हेतु प्रयुक्त त्वरण सिद्धान्त के अर्थ व कार्यकरण का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा ।

9.2 गुणक का सिद्धान्त

9.2.1 कीन्स के निवेश गुणक का अर्थ एवं कार्यकरण

यदि Y=f (x) है तो गणितीय दृष्टि से x में Δx के बराबर छोटा सा परिवर्तन होने पर भी Y में ΔY परिवर्तन Δx के बराबर न होकर उससे कई गुना अधिक होता है उसे ही गुणक प्रभाव कहते है। इसी सिद्धान्त का अर्थशास्त्र में नितेश और आय के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट करने हेतु कीन्स ने प्रयोग किया था जिसे निवेश गुणक का नाम दिया । कीन्स के अनुसार जब निवेश बढ़ाया जाता है तो उससे आय में कई गुना वृद्धि होती है । उदाहरण के लिए यदि स्वायत निवेश में ΔI=50 करोड़ की वृद्धि की जाती है तो इसके परिणामस्वरूप आय में वृद्धि ΔY=50 करोड़ से अधिक होगी और यदि यह वृद्धि 200 करोड़ होती है तो गुणक का मूल्य 4 होगा ।

अर्थात गुणक = $\frac{\text{आय में परिवर्तन}}{\text{निवेश में परिवर्तन}}$

$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{200}{50} = 4$

वास्तव में कीन्स का गुणक के उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC) निर्भर करता है । जिसे निम्न प्रक्रिया से समझा जा सकता है ।

Y = C + I ..... (1)

Y= कुल आय C = उपभोग I = निवेश

C = a + bY..... (2) 0<MPC<1

C = स्थिर उपभोग b = सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC), उपर्युक्त समीकरण (1) के चरों में परिवर्तन होने पर इसे निम्न प्रकार लिखा जा सकता है ।

$\Delta Y = \Delta C + \Delta I$..... (3)

आय निर्धारण के कीन्स के सरल मॉडल के अन्तर्गत निवेश एक स्वतंत्र चर है एवं इसमें परिवर्तन करना एक स्वतंत्र नीतिगत निर्णय है जबकि उपभोग को आय पर निर्भर चर माना जाता है जिसे हमने समीकरण (2) के रूप में व्यक्त किया है: समीकरण (2) में a एक स्थिर राशि (Constant) है तथा b सीमान्त उपभोग प्रवृति (MPC) को व्यक्त करता है जिसे स्थिर मान लिया गया है । इस प्रकार उपभोग में परिवर्तन तभी सम्भव है जब आय में परिवर्तन हो। सूत्र के रूप में-

$\Delta C = b + \Delta Y$..... (4)

समीकरण 4 से ΔC का मूल्य समीकरण 3 में रखने पर

$\Delta Y = b\Delta\Delta + \Delta I$ (5)..... (5)

$\Delta Y - b\Delta\Delta = \Delta I$ (6).....। (6)

$\Delta Y (1-b) = \Delta I$

$$\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{1-b} = \frac{1}{1-MPC}$$

चूँकि MPC + MPS = 1 होता है तथा 1-MPC = MPS

इसलिए $\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{MPC}$ हो सकता है ।

इससे स्पष्ट है कि गुणक का परिमाण सीमान्त बचत प्रवृत्ति का व्युत्कम होता है । माना कि MPC = .5 है तो

$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{1-MPC} = \frac{1}{1-.5} = 2$ होगा

सारणी 9.।

गुणक एवं सीमान्त उपभोग प्रवृति में सम्बन्ध

MPC	$K = \frac{1}{1-MPC}$	MPS	$K = \frac{1}{MPC}$
0	$K = \frac{1}{1-MPC} = 1$	1	$K = \frac{1}{1} = 1$
.5	$K = \frac{1}{1-.5} = 2$	.5	$K = \frac{1}{.5} = 2$

.75	$K = \frac{1}{1-.75} = 4$	.25	$K = \frac{1}{.25} = 4$
1	$K = \frac{1}{1-1} = \infty$	0	$K = \frac{1}{0} = \infty$

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि गुणक का आकार MPC के साथ सीधे तौर पर परिवर्तित होता है । क्योंकि MPC शून्य से अधिक और एक से कम होती है । (0< MPC <1) इसलिए गुणक का न्यूनतम मूल्य 1 तथा अधिकतम मूल्य अन्नत होता है (1< K< ∞)। यदि गुणक एक है तो इसका अर्थ है कि MPC=0 है अर्थात आय में हुई समस्त वृद्धि बचायी जा रही है । इसके विपरीत MPC=1 होने का अर्थ है कि समस्त आय व्यय की जा रही है परन्तु ऐसा नहीं होता है अत: वास्तविकता में MPC शब्द और एक के बीच रहती है परिणामस्वरूप गुणक भी एक और अन्तत के बीच रहता है । इसी प्रकार गुणक और MPS के मध्य विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है । सारणी 9.1 में इसे दर्शाया गया है ।

गुणक का कार्यकरण (Working of Multiplier)

गुणक आगे (Forward) तथा पीछे (Backward) दोनों ओर कार्य करता है । यदि निवेश में वृद्धि की जाती है तो आय में वृद्धि का अग्रिम क्रम चलता है तथा निदेश में कमी होने पर आय में कमी का अर्थात् पीछे का क्रम चलता है ।

माना कि MPC = 0.5 है।

निदेश में वृद्धि ΔI=100 करोड़ रूपये प्रारम्भ में निवेश की 100 करोड़ रूपये की वृद्धि से उत्पादन तथा आय में भी 100 करोड़ रूपये की वृद्धि हो जाएगी । इस नई आय का 0.5 गुना ($b\Delta c$) उपयोग वस्तुओं पर व्याय किया जाएगा जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन तथा आय में उतनी ही मात्रा में वृद्धि हो जाएगी और यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक आय व व्यय में वृद्धि समाप्त न हो जाए अर्थात गुणक प्रभाव शून्य न हो जाए ।

MPC = 0.5 होने पर $K=\frac{1}{1-0.5}=\frac{1}{0.5}$=2 होगा अर्थात आय में कुल वृद्धि 100x2=200 करोड़ रूपये होगी । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को नीचे दी गई सारणी में स्पष्ट किया गया है ।

सारणी संख्या 9.2

गुणक का क्रम विश्लेषण

गुणक का क्रम विश्लेषण

चक्र	निवेश में वृद्धि	आय में वृद्धि	उपभोग में वृद्धि	बचत में वृद्धि
Round	ΔI	ΔY	$\Delta C = b\Delta Y\ (b = .5)$	$\Delta S = \Delta Y - \Delta C$
1.	100 करोड़ रूपये	100	$.5 \times 100 = 50$	50
2.		50	$.5 \times 50 = 25$	25
3.		25	$.5 \times 25 = 12.5$	12.5
4.		12.5	$.5 \times 12.5 = 6.25$	6.25
. . . 0		. . . 0	. . . 0	. . . 0
अन्नत	100 करोड़ रूपये	200 करोड़ रूपये	100 करोड़ रूपये	100 करोड़ रूपये

उपर्युक्त विश्लेषण गुणक के आगे के कार्यकरण से सम्बन्धित है । पर यदि निवेश बढ़ने के स्थान पर घटाया जाए तो गुणक पीछे की ओर कार्य करता है । निवेश में कमी होने से आय और उत्पादन तथा उपभोग में संचयी कमी होती रहेगी जब तक कि समस्त आय में कमी निदेश में कमी का गुणक नही रह जाता । उपर्युक्त उदाहरण में यदि ΔI=-100 करोड़ हो तथा K = 2 हो तो आय में कमी -200 करोड़ होगी । गुणक की क्रिया को रेखाचित्र 9.1 द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है ।

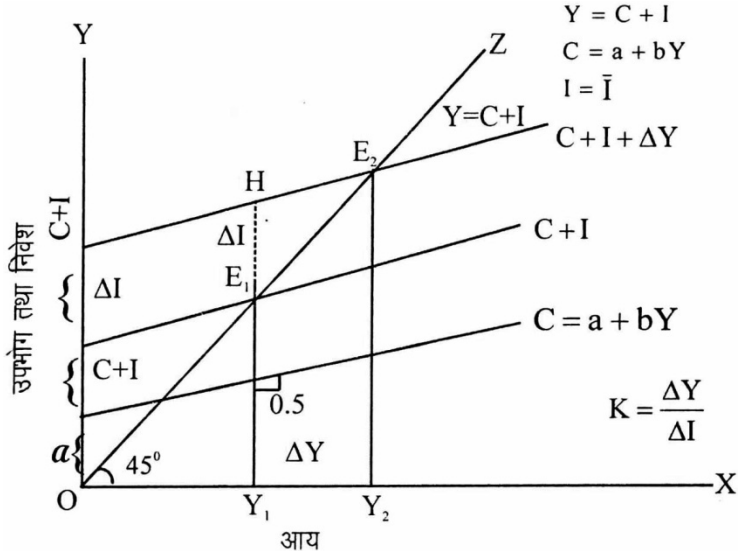

गुणक प्रभाव

रेखाचित्र 9.1

उपर्युक्त चित्र में OZ रेखा साम्य रेखा है जो स्पष्ट करती है कि इसके प्रत्येक बिन्दु पर कुल आय और कुल व्यय बराबर होते हैं यह 45^0 कोण की रेखा है जो Y = C+1 को व्यक्त करती है। C रेखा उपभोग रेखा है जो .5 उपभोग प्रवृत्ति मानते हुई खींची गई है ।

समस्त मांग वक्र या कुल व्यय रेखा C+I है जो C रेखा के समान ढाल वाली है क्योंकि I आय का फलन नहीं है । यह वक्र साम्य रेखा E_1 बिन्दु पर काटता है जिससे OY_1 साम्य आय निर्धारित होती है । अब यदि E_1H के बराबर निदेश में वृद्धि ΔI की जाती है तो समस्त मांग वक्र या कुल व्यय रेखा ऊपर की ओर परिवर्तित हो जाती है तथा नया साम्य E_2 पर होता है जहां OY_2 आय निर्धारित होती है । अत: निवेश की वृद्धि E_1H होने पर आय की वृद्धि $\Delta Y = Y_1Y_2$ होती है जो कि E_1H की दुगनी होती है ।

$$\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{Y_1Y_2}{E_1H} = 2$$

गुणक का बचत और निवेश कीं रेखाकृति द्वारा निरुपण- गुणक की गणना MPC के साथ MPS के आधार पर भी की जा सकती है । अत: इसे बचत और निवेश की रेखाचित्र 9.2 के द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है ।

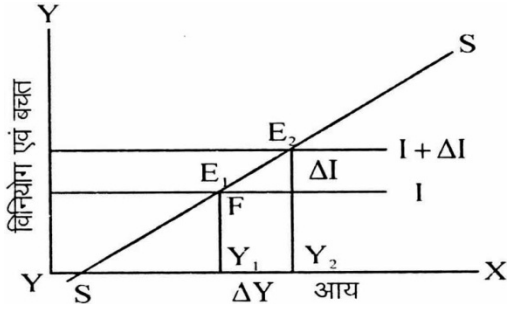

गुणक प्रभाव

रेखाचित्र 9.2

$$K = \frac{Y_1Y_2}{FE_2} = 2$$

चित्र में .5 ढाल का बचत वक्र SS बनाया गया है । प्रारम्भ E_1 बिन्दु पर S=1 साम्य अवस्था है जहां Y_1 आय निर्धारित होती है । निवेश ΔI वृद्धि करने पर नया निवेश वक्र I + ΔI बचत वक्र को E_2 पर काटता है जहां नयी साम्य आय Y_2 होती है । आय की यह वृद्धि गुणक प्रभाव के कारण होती है जिसका मूल्य 2 है ।

9.2.2 गुणक की मान्यताएं

1. अर्थव्यवस्था में स्वायत निवेश में एक ही बार वृद्धि होती है ।
2. प्रेरित निवेश के प्रमाद का अध्ययन नहीं किया जाता है ।
3. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार नहीं पाया जाता तभी आय में वृद्धि होना सम्भव है ।
4. उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति MPC स्थिर रहती है ।
5. उपभोग चालू आय का फलन है । C = a +by
6. निवेश में वृद्धि तथा आय में वृद्धि के मध्य समय अन्तराल नहीं होता।
7. अर्थव्यवस्था में उपभोग वस्तुओं तथा साधनों की शर्ते सदैव उपलब्ध रहती है ।

8. अर्थव्यवस्था में विदेशी क्षेत्र शामिल नहीं है ।
9. गुणक के रिसाव अनुपस्थित होते हैं ।
10. वस्तुओं और साधनों की कीमतें स्थिर रहती है ।

9.2.3 (Leakages of Multiplier)

गुणक प्रक्रिया के कार्यकरण की प्रमुख मान्यता है कि उसमें रिसावों की अनुपस्थिति होनी चाहिए । परन्तु वास्तविकता में अर्थव्यवस्था में कई प्रकार के रिसाव होते हैं जो निवेश में वृद्धि के कारण आय प्रभाव में होने वाली वृद्धि की प्रक्रिया को धीमा दुर्बल और अन्त में समाप्त कर देते हैं । गुणक के मुख्य रिसाव निम्न हैं ।

1. बचतों में वृद्धि

अर्थव्यवस्था में बचत की सीमान्त प्रवृति MPS जितनी अधिक होगी गुणक का मूल्य उतना ही कम होगा । उपभोग प्रवृति कम होने का अर्थ है उतना ही भाग बचत के रूप में आय सरिता में से रिस जाता है परिणामस्वरूप आय वृद्धि उतनी ही कम होगी । उदाहरण के लिए यदि MPS = .4 हो तो गुणक =25 होगा तथा MPS =5 हो तो गुणक का मूल्य = 2 होगा जो पहले की तुलना में कम है ।

2. तरलता पसन्दगी

यदि किसी देश की जनता सौदा, सतर्कता अथश सट्टा उद्देश्यों हेतु नकदी अपने पास रखना चाहती है तो निवेश वृद्धि से हुई आय वृद्धि का अधिकांश भाग जनता उपभोग पर व्यय करने की बजाय अपने पास निष्क्रिय नकदी कोषों के रूप में एकत्रित कर लेगी जिसके परिणामस्वरूप आय वृद्धि में रिसाव उत्पन्न होगा ।

3. विशुद्ध आयातों में वृद्धि

किसी भी राष्ट्र द्वारा आयातों पर किया व्यय राष्ट्रीय आय में रिसाव का कार्य करता है । यह तक के मूल्य को कम कर देता है । उदाहरणार्थ यदि MPC=.8 है तथा MPm = .2 है तो ऐसी अवस्था में गुणक का मूल्य K= $\frac{1}{1-.8}$ = 5 होने के स्थान पर K_1 = $\frac{1}{1-0.8+0.2} = \frac{1}{1-0.6}$ = 2.5 होगा।

4. **ऋण भुगतान**

देश में बढ़ी हुई आय का अधिकांश भाग उपभोग में प्रयोग किया जाए तभी आय प्रवाह बना रहेगा । परन्तु यदि आय वृद्धि का अधिकांश भाग बैंक अथवा सरकारी ऋण चुकाने में व्यव कर दिया जाए तो उपभोग व्यय में उतनी ही कमी हो जायेगी परिणामस्वरूप आय प्रवाह में रिसाव उत्पन्न होगा और गुणक प्रक्रिया उतनी ही कमजोर होगी ।

5. बैंकों में निष्क्रिय जमाओं में वृद्धि

देश में बैंकिंग संस्थाओं द्वारा प्राप्त जमाओं का जितना अधिक भाग निष्क्रिय निक्षेपों के रूप में अप्रयुक्त रहेगा उतना ही गुणक रिसाव अधिक होने से आय वृद्धि की गीत धीमी होगी।

6. पुराने स्टॉक तथा प्रतिभूतियों का क्रय

यदि बढ़ी हुई आय का उपभोग जनता पुराने स्टॉक तथा प्रतिभूतियों में व्यय करेगी तो शुद्ध निवेश की मात्रा कम होती जायेगी जिसके कारण आय में वृद्धि कम होगी और आय प्रवाह में रिसाव उत्पन्न होगा ।

7. कीमत स्फीति

जब अर्थव्यवस्था में कीमत स्तर में वृद्धि होती है तो उपभोक्ता वस्तुएं महंगी हो जाती है परिणामस्वरूप उपभोग व्यय में वृद्धि के बावजूद उपभोग की मात्रा में वृद्धि नहीं हो पाती और आय की क्रयशक्ति कम हो जाती है । इस कारण गुणक प्रभाव क्षीण हो जाता है ।

8. करारोपण

यदि सरकार कर की दर में वृद्धि करती है तथा नये-नये कर लगाती है तो जनता के पास व्यय योग्य आय बहुत कम रह जाती है परिणामस्वरूप उपभोग व्यय कम होता है और आय प्रवाह में रिसाव उत्तपन्न हो जाता है ।

9. अवितरित लाभ

जब संयुक्त पूँजी कम्पनी अपनी बढ़ी हुई लाभ आय को अंशदाताओं में वितरित नहीं करते है तो अंशदाताओं की आय में कमी हो जाती है और गुणक का प्रभाव उतना ही कम हो जाता है ।

10. देश में अल्परोजगार की अवस्था

जब देश में उत्पादन साधनों में बेरोजगारी की अवस्था होती है तभी आय में वृद्धि की श्रृंखला कार्य करती है । जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की ओर बढ़ती है गुणक का प्रभाव क्षीण होता जाता

9.2.4 गुणक को आलोचनाएं

कई अर्थशास्त्रियों ने गुणक की आलोचनाएं की है । प्रोहार्ट ने इसे पांचबा बेकार पहिया माना है। स्टिंगलर ने इसे कीन्स के सिद्धान्त का अस्पष्टतम भाग (Fuggiest part of Keynes Theory) माना है जबकि जलिट ने इसे ऐसा निरर्थक उपकरण बताया है जिसे पाठ्यक्रम से निकाल देना चाहिए । विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा की गई आलोचनाएं निम्न प्रकार है ।

1. पुनरुक्ति मात्र है

प्रोहेबरलर ने इसे पुनरूक्ति मात्र बताया है । $K = \frac{1}{1-MPC}$ गुणांक केवल गणितीय गुणक है और सही व्यवहार गुणक नहीं है जो उस व्यवहार आदर्श पर आधारित हो जो उपभोग तथा आय की बीच प्रामाण्य सम्बन्ध स्थापित करता हो । यह एक प्रकार से सीमान्त उपभोग प्रवृति का ही दूसरा रूप है ।

2. स्थैतिक विश्लेषण

कीन्स का गुणक सिद्धान्त तात्कालिक प्रक्रिया है जिसमें समय पश्चता नहीं है । यह कालरहित स्थैतिक संतुलन विश्लेषण है जिसमें आय पर जिसमें आय पर निदेश में परिवर्तन का कुल प्रभाव तात्कालिक होता है जिससे उपभोग वस्तुओं का उत्पादन उसी समय होता है और उपभोग व्यय भी तुरन्त कर दिया जाता है । परन्तु वास्तविकता में ऐसा नहीं होता है क्योंकि आय वृद्धि और उपभोग कय में समय अन्तराल अवश्य होता है । अत: यह विश्लेषण अवास्तविक है ।

3. त्वरण सिद्धान्त की उपेक्षा

कीन्स के गुणक सिद्धान्त को हिक्स और सैम्यूलसन ने यह कहकर एक पक्षीय बताया है कि गुणक उपभोग व्यय के माध्यम से निवेश के आय पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करता है पर उपभोग के निवेश पर पड़ने वाले प्रभाव (त्वरण) की उपेक्षा करता है । जबकि वास्तविकता में आय एवं रोजगार में होने वाले उतार-चढ़ावों की व्याख्या करने में गुणक व त्वरक दोनों की पारस्परिक प्रक्रिया महत्वपूर्ण हे ।

4. उपभोग तथा आय में सम्बन्ध जटिल है

कीन्स ने उपभोग तथा आय के मध्य सरल रेखीय सम्बन्ध बताया है जबकि व्यावसायिक अनुभाव यह बताते हैं कि दोनों के बीच का सम्बथ अरेखीय तथा जटिल है । गार्डनर एक्ले के अनुसार यह सम्बन्ध केवल चालू आय से चालू उपभोग तक ही नहीं जाता बल्कि इसमें भूतकाल की तथा प्रत्याशित आय और उपभोग की कुछ जटिल औसत भी पाई जाती है । आय के अतिरिक्त अन्य साधन भी हे जिन पर विचार करना चाहिए ।

5. उपभोग की सीमान्त प्रवृति (MPC) स्थिर नहा होती

गुणक सिद्धान्त MPC को स्थिर मानते हुए विश्लेषण प्रस्तुत करता है जो कि अव्यावहारिक है । गोर्डन ने कहा है कि कीन्स ने MPC को अत्यधिक महत्व दिया है जबकि इसको यथार्थ बनाने के लिए सीमान्त उपभोग प्रवृति के स्थान पर सीमान्त व्यय प्रवृति शब्द का प्रयोग लिया जाए । इसके अतिरिक्त गत्यात्मक अर्थअवस्था में MCP के स्थिर रहने की सम्भावना नहीं होती । अत: इसे स्थिर मान लिया जाए तो यह सम्भव नहीं कि 'निजी निवेश अथवा सार्वजीनक व्यव में दी हुई वृद्धि के सम्बन्ध में गुणक प्रभावों का बहुत ठीक पूर्व कथन किया जा सके ।

6. बन्द अर्थव्यवक्या की मान्यता अव्यावहारिक है

कीन्स के गुणक सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता है कि बन्द अर्थव्यवस्था होती है अर्थात अर्थव्यवस्था में विदेशी क्षेत्र नहीं होता जबकि वर्तमान में प्रत्येक देश में विदेशों से आदाता एवं निर्यात होता है । अर्थात भूमण्डलीकरण के युग में प्रत्येक अर्थव्यवस्था खुली अर्थव्यवस्था होती है । अत: यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है ।

9.2.5 गुणक का महत्व

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने गुणक सिद्धान्त की कदु आलोचना की है परन्तु फिर भी इस अवधारणा का अर्थशास्त्र की विभिन्न समस्याओं जैसे निवेश, उपभोग, आय, उत्पादन एवं

रोजगार में परिवर्तन की व्यख्या करने में महत्वपूर्ण स्थान है । गुणक के महत्व को निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है ।

1. **निवेश** गुणक सिद्धान्त आय तथा रोजगार के सिद्धान्त में निवेश के महत्व को दर्शाता है । अल्पकाल में उपभोग फलन स्थिर रहता है इसलिये निवेश दर में उतार-चढाव आते हैं ।
2. **व्यापार चक्रों की व्याख्या करने में सहायक** गुणक सिद्धान्त आय तथा रोजगार में परिवर्तन को विभिन्न अश्स्थाओ पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है । जब निवेश में कमी होती है तो क्रमश: आय-रोजगार-उपभोग व्यय में संचयी कमी प्रारम्भ होती है परिणामस्वरूप सुस्ती और अन्तत: मन्दी आती है । इसके विपरीत निवेश में वृद्धि - आय में वृद्धि - रोजगार - उपभोग व्यय आदि में वृद्धि की क्षृंखला प्रारम्भ हो जाती है जिससे पुनरूत्थान तथा तेजी की स्थिति आती है । इस प्रकार गुणक व्यापार चक्र विश्लेषण का महत्वपूर्ण औजार है।
3. **बचत एवं निवेश में साम्य स्थापित करने में उपयोगी** गुणक बचत तथा निवेश में साम्य स्थापित करने में सहायक होता है । यदि बचत तथा निवेश में असमानता हो अर्थात (I > S) निवेश बचत से अधिक हो तो अधिक निवेश आय में वृद्धि की क्षृंखला उत्पन्न करता है जिससे आय बढ़ती है और बचत बढ़ती है । यह तब तक चलता है जब तक कि I=S नहीं हो जाता । इसके विपरीत होने पर भी (S > I) यही प्रक्रिया विपरीत दिशा में होती है ।
4. **पूर्ण रोजगार की नीति निर्धारित करने में महत्वपूर्ण** राज्य निर्णय करता है कि बेरोजगारी दूर करने और पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने के लिए अर्थव्यस्था में कितना निवेश किया जाए । निवेश की प्रारम्भिक वृद्धि से आय तथा रोजगार में निवेश का K गुना होती है अत: उसके आधार पर निवेश की मात्रा निर्धारित की जा सकती है । जैसे यदि (वर्तमान आय) Y_0 = 600 करोड़ रूपये हो तो (पूर्ण रोजगार पर आय) Y_f = 1000 करोड़ रूपये, K=4 हो तो ΔY = 1000-600=400 करोड़ रूपये की वांछित वृद्धि के लिये निवेश में वृद्धि $\Delta I = \Delta Y = k = \frac{400}{4}$ = 100 करोड़ रूपये आवश्यक होगी । यदि एक ही समय 100 करोड़ रूपये निदेश करना सम्भव नहीं हो तो इसके लिए राज्य को यह पता चल जाता है कि लगातार निवेश करते रहना पड़ेगा जब तक कि पूर्ण रोजगार न आ जाये ।
5. **घाटे का वित्त प्रबन्धन** गुणक सिद्धान्त घाटे के वित्त प्रबन्ध के महत्व को स्पष्ट करता है । मन्दी की अवस्था में, ब्याज दर घटाने की सस्ती मुद्रा नीति सहायक नहीं होती क्योंकि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता MEC इतनी कम होती है कि ब्याज की नीची दर निजी निवेश को प्रोत्साहन देने में असमर्थ रहती है । ऐसी स्थिति में घाटे के बजट द्वारा बढ़ा हुआ सार्वजनिक व्यय पूँजी निवेश में K गुणा करके आय तथा रोजगार बढ़ाने में सहायक होता है ।
6. **सार्वजनिक निवेश के महत्व को स्पष्ट करने में सहायक** सार्वजनिक निवेश लोक कल्याणकारी कार्य जैसे निर्माण कार्य, राहत कार्य आदि से सम्बन्धित होता है । यह स्वायत और लाभ से मुक्त होता है । अत: स्फीतिकारी और अवस्फीतिककारी दबावों पर काबू पाने और पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने तथा बनाये रखने में यह अधिक शक्तिशाली होता है ।

7. **व्यापार चक्रों पर नियंत्रण करने हेतु** गुणक व्यापार चक्रों की व्याख्या करने के साथ-साथ उनके नियंत्रण के उपाय भी सुझाता है । जब अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव होते हैं तो निवेश में कमी करके गुणक के पीछे की ओर कार्यकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की जा सकती है और इस प्रकार आय तथा रोजगार में कमी की जा सकती है । इसके विपरीत मन्दी की स्थिति में निवेश में वृद्धि गुणक प्रक्रिया के माध्यम से आय तथा रोजगार के स्तर को बढ़ाने में सहायक हो सकता है ।

9.2.6 गुणक के प्रकार (प्रावैगिक गुणक)

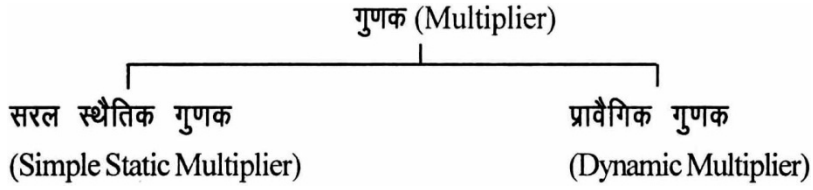

सरल स्थैतिक गुणक

(i) निवेश गुणक

(ii) सरकारी व्यय गुणक

(iii) कर गुणक

(iv) संतुलित बजट गुणक

(v) विदेशी व्यापार गुणक

प्रावैगिक गुणक (Dynamic Multiplier)

कीन्स सरल स्थैतिक गुणक इस मान्यता पर आधारित है कि निवेश और आय में परिवर्तन तात्कालिक होता है अर्थात इसमें समय पश्चता (Time lag) नहीं होता है । अत: यह स्थैतिक विश्लेषण है परन्तु व्यावहारिक अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि ऐसा नहीं होता क्यों कि आय की प्राप्ति और आय का उपभोग वस्तुओं पर व्यय होने तथा उपभोग वस्तुओं को उत्पादित करने के बीच समय पश्चता हमेशा पायी जाती है । प्रावैगिक गुणक आय प्रजनन में समय पश्चता (Time lag) से सम्बंधित है । गुणक प्रक्रिया को पूरा करने के लिये आय और उपभोग में समायोजनों की क्षृंखला में कई अवधियां (Periods) लग सकती है । इस प्रक्रिया को नीचे दी गई सारणी संख्या 9.3 द्वारा दर्शाया गया है ।

सारणी 9.3

प्रावैगिक गुणक

Period (समय)	ΔI निवेश में वृद्धि	$\Delta C = b\Delta Y$ उपभोग में वृद्धि	ΔYआय में वृद्धि
0	0	0	0
1	100 करोड़ रूपये	0	100
2	-	50	100+50
3	-	25	100+50+25
:	-	:	:

:	-	:	:
T	-	100	200

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक निवेश में वृद्धि ΔI = 100 करोड़ रूपये तथा MPC (b) = .5 होने पर आय की वृद्धि 200 करोड़ रूपये होने में लगभग 17 Periods लग जाएंगे । इसे समीकरण के रूप में इस प्रकार समझाया जा सकता है ।

$\Delta Y = \Delta I + \Delta Ib + b^2\Delta I + b^3\Delta I + \ldots\ldots\ldots + b^{n+1}\Delta I$

$\Delta Y = \Delta Y_1 + \Delta Y_2 + \Delta Y_3 + \Delta Y_4 + \ldots\ldots\ldots$

ΔY = 100+.5^1x100+.5^2 x100+.5^3 x 100+.....5^{16} x 100

17वें Period का मूल्य .001 करोड़ रूपये होगा ।

$\Delta Y = \frac{1-.5^{16}}{1-.5}$ x 100= चूँकि यह ज्यामितीय श्रेणी है अत: इसका सूत्र होगा $\frac{1}{1-.5}$ x100=200 करोड़ रूपये ।

समयावधि उपभोग चक्र

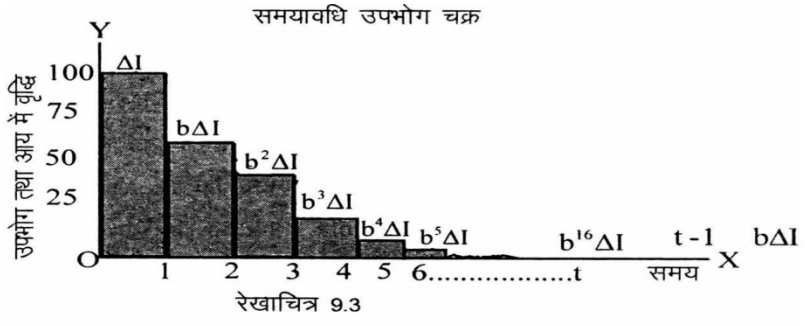

रेखाचित्र 9.3

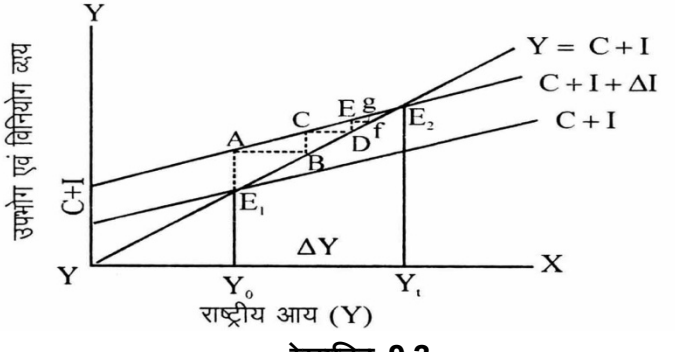

रेखाचित्र 9.3

उपर्युक्त रेखाचित्र स्पष्ट करता है कि प्रारम्भिक वृद्धि 100 करोड़ रूपये होने पर आय में वृद्धि की शृंखला प्रारम्भ होती है जो धीरे-धीरे कम होकर अन्तत: शून्य में विलीन हो जाती है ।

9.3 त्वरक का सिद्धान्त (Accelerator Principle)

निदेश दो प्रकार का होता है - स्वायत निवेश तथा प्रेरित निवेश। स्वायत निवेश में वृद्धि से उपभोग में वृद्धि होती है तथा इससे आय में वृद्धि होती है । इसे गुणक प्रभाव कहा

जाता है । परन्तु इसके विपरीत उपभोग में वृद्धि या आय की वृद्धि भी निदेश में वृद्धि को प्रेरित कर सकती है । इसे त्वरक प्रभाव कहते हैं । उपभोग तथा शुद्ध निवेश के बीच सम्बन्ध को सर्वप्रथम टी.एनकर्वर ने 1903 में समझा था। 1909 में एपटेलियन ने इसका विस्तार से विश्लेषण किया । अमेरिकी अर्थशास्त्री जे.एमक्लार्क ने 1917 में इसे त्वरक सिद्धान्त नाम दिया।

9.3.1 त्वरक का अर्थ एवं मान्यताएं

त्वरण सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि पूँजीगत वस्तुओं की मांग व्युत्पन्न मांग होती है अर्थात उपभोग वस्तुओं की मांग बढ़ने पर उनको उत्पादित करने वाली पूँजीगत वस्तुओं की मांग भी बढ़ती है । तरण सिद्धान्त उपभोग वस्तुओं की मांग परिवर्तन के कारण पूँजीगत वस्तुओं के निवेश में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या करता है ।

प्रो. कुरिहारा के अनुसार "त्वरक गुणांक प्रेरित निवेश और उपभोग व्यय में प्रारम्भिक परिवर्तन के बीच अनुपात है ।"

सूत्र के रूप में $\beta = \frac{\Delta I_t}{\Delta C_t}$

जहां:

$\Delta I_t = \beta \Delta C_t$

ΔI_t - निवेश में शुद्ध परिवर्तन (t समय तत्व को द्योतक है)

ΔC_t - उपभोग में शुद्ध परिवर्तन है ।

यदि 10 करोड़ रूपये के उपभोग व्यय में वृद्धि ΔC_t से 30 करोड़ रूपये के निदेश व्यय बढ़ते हैं तो $\beta = \frac{30}{10}$ =3 त्वरक होगा ।

त्वरण सिद्धान्त के इस रूप की हिक्स ने विस्तार से व्याख्या की है । उनके अनुसार पूँजीगत वस्तुओं के लिए मांग केबल उपभोग वस्तुओं से व्युत्पन्न नहीं होती बल्कि कुल उत्पादन की मांग से प्रत्यक्ष रूप से जुडी होती है। It is the ratio of induced investment to changes in output it calls forth

यदि कुल उत्पादन या राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो प्रेरित निवेश में भी वृद्धि होगी। यदि राष्ट्रीय आय में कमी होगी तो प्रेरित निवेश ऋणात्मक होगा और राष्ट्रीय आय स्थिर रहने पर प्रेरित निवेश शून्य होगा ।

सूत्र के रूप में $v = \frac{\Delta I_t}{\Delta Y_t}$

यदि ΔY_t=20 करोड़ रूपये है तथा ΔI_t 30 करोड़ रूपये है तो $v = \frac{30}{20}$ = 1.5 होगा।

समीकरण रूप में $I_t = v (Y_t - Y_{t-1})$ के रूप में रखा जा सकता है ।

त्वरण सिद्धान्त को बूमेन ने निम्न समीकरण से वक्त किया है:

$I_{gt} = v (Y_t - Y_{t-1}) + R$

I_{gt} = कुल निवेश

V = त्वरण

Y_t = t-Period में राष्ट्रीय उत्पादन

Y_{t-1} = t-1 Period में राष्ट्रीय उत्पादन

R = प्रतिस्थापन निवेश (Replacement Investment)

शुद्ध निवेश ज्ञात करने के लिए प्रतिस्थापन निवेश R को घटा दिया जाता है ।

$I_{n\,t} = v\ (Y_t - Y_{t+1})$

जहां $I_{n\,t}$ = शुद्ध निवेश

या $I_{n\,t} = v\Delta Y_t$

यदि $Y_t > Y_{t-1}$ है तो शुद्ध निवेश धनात्मक होता है । यदि $Y_t < Y_{t-1}$ है तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक होता है और यदि $Y_t = Y_{t-1}$ है तो शुद्ध निवेश शून्य होता है ।

- **मान्यताएं**

1. पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर पाया जाता है ।
2. अर्थव्यवस्था में संसाधनों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार पायी जाती है ।
3. उपभोग वस्तुओं की मांग स्थायी होती है ।
4. पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता पायी जाती है ।
5. पूँजी और साख की पूर्ति लोचदार होती है ।
6. उपभोग उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता अनुपस्थित होती है ।

9.3.2 त्वरक का कार्यकरण (Working of Acceleration Principle)

त्वरक गुणांक का मूल्य दो बातों पर निर्भर करता है.

(i) पूँजी उत्पाद अनुपात (Capital Output Ratio)

(ii) पूँजी पदार्थो का टिकाऊपन (Durability on Replacement Period)

यदि v = 4 हो तथा मशीन की औसत आय 10 वर्ष हो तो त्वरण इस प्रकार कार्य करेगा ।

सारणी 9.4

त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण (v = 4)

अवधि (Period)	कुल उत्पादन (Y)	इच्छित पूंजी (K)	प्रतिस्थापित निवेश (R)	शुद्ध निवेश ($I_{n\,t}$)	सकल निवेश (I_{gt})
t	100	400	40	0	40
t+1	100	400	40	0	40
t+2	105	420	40	20	60
t+3	115	460	40	40	80

t+4	130	520	40	60	100
t+5	140	560	40	40	80
t+6	145	580	40	20	60
t+7	140	560	40	-20	20
t+8	130	520	40	-40	0
t+9	125	500	40	-20	20

उपर्युक्त सारणी t से लगाकर t+9 (10 वर्षो) की समय अवधि में कुल उत्पादन पूँजी स्टॉक शुद्ध निवेश तथा कुल निवेश के आँकड़े बताती है । v = 4 होने से K पूँजी स्टॉक प्रत्येक अवधि Y दिखाया गया है । प्रति वर्ष 10 प्रतिशत प्रतिस्थापन निवेश होने के कारण 40 करोड़ रूपये K का मूल्य समान रूप से है । शुद्ध निवेश प्रत्येक अवधि में आय में परिवर्तन का 4 गुना है ।

उदाहरण के लिए t+5 में उत्पादन में परिवर्तन 140-130 = 10 करोड़ रूपये है तो इस अवधि में शुद्ध निवेश 4x10=40 करोड़ रूपये है । अंतिम कॉलम Igt का मूल्य R+Int को जोड़कर प्राप्त होता है । t+5 में Igt अर्थात् कुल निवेश का मूल्य 40+40 = 80 करोड़ रूपये है । प्रारम्भ में उत्पादन की मांग में वृद्धि होने से शुद्ध निवेश में भी वृद्धि होती है । परन्तु t+6 के पश्चात उत्पादन की मांग में कमी होना प्रारम्भ हो जाती है । परिणामस्वरूप शुद्ध निवेश ऋणात्मक होने लग जाता है । इसे रेखा चित्र 9.5 द्वारा दर्शाया जा सकता है :

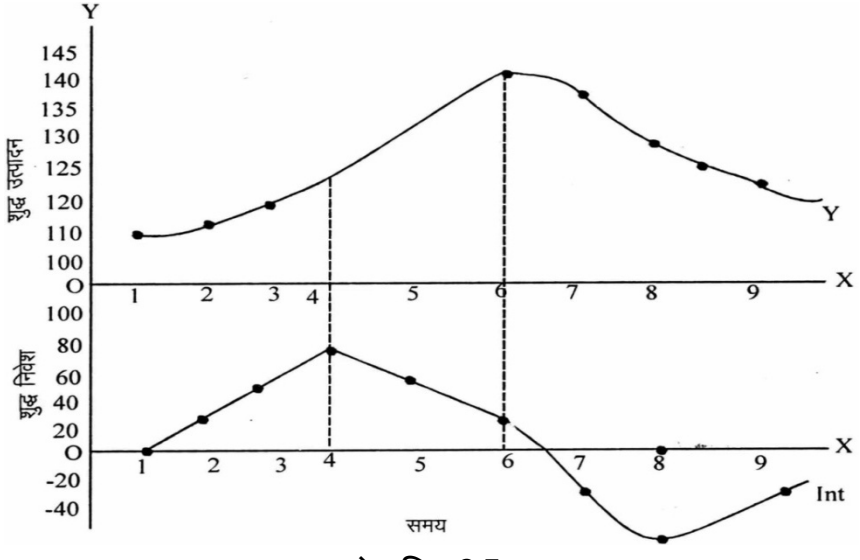

रेखाचित्र 9.5

रेखाचित्र 9.5 के प्रथम भाग में t+4 अवधि तक उत्पादन तेजी से बढ़ता है तत्पश्चात t+6 तक धीमी गीत से बढ़ता है । इसके बाद यह गिरना प्रारम्भ कर देता है । इसी को शुद्ध निवेश $I_{n\ t}$ के सन्दर्भ में चित्र के दूसरे भाग में दर्शाया गया है जहां शुद्ध निवेश वक्र t+4 अवधि तक ऊपर की ओर बढ़ता है तत्पश्चात t+6 तक नीचे की ओर गिरकर t+7 से ऋणात्मक हो जाता है । यदि कुल निदेश Igt के

दृष्टिकोण से देखें तो भी शुद्ध निवेश व कुल निवेश में एक जैसी प्रवृत्ति पायी जाती है अर्थात कुल निवेश प्रारम्भ में बढ़ता है ।t+4 पर अधिकतम होकर गिरने लगता है, परन्तु दोनों में एक अन्तर होता है कि t+6 के पश्चात् शुद्ध निवेश ऋणात्मक हो जाता है जबकि कुल निवेश ऋणात्मक नहीं होता ।

9.3.3 त्वरक सिद्धान्त की आलोचनाएं

त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण इतना सरल और सहज नहीं होता है । सैद्धान्तिक विश्लेषण में अनेक मान्यताओं के अन्तर्गत इसके कार्यकरण को समझना आसान होता है परन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से इसमें अनेक कठिनाइयां आती है । अत: अर्थशास्त्रियों ने इसकी कठोर आलोचनाएं की है जिसका विवरण इस प्रकार है

1. **पूँजी उत्पाद अनुपात** स्थिर नहीं रहता आधुनिक अर्थव्यवस्था में निरन्तर नये-नये आविष्कारों और तकनीकी विकास के कारण पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर नहीं रह सकता।
2. **संसाधन लोचदार नहीं** संसाधनों की पूर्ति हमेशा लोचदार नहीं होती । संसाधन तभी लोचदार होते हैं जबकि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी हो परन्तु जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुँच जाती है तो साधनों की अप्राप्ता के कारण पूँजीगत उद्योगों का विस्तार नहीं हो पाता और त्वरक नियम का कार्यकरण सीमित हो जाता है ।
3. **निवेश के समय अन्तराल की विवेचना नहीं** त्वरक सिद्धान्त यह मानता है कि उत्पादन की बढ़ी हुई मांग एकदम से प्रेरित निदेश में वृद्धि करती है परन्तु यह सत्य नहीं है । वास्तव में नया निवेश प्रजनन करने से पहले समय पश्चता एक वर्ष में अधिक हो सकती है जिसकी व्याख्या नहीं की गई है ।
4. **पूँजीगत वस्तुओं की लागत और उपलब्धता पर विचार नहीं** उपभोग वस्तुओं की मांग बढ़ने से पूँजीगत वस्तुओं की मांग में तो वृद्धि होती है परन्तु त्वरण प्रभाव तभी कार्य करेगा जब पूँजीगत वस्तुएं उचित लागत पर उपलब्ध हो अर्थात पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति का भी अध्ययन आवश्यक है ।
5. **साख की पूर्ति लोचदार नहीं** त्वरण सिद्धान्त यह मान लेता है कि साख की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है जबकि वास्तव में सस्ती साख उपलब्ध नहीं होती । ऊँची ब्याज दर पर साख उपलब्ध होने पर निवेश अपेक्षाकृत कम होगा और त्वरण पूर्ण रूप से काम नहीं करेगा ।
6. **तकनीकी परिवर्तनों की उपेक्षा** त्वरण नियम की एक कमी यह भी है कि यह निवेश में तकनीकी कारकों की अवहेलना करता है । तकनीकी विकास से श्रम या पूँजी में बचत हो सकती है जिसके परिणाम स्वरूप निवेश की मात्रा कम होकर त्वरण प्रभाव को समाप्त कर सकती है ।
7. **प्रत्याशाओं की उपेक्षा** त्वरण सिद्धान्त की एक ओर कमी यह है कि यह प्रत्याशाओं की भूमिका की भी उपेक्षा करता है । निवेश निर्णय की उत्पादन की मांग में वृद्धि से ही वरन् प्रत्याशाओं से भी प्रभावित होते हैं । वे स्टॉक बाजार की प्रवृत्तियों, राजनैतिक परिवर्तनों, अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं आदि पर भी निर्भर करते हैं ।

8. **प्लान्टों में निष्क्रिय क्षमता पायी जाती है** त्वरण सिद्धान्त यह मानता है कि प्लान्टों में निष्क्रिय क्षमता नहीं पायी जाती परन्तु यदि वास्तव में कारखानों में निष्क्रिय और अतिरिक्त क्षमता है तो उत्पादन और उपभोग में वृद्धि होने पर भी पूँजीगत वस्तुओं की मांग में वृद्धि नहीं होगी और त्वरण प्रभाव शल्य रहेगा ।

9.4 सारांश (Summary)

आधुनिक अर्थव्यवस्था में आय एवं रोजगार के सिद्धान्त को समझने के दो महत्वपूर्ण यन्त्र हैं - गुणक एवं त्वरक । निवेश आय वृद्धि का महत्वपूर्ण कारक है । स्वायत निवेश के कारण आय में होने वाली वृद्धि की व्याख्या गुणक के द्वारा की जा सकती है । 1936 में कीन्स ने निवेश गुणक की सविस्तार व्याख्या प्रस्तुत की । कीन्स के अनुसार निवेश में परिवर्तन ΔI के आय परिवर्तन ΔY से अनुपात को गुणक कहते हैं जिसे K नाम दिया था । $K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$ वास्तव में k उपभोग की सीमान्त प्रवृति पर निर्भर करता है क्योंकि ΔI का प्रभाव उपभोग में परिवर्तन ΔC के माध्यम से Y पर पड़ता है । इसे सूत्र रूप

में $K = \frac{1}{MPC}$ या $\frac{1}{MPS}$ से व्यक्त किया जा सकता है । सूत्र से स्पष्ट होता है कि गुणक का आकार MPC प्रत्यक्ष रूप तथा MPS से विपरीत रूप से प्रभावित होता है । चूँकि $0<MPC<1$ होती है अत: K का मूल्य 1 और ∞ के मध्य रहता है ।

गुणक सिद्धान्त अल्प रोजगार स्थिर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति समय अन्तराल की अनुपस्थिति, कीमतों की स्थिरता, प्रेरित निवेश की अनुपस्थिति, वस्तुओ तथा साधनों की पूर्ण लोचदार पूर्ति आदि मान्यताओं के अन्तर्गत कार्य करता है ।

अर्थव्यवस्था में गुणक सिद्धान्त के कार्यकरण में अनेक रिसाव पाये जाते हैं जो गुणक की प्रभाव शीलता को कम करते हैं जैसे - बचतों की वृद्धि, तरलता परन्दगी, आयातों में वृद्धि, ऋण विलोपन, निष्क्रिय बैंक जमाओं में वृद्धि, स्फीति, करारोपण आदि ।

उपर्युक्त रिसवों के कारण तथा अनेक अवास्तविक मान्यताओं के कारण कई बार गुणक सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाता है, इस कारण गुणक सिद्धान्त की कई अर्थशास्त्रियों ने कड़ी आलोचना की है । प्रोहर्ट ने इसे पांचवा बेकार पहिया कहा है । स्टिंगलर ने इसे कीन्स के सिद्धान्त का सबसे अस्पष्टतम (Fuzziest Part) भाग कहा है । जबकि हैज़लिट ने इसे ऐसा निरर्थक उपकरण बताया है जिसे पाठ्यक्रम में से निकाल देना चाहिए । इसके अतिरिक्त कई अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि MPC स्थिर नहीं होती, त्वरण सिद्धान्त की उपेक्षा, आय और उपभोग के मध्य सम्बन्धों की जटिलता आदि अनेक अवास्तविक मान्यताओं के कारण गुणक सिद्धान्त उपयुक्त नहीं है ।

परन्तु उपर्युक्त कमियों और सीमाओं के बादजूद गुणक सिद्धान्त का अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने में महत्वपूर्ण स्थान है निवेश की भूमिका, व्यापार चक्रों की व्याख्या एवं नियन्त्रण में

सार्वजनिक निवेश के महत्व को समझाने में तथा कई प्रकार की आर्थिक नीतियों के निर्धारण में इसका महत्वपूर्ण स्थान है ।

गुणक प्रभाव निवेश में वृद्धि के परिणामस्वरूप आय में होने वाली वृद्धि की व्याख्या करता है । इसके विपरीत उपभोग में वृद्धि या आय में वृद्धि भी निवेश में वृद्धि कर सकती है इसे ही त्वरण प्रभाव कहते हैं । 1917 में जे.एमक्लार्क ने त्वरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे बाद में हिक्स और सैमूल्सन ने व्यापार चक्रों की व्याख्या के लिए प्रस्तुत किया । त्वरण सिद्धान्त उपभोग वस्तुओं की मांग में परिवर्तन के कारण पूँजीगत वस्तुओं के निवेश में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या करता है,

अर्थात् $\beta = \frac{\Delta I_t}{\Delta Y_t}$

हिक्स के अनुसार $I_t = v\ (Y_t - Y_{t-1})$ इसमें v त्वरण गुणांक है ।

त्वरण सिद्धान्त भी स्थिर पूँजी उत्पाद अनुपात, संसाधनों की पूर्णतया लोचदार पूर्ति, उपभोग वस्तुओं की मांग में स्थायी वृद्धि, पूँजी तथा साख की पूर्णतया लोचदार वृद्धि आदि मान्यताओं के अन्तर्गत कार्य करता है ।

उपर्युक्त मान्यताओं के कारण त्वरण सिद्धान्त की भी कई आलोचनाएं की जाती है, जैसे पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर नहीं पाया जाता, पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति की उपेक्षा साख का पूर्णतया लोचदार न होना आदि ।

अन्त में कहा जा सकता है कि उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि कुछ कमियों के होते हुए भी अर्थव्यवस्था में आय एवं रोजगार के सिद्धान्त को समझने में गुणक और त्वरक दो महत्वपूर्ण यन्त्र है ।

9.5 शब्दावली (Glossary)

गुणक (Multiplier)	:	गुणक निवेश में हुई वृद्धि एवं आय में हुई वृद्धि के सम्बन्ध को स्पष्ट करता है ।
सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume)	:	सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति उपभोग में हुए परिवर्तन का आय परिवर्तन से अनुपात है । MPS = $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$
सीमान्त बचत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Save)	:	बचत में परिवर्तन का आय परिवर्तन से अनुपात MPS = $\frac{\Delta S}{\Delta Y}$
स्वायत निवेश (Autonomous Investment):	:	निवेश का वह भाग जो आय से स्वतंत्र होता है
प्रेरित निवेश (Induced Investment)	:	प्रेरित निवेश आय का फलन होता है।
त्वरक (Accelerator)	:	त्वरण गुणांक प्रेरित निवेश और आय में

प्रारम्भिक परिवर्तन का अनुपात $v = \frac{\Delta I_t}{\Delta Y_t}$

प्रतिस्थापन निवेश (Substitute Investment): : प्रतिवर्ष मूल्यह्रास या पूँजी के घिसावट व्यय की क्षतिपूर्ति करने हेतु किया गया निवेश ।

9.6 संदर्भ ग्रन्थ (References)

झिंगन एम.एल., "समष्टि अर्थशास्त्र" वृन्दा पब्लिकेशन्स, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली ।

सेठी टी.टी., "मेक्रो अर्थशास्त्र" लक्ष्मी नारायण अग्रबाल, आगरा ।

ओझा बी.एल., "समष्टि अर्थशास्त्र" आदर्श प्रकाशन जयपुर ।

आहूजा एच. एल., "उच्च समष्टि अर्थशास्त्र" एस.चन्दएण्ड कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली ।

Shapiro Edward, “Macro Economics” Analysis Galgotia Publications New Delhi.

Seth M.L., “Macro Economics” Laxmi Narayan Agrawal, Agra.

Jhingan M.L., “Macro Economic Theory” Vrinda Publication, PVT. Ltd. New Delhi.

वैश्य एम.सी., 'समष्टि अर्थशास्त्र", विश्व प्रकाशन New edge International PVT. Ltd Delhi

Rana Verma, “Macro Economics, Vishal Publication, Jalandhar.

9.7 अभ्यसार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. गुणक का अर्थ बताइये । सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा गुणक के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए ।
2. गुणक सिद्धान्त का महत्व बताइये और इसकी आलोचनाओं को स्पष्ट कीजिए ।
3. सरल स्थैतिक गुणक का अर्थ बताते हुए इसके कार्यकरण को समझाइये ।
4. प्रावैगिक गुणक की परिभाषा स्पष्ट करते हुए इसके कार्यकरण को स्पष्ट कीजिए ।
5. गुणक के कार्यशील होने में कौन-कौन से रिसाब है उनकी व्याख्या कीजिए ।
6. आय वृद्धि एवं प्रेरित निवेश के मध्य सम्बन्दों को स्पष्ट करने में त्वरण की भूमिका स्पष्ट करते हुए इसका कार्यकरण बताइये ।
7. त्वरक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।

इकाई -10

व्यापार चक्र सिद्धान्त, हाट्रे का मौद्रिक सिद्धान्त, हेयक का अति विनियोग सिद्धान्त

(Theories of Trade Cycle: Hawtrey's Monetary Theory, Hayek's Over Investment Theory)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 व्यापार चक्र का अर्थ-विशेषताएं

10.3 व्यापार चक्रों के प्रकार

10.4 व्यापार चक्र की अवधारणा, अवस्थाएं एवं इसके चरण

10.5 व्यापार चक्र के सिद्धान्त

10.6 आर.ज़ीहाट्रे का विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त

10.7 एफ.एहेयक का मौद्रिक अति विनियोग सिद्धान्त

10.8 सारांश

10.9 शब्दाबली

10.10 सन्दर्भ ग्रन्ध

10.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य (Objectives)

आर्थिक क्षेत्र में होने वाली हलचल का मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । यही कारण है कि अर्थशास्त्री इन हलचल के कारणों, विशेषताओं एवं आवृत्तियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना चाहता है ताकि इनके दुष्प्रभावों से बचने के उपाय कर सके । इस इकाई का उद्देश्य ऐसे उच्चावचनों जिन्हें व्यापार चक्र (Trade अथवा Business Cycle) कहते हैं, की अवधारणा एवं उनकी विशेषताओ के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- समझ सकेंगे कि व्यापार चक्र किसे कहते है;
- द्यापार चक्रों के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से हैं;
- एक व्यापार चक्र किन अवस्थाओं से गुजरता है; एवं
- व्यापार चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त कौन से हैं ।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनमें स्थान-स्थान पर आर्थिक उतार-चढाव होते रहते हैं । इस प्रकार के उतार-चढाव अर्थव्यवस्था में विनियोग उत्पादन, आय, रोजगार तथा कीमतों आदि की स्थिति को प्रभावित करते हैं । आर्थिक उच्चावचन का स्वरूप एक सा नहीं होता है । कुछ उतार-चढ़ाव तो अति दीर्घकालीन अथवा दीर्घकालीन प्रवृत्तियों के परिणाम होते हैं । कुछ अन्य प्रकार के उतार-चढाव ऋतु सम्बन्धी होते हैं जो प्रति वर्ष ऋतुओं व परिवर्तन के साथ-साथ अपने प्रभाव उत्पन्न करते हैं । कुछ उतार-चढ़ाव आकस्मिक भी होते हैं जिनके सम्बंध से पहले से कल्पना भी नहीं की जा सकती है । अर्थशास्त्रियों ने चक्रीय उतार-चढ़ावों अथवा व्यापार चक्र के कारण उत्पन्न होने वाले प्रभावों की ओर विशेष ध्यान दिया है, क्योंकि इनसे अर्थव्यवस्था बहुत प्रभावित होती है और इनका पहले से अनुमान भी नहीं लग पाता है । अत: हमें यह समझ लेना कि व्यापार चक्र क्या है और ये किन कारणों से उत्पन्न होते हैं तथा इनका उपचार किस प्रकार किया जा सकता है । इस अध्याय में हमारा उद्देश्य व्यापार चक्रों के दो कारणों से सम्बन्धित सिद्धान्तों का ही उल्लेख करना है, जो इस प्रकार है-

1. आर.जी हाट्रे का विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त
2. एफ.एहेयक का मौद्रिक अति विनियोग सिद्धान्त

प्रस्तुत इकाई में व्यापार चक्रों के बारे में महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है । इस इकाई में हम उन समस्त बिन्दुओं का संक्षिप्त विवरण देकर इनके (व्यापार चक्र सिद्धान्तों में हाट्रे का मौद्रिक सिद्धान्त व हेयक के अति विनियोग सिद्धान्त) के बारे में चर्चा करेंगे । इस इकाई के खण्ड 10.2 में व्यापार चक्रों का अर्थ एवं विशेषताओं की चर्चा की जायेगी । खण्ड 10.3 में व्यापार चक्रों के प्रकार, खण्ड 10.4 में व्यापार चक्र की अवधारणा, अवस्थाएं एवं चरणों के बारे में वर्णन किया गया है । खण्ड 10.6 में व्यापार चक्र के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में सूक्ष्म विवरण दिया गया है । खण्ड 10.6 में आरजीहाट्रे का विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त के बारे में विवरण दिया गया है । खण्ड 10.7 में एफ.एहेयक का मौद्रिक अति विनियोग सिद्धान्त का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है । इकाई के अन्त में सारांश, शब्दावली, सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची एवं अभ्यासार्थ प्रश्न दिये गये हैं ।

10.2 व्यापार चक्र का अर्थ एवं विशेषताएं

यह कहना बहुत कठिन है कि इतिहास में किस समय कीमतों में होने वाले आवर्ती उच्चावचनों का क्रमबद्ध विश्लेषण आरम्भ हुआ था । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह दृढ़ विश्वास था कि अर्थव्यवस्था में सदैव दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार की ओर लोटने की प्रवृत्ति पाई जाती है। फलस्वरूप बहिर्जात शक्तियों, श्रम की गतिशीलता, सोने की नई खानों की खोज और अन्य विविध घटकों से अर्थव्यवस्था पर होने वाले प्रभावों की अपेक्षा दे अन्तर्गत शक्तियों द्वारा आवर्ती रूप में घटित होने वाले व्यापार चक्रों का सिद्धान्त प्रतिपादित करने में असमर्थ रहे थे । यद्यपि कीन्स ने-पूर्व समष्टि आर्थिक विचारों में इस तथ्य को स्वीकार किया गया था कि

अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार तथा उत्पादन पूर्ण रोजगार के स्तर से कम हो सकते थे परन्तु ऐसी स्थिति को अस्थाई माना गया था । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह तर्क था कि पूर्णत: प्रतियोगी बाजार में विद्यमान स्वचालित शक्तियां सदैव अर्थव्यवस्था को उस स्तर पर लाने हेतु क्रियाशील होती है जहां देश में उपलब्ध समूर्ण श्रम शक्ति का पूर्ण उपयोग होता है । फलमरूप, पूर्ण रोजगार से विचलित स्थिति को उन्होंने कभी भी गम्भीर समस्या के रूप में नहीं लिया था क्योंकि उनकी दृष्टि में यह एक अल्पकालिक एवं अपवादस्वरूप विचलन था । परन्तु हमें यह स्वीकार करना होगा कि 19वी शताब्दी में कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संकटों का विश्लेषण किया था । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के प्रमुख स्तम्भ डेविड रिकॉर्डो ने 1817 में व्यापार में प्रतिकर्षण अथवा खिंचाव के सम्बंध में चर्चा की थी जबकि प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अन्तिम प्रतिनिधि जॉन स्तुवार्ट मिल (जिनके समय में इस विचारधारा को सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई थी तथा इसका प्रभाव भी प्रारम्भ हो गया था) ने 1848 में विस्तार से व्यापारिक संकटों का उल्लेख किया था, परन्तु कुल मिलाकर कीमतों में होने वाले आवर्ती उच्चावचनों के रूप में व्यापार चक्रों के क्रमबद्ध विश्लेषण का श्री गणेश वास्तव में नहीं हुआ था जिस किसी भी व्यक्ति ने प्रतिष्ठित पूर्ण रोजगार की समष्टि आर्थिक विचारधारा का विरोध किया था वह इसके स्थान पर अन्य किसी वैकल्पिक सिद्धान्त को प्रतिपादित नहीं कर सका था) थॉमस रॉबर्ट माल्थस जिन्होंने प्रतिष्ठित सिद्धान्तों से 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में असहमति व्यक्त की थी, प्रचलित प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धान्तों का प्रभावी विरोध नहीं कर सके थे क्योंकि प्रेक्षित तथ्यों के आधार पर कुछ करने के अतिरिक्त वे न तो बेरोजगारी तथा आर्थिक मन्दी के कारणों की व्याख्या कर सके थे और न ही कोई वैकल्पिक सिद्धान्त इस सन्दर्भ में प्रस्तुत कर पाये थे । संक्षेप में व्यापार चक्रों के विश्लेषण हेतु प्रतिष्ठित समष्टि अर्थशास्त्र में हमें कोई भी सिद्धान्त दृष्टिगत नहीं होता है ।

सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री जोसफ ए.शुम्पीटर के मतानुसार क्लीमेन्ट जगलर ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रों की घटना का क्रमबद्ध अध्ययन किया था । जगसर ने 1860 में प्रकाशित अपनी पुस्तक Des crises Commercials में काफी सूचनाओं के आधार पर व्यापार चक्रों के तीन चरणों- समृद्धि, संकट एवं समापन, का उल्लेख किया था । इस व्याख्या में प्रत्येक चरण की औसत अवधि 9 से 12 वर्ष तक की बतलाई गई थी, परन्तु आज व्यापार चक्रों की उपलब्ध के कारणों एवं इनकी व्याख्या हेतु इतना अधिक आर्थिक साहित्य उपलब्ध है कि इसमें से प्रत्येक के संक्षिप्त विवरण हेतु भी एक बडे ग्रन्थ की आवश्यकता होगी । यदि हम विगत कुछ दशकों में प्रतिपादित व्यापार चक्र के सिद्धात्तें पर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो हमें यह प्रतीत होगा कि इनके विकास में जोसफ एशुम्पीटर, निकोलस, काल्डर, जॉन आरहिक्स, रिचार्ड एमगुडविन, लायड एमैटज्जर, रॉय एकहैरॉड, पॉल एसैमुल्सन एवं जेम्स एसड्यूजनबरी आदि का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा हैपरन्तु इन अर्थशास्त्रियों के विचारों का भी यहां पर्याप्त रूप में उल्लेख करना सम्भव नहीं है । अस्तु: हम प्रस्तुत इकाई में व्यापार चक्रों से सम्बन्धित हेयक एवं हाट्रे द्वारा प्रतिपादित मौद्रिक सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे ।

- **व्यापार चक्रों का अर्थ**

ऐसे आर्थिक उतार-चढ़ाव जिनकी प्रकृति नियमित रुप से बार-बार उत्पन्न होने की होती है, व्यापार चक्र अथवा चक्रीय आर्थिक उतार-चढाव कहलाते हैं । व्यापार चक्र को अंग्रेज प्राय: "Trade Cycles" कहते हैं जबकि अमेरिकी अर्थशास्त्री "Business Cycles" कहना पसन्द करते हैं। प्रो. ली के अनुसार ये दोनों ही शब्द भ्रामक है । चूँकि इनसे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है इसलिए "Economic Cycles" कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा व्यापार चक्र की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी गई हैं । अमेरिकी अर्थशास्त्री मिचेल के अनुसार 'व्यापार चक्र संगठित समुदायों की आर्थिक क्रियाओं में उतार-चढ़ाव का ही एक स्वरूप है ।" प्रोकेन्स के अनुसार "एक व्यापार चक्र बढ़ती हुई कीमतों तथा कम प्रतिशत बेरोजगारी वाले अच्छे व्यापार के समय के पश्चात् बेरोजगारी की ऊँची प्रतिशत तथा गिरती हुई कीमतों वाले बुरे व्यापार की अवधियों के अस्तित्व से बनता है ।" जेम्स आथर ईस्टे के अनुसार "चक्रीय उच्चावचनों में विस्तार एवं संकुचन की वैकल्पित लहरें दृष्टिगोचर होती है, इनकी लय स्थिर नहीं होती, परन्तु वे चक्रीय इस अर्थ में होते हैं कि संकुचन एवं विस्तार की अव्यस्थाएं बार-बार आवृत होती हैं और उनका स्वरूप लगभग एकसा ही होता है ।"

- **व्यापार चक्र की विशेषताएं**

व्यापार चक्र की विभिन्न परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव की स्थिति व्यापार चक्र नहीं कही जा सकती है । व्यापार चक्र कहे जाने वाले उतार-चढाब की कुछ अपनी विशेषताएं होती हैं । व्यापार चक्र की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. व्यापार चक्र से उत्पन्न होने वाले उतार-चढ़ाव का स्वरूप चक्रीय होता है । दूसरे शब्दों में ये उतार-चढ़ाब बार-बार होते हैं और उनमें पुनरावृत्ति का स्वरूप होता है । तेजी के बाद मन्दी और मन्दी के बाद तेजी का क्रम चलता रहता है ।
2. कुछ अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि उतार-चढ़ावों में सामयिकता का गुण होता है अर्थात् तेजी-मन्दी का चक्र लगभग एक निश्चित अवधि में पूरा हो जाता है । हेन्सन के विचार में व्यापार चक्र की सामान्य अवधि 7 से 10 वर्षों की होती है । परन्तु अधिकांशत: देखा गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि व्यापार चक्र समय अवधि तथा फैलाद की दृष्टि से समान हो अथवा नियमित हो । इस प्रकार व्यापार चक्र बार-बार होते हैं परन्तु नियमित नहीं होते हैं ।
3. व्यापार चक्रों की गीत लहरों के समान होती है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के समुद्र में यही लहरें तेजी के बाद मन्दी और मन्दी के बाद तेजी लाती है । कुछ लहरें अधिक शक्तिशाली होती हे और कुछ कम, परन्तु प्रत्येक लहर की प्रकृति एक दूसरे से काफी मिलती-जुलती होती है ।
4. विस्तार और संकुचन का स्वरूप संचयी होता है अर्थात् प्रत्येक अपने आप ऐसे तत्वों का संचय करती रहती है जो इसे विपरीत दिशा में ले जाते हैं । तेजी अथवा मन्दी की

समय अवधि नियमित अथवा निश्चित तो नहीं होती है परन्तु यह निश्चित है कि न तो तेजी और न ही मन्दी की स्थिति अनिश्चितकाल के लिए बनी रहती है ।

5. व्यापार चक्र के प्रभावों में समक्रमिता की विशेषता होती है अर्थात् ये प्रभाव अर्थव्यवस्था के किसी अंग अथवा क्षेत्र तक सीमित नहीं रहते हैं अपितु समूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते है
6. वर्तमान आर्थिक जीवन का स्वरूप अन्तरराष्ट्रीय होने के कारण एक देश में व्याप्त मन्दी अथवा तेजी की समस्या अन्तरराष्ट्रीय समस्या बन सकती है । 1929-31 की अन्तरराष्ट्रीय मन्दी के पश्चात् वर्ष 2008 में चल रही विश्वव्यापी मन्दी से यह बात अधिक स्पष्ट हो गई है ।
7. व्यापार चक्रों का सम्बंध मूलत: रोजगार, उत्पादन व कीमत स्तर से होता है और यह तीनों विनियोग से सम्बन्धित होते हैं । इस प्रकार तेजी के काल में विनियोग बढ़ता है और मन्दीकाल में घट जाता है ।
8. व्यापार चक्र अर्थव्यवस्था में मौद्रिक तत्वों को प्रभावित करते हैं । तेजी की दशा में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है जिससे बैंकों द्वारा साख निर्माण की गति बढ़ा दी जाती है और मन्दी की दशा में उसमें कमी आ जाती है । केन्स ने इसीलिए 'साख-चक्रों' ' का उल्लेख किया था । उत्पादन तथा रोजगार परिवर्तनों के साथ-साथ मुद्रा की मात्रा व उसकी चलन गति में परिवर्तन होता है ।
9. अर्थव्यवस्था में सभी क्षेत्र व्यापार चक्र से समान रूप में प्रभावित नहीं होते हैं । उपभोग पदार्थो की अपेक्षा पूँजी पर किये गये व्यय में उतार-चढ़ाव अधिक होता है । कृषि पदार्थो की कीमतों में अधिक लचक होती है और निर्मित पदार्थो की कीमतों में कम । थोक कीमतों में परिवर्तन अधिक होता है जबकि फुटकर कीमतों में उससे कम व मज़दूरियों में और भी कम होता है । लाभ से प्राप्त अन्य स्रोतों से प्राप्त आय की अपेक्षा अधिक घटती-बढ़ती है । अर्थव्यवस्था पर मन्दी का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित व गहरा होता है ।

10.3 व्यापार चक्रों के प्रकार (Types of Trade Cycles)

व्यापार चक्रों की अग्रलिखित विशेषताओं के अतिरिक्त एक अन्य विशेषता यह है कि इनकी अवधि अलग-अलग होती है । इस आधार पर व्यापार चक्रों का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जाता है-

(1) **प्रमुख चक्र (Major Cycle)** एक प्रमुख मन्दी तथा प्रमुख सुस्ती के बीच समयान्तर अथवा दूरी को बताते हैं । इस प्रकार के चक्रों की खोज 19वीं शताब्दी के फ्रांसीसी अर्थशास्त्री क्लीमेन्ट जगलर ने की इसलिए इन्हें 'जगलर चक्र' भी कहते हैं । इन चक्रों की अवधि लगभग 10 वर्ष होती है । प्रोहेन्सन ने सन् 1837 से 1937 तक की अवधि में अमेरिका में इस प्रकार के 12 चक्रों की खोज की है ।

(2) **लघु चक्र (Minor Cycle)** व्यावसायिक क्रिया में हल्के उतार-चढ़ाव को बताते हैं । प्रमुख तथा लघु चक्रों के बीच भेद एक अंग्रेज अर्थशास्त्री जोसेफ किचिन ने किया था, इसलिए लघु चक्रों को 'किचिन चक्र' कहा जाता है । प्राय: एक प्रमुख चक्र में दो अथवा तीन लघु चक्र होते हैं और एक लघु चक्र की अवधि लगभग 40 महिने होती है ।

(3) **दीर्घ लहरें (Long Waves)** दीर्घ लहरें जिनकों एक रूसी अर्थशास्त्री के नाम पर कोन्द्रातीफ चक्र कहा जाता है, व्यापार-चक्र की दीर्घकालीन लहरों को बनाते हैं । इनकी अवधि 50 से 60 वर्ष तक होती है और प्रत्येक में अनेक लघु एक् प्रमुख चक्र शामिल होते हैं।

(4) **निर्माण कार्य चक्र (Building Cycle)** निर्माण कार्यों से संबन्धित होते हैं । इस प्रकार के चक्र की मियाद 15 से 20 वर्ष (औसत 18 वर्ष) होती है ।

उपर्युक्त पहले तीन व्यापार चक्र एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं । प्रत्येक जगलर चक्र में तीन किचिन चक्र होते हैं और छ: जगलर चक्र एक कोन्द्रातीफ चक्र बनाते हैं परन्तु व्यावहारिक अनुभव के आधार पर इस बात के कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं कि विभिन्न समय अवधियों के चक्र आपस में एक-दूसरे से संबन्धित होते हैं । आधुनिक अर्थशास्त्री तो दीर्घ लहरों को व्यापार चक्र मानते ही नहीं है

10.4 व्यापार चक्र की अवधारणाएं, अवस्थाएं एवं इसके चरण

मोटे तोर पर व्यापार चक्र अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाले उन उच्चावचनों के प्रतीक होते है जो वाणिज्य गतिविधियों में पेण्डुलम की भांति नियमित रूप से घटित होते हैं । सुप्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री वेस्ली क्लेयर मिचेल, जिन्होंने इस क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किया है, ने व्यापार चक्र के बारे में लिखा है कि 'जिन देशों की अर्थव्यवस्था में व्यावसायिक संगठनों कई भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है उनकी कुल आर्थिक गतिविधियों में होने वाले एक विशेष प्रकार के उच्चावचनों को व्यापार चक्र कहते है । एक आपार चक्र में एक साथ अनेक आर्थिक गतिविधियों में पहले तो विस्तार होते है और तत्पश्चात सामान्य व्यापारिक मन्दी (संकुचन) तथा पुनर्जीवन विद्यमान होते हैं तथा अगले व्यापार के विस्तार चरण में मिल ज़ते हैं । परिवर्तनों का यह क्रम आवर्ती होता है परन्तु मौसमी नहीं होता है । 'व्यापार चक्र की अवधारणा यह बताती है कि व्यापार चक्र कुल आर्थिक गतिविधियों में उतार-चढ़ाव की घटना है और इसलिए उनका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से हैं । इसके अलावा ये केवल उन उतार-चढ़ावों से संबन्धित होते हैं जो नियमित रूप से विध्यमान होते हैं । कीन्स के मतानुसार व्यापार चक्र में निम्न गुण होने चाहिए । "चक्रीय उतार-चढ़ाव से हमारा तात्पर्य यह है कि जैसे-जैसे कोई अर्थव्यवस्था प्रगति करती है, प्रगति की और प्रवृत करने वाले घटक आरम्भ में सशक्त होकर एक-दूसरे पर संचयी प्रभाव डालते हैं । परन्तु धीरे-धीरे उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है और अन्तत: उनसे जन्मी विरोधी शक्तियां उन पर छवी हो जाती है । ये विरोधी शक्तियां प्रारम्भ में कुछ समय तक एकदूसरे को बल प्रदान करती है और अन्तत: अधिकतम विकास करने के बाद

इनकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है तथा इनकी विरोधी शक्तियां इन पर हावी हो जाती है । परन्तु चक्रीय उतार-चढ़ाव से हमारा अभिप्राय: यह नहीं है कि ऊँची अथवा नीची प्रवृत्तियां एक बार प्रारम्भ होने के बाद उसी दिशा में प्रवृत होती रहती है; इसके विपरीत वस्तुत: इनमें प्रत्येक प्रवृत्ति अन्तत: विरोधी दिशा में मुड़ जाती है । हम यह भी मानते हैं कि ऊपरी प्रवृत्तियों की समय तथ समय क्रम में कुछ स्वीकारने योग्य नियमितता होती है । परन्तु व्यापार चक्र कहलाने के लिए उनमें एक विशेषता और भी होनी चाहिए और वह है संकट की अनुभूति यह तथ्य कि ऊपरी प्रवृत्ति के बदले नीचे की ओर की प्रवृत्ति आकस्मिक एवं तीव्र रूप में उत्पन्न होती है जबकि साधारणत: ऊपरी प्रवृत्ति से नीचे की प्रवृत्ति में आने हेतु हमें कोई परावर्तन बिन्दु नहीं मिलता है ।" संक्षेप में व्यापार चक्र में बाहरी शक्तियों द्वारा अर्थव्यवस्था पर होने वाले प्रभावों के कारण लहरों की मांति हलचल होती दिखाई देती है ।

अमेरिकी अर्थशास्त्री बर्न्स (Arthur F. Burns) तथा मिचेल (Weslesy C.Mitchell) के अनुसार प्रत्येक व्यापार चक्र में गर्त तथा शिखर की दो व्यवस्थाओं के अतिरिक्त दो अन्य अवस्थाएं इन दोनों के बीच की होती है । इस प्रकार एक व्यापार चक्र की चार अवस्थाएं होती है । (1) मन्दी या संकुचन (2) पुनरुत्थान (3) समृद्धि तथा तेजी अथवा विस्तार, तथा (4) प्रतिसार या सुस्ती ।

लॉर्ड ओवरस्टोन ने व्यावसायिक उतार-चढ़ाओं के क्रम की व्याख्या इन शब्दों में की है 'घोर मन्दी-पुनर्जीवन-बढ़ता हुआ आशावाद-सम्पन्नता-उत्तेजना-अत्याधिक व्यापार-दबाव-परेशानी-पुन: घोर मन्दी ।"

व्यापार चक्र की चारों अवस्थाओं की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन नीचे दिया गया है । यह बात ध्यान में रखने की है कि यह विवरण सामान्य विशेषताओ का है । व्यवहारिक स्थिति कुछ भिन्न प्रकार की भी सकती है।

(1) **मन्दी या संकुचन** मन्दीकाल में आर्थिक क्रिया निम्नतर स्तर पर आ जाती है और अर्थव्यवस्था के लिए अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है । इस अवस्था की सामान्यत: मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है ।

- उत्पादन तथा व्यापार का नीचा स्तर ।
- बड़े पैमाने पर बेरोजगारी तथा नीचा आय स्तर ।
- मांग में कमी तथा कीमतों में गिरावट ।
- कच्चे माल तथा कृषि पदार्थों की कीमतों में निर्मित पदार्थो की कीमतों से अधिक गिरावट ।
- कीमतों की तुलना में लागतों में कम गिरावट ।
- विकृत सापेक्ष कीमत संरचना
- विनियोग में कमी के कारण बैंक साख की मांग में कमी ।
- ब्याज-दर में कमी ।
- ऊँचा तरलता-अधिमान तथा सहास की कमी ।
- व्यावसायिक असफलताओं की ऊँची दर ।

- निर्माण क्रियाओंतथा तथा कारखानों के विस्तार में रुकावट, तथा
- सर्वव्यापक निराशावादिता ।

उपर्युक्त तत्व जब सम्मिलित रूप से कार्य करने लगते हैं तो एक तत्व दूसरे को शक्ति देता है और मन्दी का क्रम एक संचयी प्रक्रिया का रूप धारणा कर लेता है । चारों ओर व्यावसायिक व औद्योगिक शिथिलता, निराशा व अविश्वास का वातावरण छा जाता है जिससे आर्थिक कठिनाइयों के अतिरिक्त राजनीतिक व सामाजिक समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती है ।

(2) **पुनरुत्थान** पुनरूत्थान का क्रम तब आरम्भ होता है जब आर्थिक क्रियाएं शिथिलता की निम्नतम दशा में पहुँच जाती है । पुनरुत्थान आरम्भ करने वाली अनेक शक्तियां हो सकती है, जैसे कीमतों में गिरावट रूक जाना, गोदामों में रखे हुए स्टॉक समाप्त हो जाना नीची ब्याज दरों के कारण पूँजी विनियोग को प्रोत्साहन मिलना, निराशावादी दृष्टिकोण में परिवर्तन होना नये बाजार उपलब्ध होना इत्यादि । पुनरुत्थान का आरम्भ इनमें से किसी एक अथवा एक से अधिक तत्वों का परिणाम हो सकता है । पुनरुत्थान की अवस्था के मुख्य लक्षण इस प्रकार से है -

- उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि ।
- आय में वृद्धि के कारण मांग में वृद्धि
- कीमतों में वृद्धि ।
- मजदूरी तथा द्याज की दरें अपेक्षाकृत नीची होने के कारण लाभ में वृद्धि ।
- विनियोग को प्रोत्साहन ।
- बैंक साख की अधिक मांग ।
- स्टॉक रखने की मांग में वृद्धि ।
- स्थापित उद्योगों की अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता में कमी, तथा
- सर्वव्यापक आशावादिता ।

पुनरुत्थान का क्रम आरम्भ होते ही उपर्युक्त सभी तत्व संचयी स्वरूप में कार्य करने लगते हैं और अर्थव्यवस्था में पुनरुत्थान के कारण पुनर्जीवीत की प्रक्रिया लगातार अधिक वेगपूर्ण होती जाती है ।

(3) **समृद्धि तथा तेजी अथवा विस्तार** हैबरलर के अनुसार समृद्धि की स्थिति वह अवस्था है जिसमें वास्तविक आय के उपयोग तथा उत्पादन में वृद्धि होती है, रोजगारका स्तर ऊँचा होता है अथवा बढ़ रहा होता है, बेकार साधन तथा बेरोजगार मजदूर होते ही नहीं अथवा बहुत कम होते हैं । समृद्धि की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-

- उत्पादन, रोजगार व आय के ऊँचे स्तर ।
- मांग तथा कीमतों में वृद्धि ।
- मजदूरी तथा ब्याज दरों में भी वृद्धि ।
- लागतों की अपेक्षा कीमतों में अधिक वृद्धि के कारण लाभ में वृद्धि ।
- विनियोग में वृद्धि तथा निर्माण कार्यो को प्रोत्साहन ।
- बैंक साख का विस्तार ।
- गोदामों में माल रखने की अधिक मांग, तथा

- सर्वव्यापी आशावादिता ।

समृद्धि की अवस्था पूर्ण रोजगार स्तर से भी आगे चोटी तक ले जाती है । इस अवस्था को प्राय: तेजी कहा जाता है । इस अवस्था में पहुँचने के बाद भी व्यय बढ़ते रहते हैं परन्तु उत्पादन बढ़ना रूक जाता है । परिणामस्वरूप कीमतों में स्फीतिक वृद्धि (Bottleneck) उत्पन्न हो जाती है और विस्तार को बढ़ाने वाली शक्तियां कमजोर होने लगती है तथा चोटी से नीचे की ओर पतन आरम्भ हो जाता है ।

(4) **प्रतिसार या सुस्ती** समृद्धि समाप्त होते ही सुस्ती का आरम्भ होता है । वास्तव में यह एक अवस्था न होकर एक ऐसा मोड़ होता है जो उद्योगपति का रास्ता खोल देता है । इस मोड़ पर संकुचन की शक्तियां विस्तार की शक्तियों से अधिक बलवान हो जाती है और आर्थिक क्रिया का स्तर गिरने लगता है । सुस्ती अथवा प्रतिसार की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-

- कीमतों की अपेक्षा लागतों में अधिक वृद्धि ।
- लाभ में कमी तथा औद्योगिक विस्तार में शिथिलता ।
- रोजगार के अवसरों में कमी तथा आय में गिरावट ।
- स्टॉकों में कमी ।
- मुद्रा एवं साख बाजार में प्रतिकूल दशाएं ।
- व्यावसायिक असफलताओं में वृद्धि, तथा
- निराशावादी दृष्टिकोण ।

सुस्ती का प्रभाव संचयी होता है । गुणक प्रभाव विपरीत दिशा में कार्य करने लगता है और त्वरक लगभग शून्य हो जाता है । प्रो.ली के अनुसार 'सुस्ती एक बार आरम्भ हो जाने पर अपनी ही शक्ति से आगे बढ़ती जाती है, जिस प्रकार जंगल की आग अपनी विनाशकारी शक्ति का स्वयं ही सृजन करती है ।" सुस्ती अन्त में अर्थव्यवस्था को मन्दी की अवस्था में पहुँचा देती है और इस प्रकार एक चक्र पूरा हो जाता है ।

शुम्पीटर का मत है कि व्यापार चक्र व्यावसायिक गतिविधियों के साम्य अथवा प्रवृत्ति रेखा (Trade Line) के समीप लहर की भांति विचलनों को दर्शाता हैं साधारणत: अर्थव्यवस्था के कार्य संचालन में हमें साम्य बिन्दु तथा इनके चारों ओर स्थित साम्य क्षेत्र दिखाई देते हैं । शुम्पीटर के विश्लेषण में व्यापार चक्र के चार चरण क्रमश: समृद्धि, सुस्ती, मन्दी तथा पुनर्जीवन होते है । व्यापार चक्रों को दो भागों में ऊपरी आधे भाग एवं निचले आधे भाग में विभक्त किया जा सकता है । प्रवृत्ति अथवा साम्य रेखा के ऊपरी आधे भाग को समृद्धि एवं सुस्ती के चरणों में तथा साम्य रेखा के नीचे दाले भाग को मन्दी एवं पुनर्जीवन के चरणों में विभाजित किया जा सकता है । रेखाचित्र 10.1 से हमें शुम्पीटर द्वारा प्रस्तुत व्यापार चक्र के चारों चरणों का बोध होता हे ।

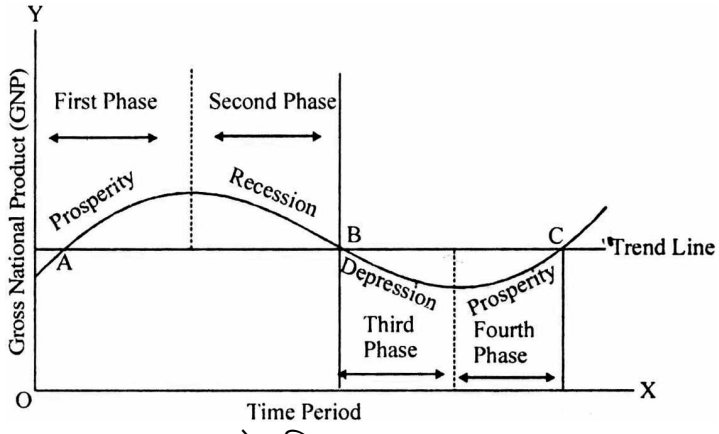

रेखाचित्र10.1

उपर्युक्त रेखाचित्र 10.1 में समृद्धि तथा सुस्ती के चरण आर्थिक क्रियाओं के उस स्तर को प्रदर्शित करते हैं जहां सामान्य से अधिक गतिविधियां हो रही होती है जबकि मन्दी एवं पुनर्जीवन के चरण अर्थव्यवस्था में सामान्य से कम आर्थिक गीतविधयों का स्तर प्रदर्शित करते हैं । समृद्धि के समय में अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर निरन्तर बढ़ता है यद्यपि इसकी वृद्धि दर कम होती जाती है । परन्तु आपार चक्र के शिखर पर पहुँचते ही रोजगार एवं राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि रूक जाती है । सुस्ती के चरण में अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार में तीव्र गीत से तब तक कमी होती रहती है जब तक नटी (सुस्ती मे) परिवर्तन के B बिन्दु की स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती है । इसके बाद व्यापार चक्र निचले आधे भाग में प्रदेश करता है । ऊपरी आधे भाग की भांति निचले आधे भाग में भी मन्दी एवं पुनर्जीवन के दो चरण होते हैं । यद्यपि मन्दी के चरण में अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार में कमी होती है परन्तु व्यापार चक्र के गर्त बिन्दु के समीप रोजगार में कमी धीमी हो जाती है । पुनर्जीवन के चरण में रोजगार में बढ़ती हुई दर से उस समय तक वृद्धि होती रहती है जब तक कि नति (पुनर्जीवन मे) परिवर्तन का बिन्दु C प्राप्त नहीं हो जाता है ।

10.5 व्यापार चक्र के सिद्धान्त (Theories of Trade Cycle)

व्यापार चक्र का अध्ययन एक जटिल विषय है, क्योंकि यह अनेक कारणों से प्रभावित होता है और समूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है । व्यापार चक्र के कारणों की व्याख्या के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा चुके हैं । ये सिद्धान्त मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं-बाह्य सिद्धान्त, तथा आन्तरिक सिद्धान्त ।

- **बाह्य सिद्धान्त**

व्यापार चक्र के बहिर्जीनक कारणों की व्याख्या करते हैं । स्टेनले जेबन्स ने बताया था कि कुछ काल के बाद सूर्य के धरातल पर कुछ धब्बे पड़ जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप वर्षा होती है और इसका कृषि उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है, जिससे आपार भी प्रभावित होता है । व्यापार चक्र के कुछ अन्य बहिर्जनक कारण भी हो सकते हैं, जैसे युद्ध, क्रान्तियां, राजनीतिक घटनाएं, जनसंख्या की वृद्धि दर, स्वर्ण की खोज, नये क्षेत्र, साधनों की खोज तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कार एवं सुधार । शुम्पीटर का नव प्रवर्तन सिद्धान्त आपार चक्रों का मुख्य कारण

साहसियों द्वारा नव प्रवर्तन करना बताता है । वास्तविकता यह है कि उपर्युक्त बाह्य कारण अर्थव्यावस्था पर चोट तो लगाते हैं परन्तु ये उतार-चढ़ाव नहीं कर सकते हैं । गड़बडी तो आन्तरिक कारणों से ही उत्पन्न होती है ।

- **आन्तरिक सिद्धान्त**

अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र उत्पन्न करने वाले अन्तर्जीनत कारणों की व्याख्या करते हैं। ये सिद्धान्त अर्थव्यवस्था की आन्तरिक क्रियाओं की ओर ध्यान दिलाते हैं । हाट्रे ने बैंक साख के संकुचन तथा विस्तार के आधार पर विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है । हायेक के मौद्रिक अति विनियोग सिद्धान्त के अनुसार, मौद्रिक कारणों के प्रभाव में जब विनियोग अत्यधिक बढ़ जाता है तो आर्थिक संकट उत्पन्न होता है और नीचे की ओर पतन आरम्भ हो जाता है । हाट्रे तथा हायेक के व्यापार चक्र के सिद्धान्त, व्यापार चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त कहे जा सकते हैं । स्पीथोफ, कैसल्स तथा रॉबर्टसन ने वास्तविक अति विनयोग सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत की है । हॉकन, स्वीजी फॉस्टर तथा कैचिंग्स ने आय के विवरण की असमानताओं के कारण उपभोग में कमी अथवा बचत में वृद्धि को व्यापार चक्र का कारण माना है और अल्प उपभोग सिद्धान्त प्रस्तुत किया है । पीगू बेजहॉट तथा बेवरिज जैसे अर्थशास्त्रियों ने मनोवैज्ञानिक कारणों (व्यापारिक आशावादिता तथा निराशावादिता) को व्यापार चक्र का आधार मानते हुए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है । ये सभी सिद्धान्त किसी एक आन्तरिक कारण के आधार पर व्यापार चक्र की आख्या प्रस्तुत करते हैं, इसलिए केवल आंशिक रूप से ही सत्य है । केन्स ने आर्थिक उतार-चढ़ाव उत्पन्न करने वाले अनेक आन्तरिक तत्वों की व्याख्या एक साथ प्रस्तुत की है, परन्तु पूँजी की सीमान्त क्षमता की अस्थिरता को उतार-चढ़ाव का मुख्य कारण माना है । आधुनिक अर्थशास्त्री हिक्स ने व्यापार चक्र को गुणक एवं त्वरक की परस्पर क्रिया का परिणाम माना है ।

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों को दो भागों में बांटा जा सकता है, मौद्रिक सिद्धान्त तथा अमौद्रिक सिद्धान्त । इस इकाई में हम केवल मौद्रिक सिद्धान्तों पर ही प्रकाश डालेंगे ।

10.6 आर.जी. हॉट्रे का विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त

अंग्रेज अर्थशास्त्री आर.ज़ी. हॉट्रे ने व्यापार चक्र का विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है । हॉट्रे ने व्यापार चक्र को एक विशुद्ध मौद्रिक विषय माना है क्योंकि आर्थिक क्रियाओं के स्तर में सभी परिवर्तन मुद्रा की मात्रा या मुद्रा के प्रवाह में होने वाले परिवर्तनों का परिणाम होते हैं । मुद्रा की मात्रा अथवा प्रवाह प्रभाविवित करने वाला प्रमुख तत्व बैंकों द्वारा किया गया साख निर्माण होता है । बैंक साख में परिवर्तन होने पर उपभोक्ताओं की आय तथा व्यय में परिवर्तन होते हैं जिससे महत्वपूर्ण मांग प्रभावित होती है । व्यापारियों द्वारा स्टॉक रखने की मांग में भी परिवर्तन हो जाता है । व्यापार चक्र पर अमौद्रिक कारण भी अपना प्रभाव साख की मात्रा के माध्यम से व्यक्त करते हैं । साख व्यवस्था की अस्थिरता मुद्रा के प्रभाव में परिवर्तन लाती है जिससे मौद्रिक संतुलन बिगड़ जाता है । मौद्रिक संतुलन बिगड़ जाने से अस्थिरता उतन्न होती है । बैंक साख का विस्तार अन्त में समृद्धि को उत्पन्न करता है और बैंक साख में

संकुचन का इसके विपरीत प्रभाव पड़ता है । हाट्रे ने मौद्रिक सिद्धान्त की क्रियाशीलता में ब्याज दर को बहुत महत्व दिया है ।

व्यापार चक्र की मौद्रिक व्याख्या विशेष रूप से प्रसिद्ध अंग्रेज अर्थशास्त्री राल्फ जार्ज हाट्रे के मतानुसार, व्यापार चक्र एक विशुद्ध मौद्रिक घटना है । उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया है कि अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र मुद्रा की पूर्ति के चक्रीय प्रवाह में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों का परिणाम होता है । हाट्रे के अनुसार, मुद्रा की कुल मांग (PT) मुद्रा की कुल पूर्ति (MV) के समान, अर्थात MV=PT होने के कारण जब तक अर्थव्यवस्था में मुद्रा को कुल पूर्ति (MV) स्थिर रहेगी तब तक चक्रीय उच्चावचन कदापि विद्यमान नहीं रहेंगे । परन्तु हाट्रे के मतानुसार, अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल पूर्ति को स्थिर रखना बहुत कठिन है । मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तन अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं के आकार में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों का एक मात्र कारण है । हाट्रे के अनुसार अर्थव्यवस्था में मन्दी के उत्पन्न होने का एक मात्र कारण उपभोक्ताओं के कुल व्यय में कमी का होना है जिसका प्रमुख कारण मुद्रा की कुल मात्रा (M) तथा इसके संचलन वेग (v) में परिवर्तन का होना होता है । इसके विपरीत अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार तथा अभिवृद्धि की अव्यस्थाएं उपभोक्ताओं द्वारा अधिक व्यय करने के कारण उत्पन्न होती है । उपभोक्ता अधिक व्यय उस समय करते हैं जब मुद्रा की मात्रा तथा इसके संचलन वेग में वृद्धि हो जाने के कारण उनकी ट्रक आय में वृद्धि हो जाती हैं हाट्रे के अनुसार, मन्दी तथा अभिवृद्धि अर्थव्यवस्था में मुद्रा अवस्फीति तथा मुद्रा स्फीति के उत्पन्न होने का एक मात्र परिणाम है ।

विस्तार तथा समृद्धि की अव्यस्था तब उतन्न होती है जब बैंकों द्वारा साख का विस्तार किया जाता है और इसके लिए ब्याज दरों में कमी की जाती है । व्याज दर में कमी के कारण व्यापारियों द्वारा अधिक ऋण की मांग की जाती हैं वे माल का अधिकाधिक स्टॉक करने लगते हैं । माल की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए उत्पादन का विस्तार किया जाता है जिससे रोजगार बढ़ता है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है । इससे मांग और बढ़ती है तथा व्यापारियों को स्टॉक बढ़ाने के लिए और प्रोत्साहन मिलता है । बढ़ती हुई आर्थिक क्रियाएं मांग में वृद्धि लाती है और मांग में वृद्धि से आर्थिक क्रियाएं और रहती है । इस प्रकार विस्तार का संचयी क्रम तब तक क्रियाशील रहता है जब तक कि बैंक साख का विस्तार ही व्यापारियों की कीमतों से सम्बन्धित आशंसाओं तथा उनकी बिक्री के आकार (अथवा उपभोक्ताओं के व्यय) को प्रभावित करता है ।

प्रतिसार अथवा सुस्ती की अवस्था उस समय उत्पन्न होती है जब बैंकों द्वारा साख का विस्तार करना रूक जाता है । ऋणों की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि का बैंकों की तरलता स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । बैंकों को अपनी स्थिति दृढ़ बनाने के लिए अपनी साख नीति कठोर कर देनी पड़ती है । बाज दरें बढ़ा दी जाती है । केन्द्रीय बैंक द्वारा भी बैंक दर में वृद्धि कर दी जाती है । परिणामस्वरूप साख का विस्तार रूक जाता है । हाट्रे के अनुसार बैंकों के तरल अथवा नकद कोषों में कमी होने का प्रमुख कारण यह होता है कि मज़दूरियां बढ़ने से मजदूरों की नकदी की मांग बढ़ जाती है और वे नकदी अपने पास रखने लगते हैं ।

संकुचन अथवा मन्दी की अवस्था साख के अत्यधिक संकुचन का परिणाम होता हैं व्यापारियों द्वारा स्टॉक रखने की मांग घटा दी जाती है । पर्याप्त मांग के अभाव में कीमतें व लाभ गिरने लगते हैं । उत्पादन, रोजगार व आय के स्तर गिर जाते हैं । आय में कमी होने पर उपभोक्ताओं की मांग तथा व्याय की मात्रा भी गिर जाती है, जिससे कीमतें व लाभ और भी अधिक गिरते हैं । इस प्रकार संकुचन की प्रक्रिया का रूप संचयी हो जाता और अर्थव्यवस्था संकुचन के विषम चक्र में फंस जाती है ।

उत्थान तभी सम्भव हो सकता है जब बैंक नीची ब्याज दर पर साख का विस्तार करने को तैयार हो जायें । मन्दी काल में बैंकों के पास नकद कोष इकट्ठे हो जाते हैं और ब्याज दर नीची होती है । केन्द्रीय बैंक भी दर में कमी तथा प्रतिभूतियों के क्रय के द्वारा बैंकों की तरलता में वृद्धि करने की नीति अपनाता है । व्यापारी तथा उत्पादक जैसे ही ऋणों की मांग करने लगते हैं और बैंक उनकी मांग को पूरा करने लगते हैं, उत्थान का क्रम आरम्भ हो जाता है ।

हाट्रे ने गतिरोध (Realit deadlock) की स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना पर भी विचार किया है । यह वह स्थिति है जिसमें ब्याज दर में कितनी ही कमी कर देने पर व्यापारियों द्वारा ऋणों की मांग नहीं बढ़ायी जा सकती है । यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कीमतों में तेजी से गिरावट हो रही हो तथा मांग काफी गिर गयी हो । इस प्रकार की स्थिति की सम्भावना को स्वीकार करते हुए हाट्रे का विचार है कि ऐसा बहुत कम होता है कि सुलभ मुद्रा नीति के द्वारा उत्थान को प्रोत्साहित न किया जा सके ।

- आलोचना

हाट्रे का सिद्धान्त व्यापार चक्र का तर्कपूर्ण ढंग से विश्लेषण करता है और विस्तार तथा संकुचन की संचयी प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है । परन्तु इस सिद्धान्त में अनेक त्रुटियां भी है । जिनके कारण इसकी आलोचना की जाती है ।

(1) हाट्रे ने व्यापार चक्र को एक विशुद्ध मौद्रिक विषय माना है जबकि वास्तविकता यह है कि व्यापार चक्र पर मौद्रिक तत्वों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के आन्तरिक तथा बाह्य अमौद्रिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है । हाट्रे का सिद्धान्त एकांगी अथवा अधूरा कहा जा सकता है ।

(2) हाट्रे ने थोक विक्रेताओं अथवा व्यवसायियों की भूमिका पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है । अर्थथवस्था के सभी अंगों की ओर ध्यान न देना हाट्रे के सिद्धान्त की सबसे बड़ी दुर्बलता है ।

(3) ब्याज दर में परिवर्तन के प्रति व्यवसायियों की चेतनाशीलता की मात्रा को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताया है । स्टॉक रखने की इच्छा बहुत बड़ी मात्रा में कीमतों में परिवर्तनों की सम्भावनाओं तथा स्टॉक रखने की लागतों पर निर्भर करती है । ब्याज दर में परिवर्तनों का प्रभाव तभी पड़ता है जब व्यापारी के पास स्टॉक रखने के लिए अपनी पूँजी न हो।

(4) माल के स्टॉक में परिवर्तन अर्थव्यवस्था पर इतना अधिक प्रभाव नहीं डालते हैं कि उनके कारण प्रमुख व्यापार चक्र उत्पन्न हो जाये । अधिक से अधिक लघु चक्र उत्पन्न हो सकते हैं ।

(5) बैंक साख व्यापार चक्रों को आरम्भ करने का कारण नहीं है बल्कि व्यापार चक्रों का परिणाम होती है । साख का विस्तार प्राय: व्यापारिक विस्तार के बाद होता है और व्यापारिक संकुचन की स्थिति उतन्न होने पर साख का भी संकुचन होता है ।

(6) व्यापारिक अनुभव से यह पता चलता है कि ब्याज दरों में वृद्धि आर्थिक संकट के बाद होती है, पहले नहीं । इसी प्रकार ब्याज दर में परिवर्तन आर्थिक संकट का कारण नहीं अपितु परिणाम होता है ।

(7) व्यावहारिक अनुभव से यह भी सिद्ध होता है कि साख का संकुचन मन्दी की स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकता और न ही साख के विस्तार के द्वारा उत्थान सम्भव होता है । साख संकुचन के द्वारा तेजी की गति को धीमा करने में कुछ सफलता मिल सकती है, परन्तु साख विस्तार के द्वारा मन्दी की दशा को तेजी में बदलना लगभग असम्भव सा होता है ।

(8) वर्तमान परिस्थितियों में जबकि व्यापारिक संस्थाएं अपने पास पर्याप्त संचित कोष रखती है और गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं का विकास हो रहा है, बैंक साख के महत्त्व में कमी हो रही है । व्यापार चक्रों की पूरी जिम्मेदारी बैंकों पर डाल देना उचित नहीं है।

हाट्रे द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अपूर्ण होते हुए भी इस दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है कि यह मुद्रा की पूर्ति की लोच को आर्थिक उतार-चढ़ाव के क्रम के साथ सम्बन्धित करता है ।

10.7 एफ.ए. हेयक का मौद्रिक अति विनियोग सिद्धान्त

मौद्रिक अति विनियोग सिद्धान्त के आधार पर भी अनेक अर्थशास्त्रियों ने व्यापार चक्रों का विश्लेषण किया है । इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थक व प्रतिपादक आस्ट्रिया के अर्थशास्त्री प्रो. एफ.ए. हेयक हैं । यह सिद्धान्त भी एक मौद्रिक सिद्धान्त है, क्योंकि यह भी मौद्रिक अति व्यापार चक्रों को साख व्यवस्था की लोच के साथ सम्बन्धित करता है ।

फ्रीडरिक ए. वॉन हेयक की व्यापार चक्रों की व्याख्या के अनुसार मुद्रा की पूर्ति में बैंक ऋणों के परिणामस्वरूप विशुद्ध वृद्धि होने के कारण अर्थव्यवस्था में कुल उपभोग की अपेक्षा कुल निवेश अधिक हो जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि भारी पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा उपभोग वस्तु उद्योगों के मध्य असंतुलन उत्पन्न हो जाता है । हेयक के विचारानुसार चक्रीय उच्चावचन मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के लम्बा अथवा छोटा हो जाने के परिणाम है । जब बैंकों द्वारा अत्यधिक साख मुद्रा का सृजन करने के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति कुल ऐच्छिक बचत की अपेक्षा अधिक हो जाती है तो प्राकृतिक अथवा साम्य ब्याज की दर तथा बाजार ब्याज की दर में असमानता उत्पन्न हो जाती है ।

हेयक के विचारानुसार, अभिवृद्धि की अवस्था में जो स्वयं उत्पादन के ढांचे के छोटा हो जाने का परिणाम होती है, बैंकों द्वारा साख मुद्रा की पूर्ति में ऐच्छिक बचत की पूर्ति की अपेक्षा अधिक वृद्धि करने के परिणामस्परूप ब्याज की बाजार दर के ब्याज की वास्तविक दर की तुलना में कम हो जाने के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में निवेश में सहसा अत्यधिक वृद्धि हो जाती है

। बाजार ब्याज की दर में कमी हो जाने के परिणामस्वरूप निवेशकर्त्ता उन क्षेत्रों में भी निदेश करने लग जाते हैं जिनमें यदि बाजार आज दर में कमी नहीं हुई होती तो उन्होंने कदापि निवेश नहीं किया होता । इसका यह परिणाम होता है कि अर्थव्यवस्था में कुल निवेश का कुल ऐच्छिक बचत से अधिक हो जाता है । निवेश में अत्यधिक वृद्धि हो जाने से उत्पादन प्रक्रिया अधिक लम्बी हो जाती है । हेयक के विचारानुसार उत्पादन प्रक्रिया लम्बाई में हुई यह वृद्धि जो ऐच्छिक बचत पर आधारित नहीं होकर बैंकों द्वारा साख मुद्रा का सृजन करने पर आधारित होती है तथा अस्थिर होती है एवं कुछ समय पश्चात् उत्पादन में कमी हो जाने से अर्थव्यवस्था में मन्दी को उत्पन्न करती है । दूसरे शब्दों में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न अभिवृद्धि की स्थिति मन्दी की स्थिति को जन्म देती है । अभिवृद्धि की यह स्थिति अर्थव्यवस्था में केवल उस समय तक, विद्यमान रह सकती है जब तक कि बाजार ब्याज की दर प्राकृतिक ब्याज की दर की अपेक्षा कम रहती हैं परन्तु बाजार ब्याज की दर प्राकृतिक ब्याज की दर से सदैव कम नहीं रह सकती है, क्योंकि बैंक अनिश्चित समय तक साख मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि नहीं कर सकते हैं । परन्तु प्रश्न यह है कि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि जो उद्यमकर्त्ताओं को उत्पादन प्रक्रिया को अधिक लम्बी करने की प्रेरणा देती है । अन्त में उद्यमियों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया को छोटा करने के लिए दिशा करके मन्दी की घटना को किस प्रकार जन्म देती है ।

साख मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप मुद्रा की पूर्ति में दो प्रकार से वृद्धि हो सकती है । प्रथम यह साख मुद्रा उद्यमकर्त्ताओं को कम ब्याज की दर पर ऋणों के रूप में प्रदान की जा सकती है तथा उनके द्वारा उत्पादन साधनों के स्वामियों की आयों के रूप में उपभोक्ताओं को प्राप्त हो जाएगी । दूसरा यह साख मुद्रा प्रत्यक्ष रूप में उपभोक्ताओं को उपभोक्ता साख मुद्रा के रूप में दी जा सकती है । यद्यपि इन दोनों में से किसी भी विधि को अपनाया जा सकता है । परन्तु अंतिम परिणाम समान होंगे । जब अधिक साख मुद्रा कम ब्याज की दर पर उद्यमकर्त्ताओं को प्राप्त होती है तो दे अपनी निवेश क्रियाओं में वृद्धि करते हैं ऐसा होने से उत्पादन विधि पहले से अधिक पूँजी प्रधान हो जाती है तथा इसके कारण उत्पादन प्रक्रिया अधिक लम्बी बन जाती है । परिणामस्वरूप, पूँजीगत बच्चों की मांग में उपभोग वस्तुओं की मांग की तुलना में अधिक वृद्धि हो जाती है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि पूँजीगत अथवा उत्पादन वस्तुओं की कीमतों में उपभोग वस्तुओं की कीमतों की तुलना में अधिक वृद्धि हो जाती है तथा उद्यमकर्त्ताओं को पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन करना उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करने की अपेक्षा अधिक लाभप्रद सिद्ध होने लगता है । परिणामस्वरूप उत्पादन साधनों का व्ययवर्तन उपभोग वस्तु उद्योगों से पूँजीगत वस्तु उद्योगों की ओर हो जाता हैं इसका यह परिणाम होता है कि उपभोग वस्तु में साधनों की कमी हो जाती है तथा उपभोग वस्तुओं की पूर्तिमें कमी हो जाती है । इसके विपरीत जब मुद्रा की अतिरिक्त पूर्ति उद्यमकर्त्ताओं द्वारा पूँजीगत वस्तुओं पर व्यय किये जाने के कारण उत्पादन साधनों के स्वामियों को पारितोषिकों के रूप में प्राप्त होकर क्रयशक्ति का रूप धारण कर लेती है तो उपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि हो जाती है । उत्पादन साधनों की आयों में वृद्धि हो जाने से उत्पादन साधनों के स्वामी अधिक खर्च करते हैं क्योंकि उपभोग व्यय की मात्रा आय के स्तर पर आश्रित होती है ऐसा होने से उपभोग वस्तु उद्योग अधिक उत्पादन साधनों को प्राप्त करने

के लिए पूँजीगत वस्तु उद्योगों से प्रतियोगिता करने लगते हैं । परन्तु अर्थव्यवस्था में साधनों की मात्रा सीमित होने के कारण इनकी मांग में वृद्धि हो जाने के परिणामस्वरूप उत्पादन साधनों की कीमतों में वृद्धि हो जाती है । इसका परिणाम यह होता है कि पूँजीगत वस्तु उद्योगों के उत्पान में वृद्धि हो जाती है तथा पूँजीगत वस्तुओं के विनिर्माताओं के लाभों में कमी हो जाती है । जब यह घटना अर्थव्यवस्था में विद्यमान होती है तभी बैंकिंग प्रणाली साख मुद्रा सृजन की गति में कमी करने का निर्णय करती है तथा बाजार बाज की दर प्राकृतिक ब्याज की दर की तुलना में अधिक हो जाती है ऐसा होने से उद्यमकर्त्ता अपने निवेशों में कमी कर देते हैं, उत्पादन प्रक्रिया छोटी हो जाती है तथा अर्थव्यवस्था में मन्दी विद्यमान हो जाती है । यदि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप मुद्रा बढ़ी हुई मात्रा उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त हो जाती है तो उपभोग वस्तुओं की मांग पूँजीगत वस्तुओं की मांग की अपेक्षा अधिक हो जाने के कारण प्रथम श्रेणी की वस्तुओं की कीमतों में दूसरी श्रेणी की वस्तुओं की कीमतों की तुलना से अधिक वृद्धि हो जाती हैं इसका परिणाम यह होता है कि उपभोग वस्तुओं के विनिर्माता उपभोग वस्तुओं में उन उत्पादन विधियों को अपनाकर जिनके द्वारा उत्पादन शीघ्र हो सकता है, भले ही ये उत्पादन विधियां उत्पादकता तथा कार्यक्षमता की दृष्टि से कम उत्तम कयों न हो, वृद्धि करने का भरसक प्रयास करते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि विनिर्माता उत्पादन की प्रत्यक्ष अथवा श्रम प्रधान विधियों को, जिनके परिणामस्वरूप उत्पान प्रक्रिया छोटी हो जाती है तथा आर्थिक मन्दी को जन्म देती है, अपनाते लगते हैं ।

हेयक का व्यापार चक्र सिद्धान्त यह व्यक्त करता है कि मन्दी तथा समृद्धि की यथाक्रम घटनाएं उत्पादन प्रक्रियाओं की लम्बाई में कमी अथवा वृद्धि, जो स्वयं मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि अथवा कमी होने के कारण बाजार ब्याज की दर के साम्य अथवा प्राकृतिक ब्याज की दर की तुलना में कम अथवा अधिक होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है, होने का परिणाम है । मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने के कारण उत्पादन प्रक्रिया की लम्बाई में होने वाली वृद्धि अस्थायी होने के कारण उत्पादन प्रक्रिया में छोटाई की घटना उत्पन्न हो जाती है । हेयक के विचारानुसार मुद्रा की पूर्ति को स्थिर रखा जाना चाहिए । इसकी पूर्ति में केवल वे ही परिवर्तन होने चाहिए जो इसके वेग में होने वाले परिवीर्तनों को नष्ट करने के लिए आवश्यक है ।

इस प्रकार, बैंकों द्वारा मुद्रा पूर्ति को तटस्थ न रखने से ही व्यापार चक्र उत्पन्न होता है । मुद्रा की तटस्थता बनाये रखने के लिए इस बात की आवश्यकता होती है कि मुद्रा की मात्रा में कोई भी अनावश्यक परिवर्तन न होने दिया जाए ।

- **आलोचना**

  हेयक का सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है । इसकी मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं-

  (1) हेयक के सिद्धान्त की मान्यता यह है कि बचत और विनियोग संतुलन में रहते हैं परन्तु बैंकों की साख नीति इस संतुलन को बिगाड़ देती है । यह विचार ठीक नहीं है । यह आवश्यक नहीं है कि बैंकों द्वारा साख निर्माण सदैव कीमतों में स्फीतिक वृद्धि उत्पन्न करें ।

  (2) पूँजीगत पदार्थो की मांग तथा उपभोग पदार्थो की मांगों के बीच प्रतियोगिता, साधनों के स्थानान्तरण तथा उत्पादन ढांचे में बिगाड़ से सम्बन्धित मान्यताएं भी सही नहीं हैं ।

वास्तव में विनियोग एवं उपभोग एक-दूसरे की पूरक क्रियाएं हैं, विरोधी नहीं । एक प्रकार की वस्तुओं की मांग बढ़ने पर दूसरे प्रकार की वस्तुओं की मांग भी बढ़ती है ।

(3) इस सिद्धान्त का विश्लेषण पूर्ण-रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है । यदि पूर्ण रोजगार से कम की स्थिति को आधार माना जाता है तो व्याख्या अधिक यर्थाथपूर्ण हो सकती थी।

(4) ब्याज दर को विनियोग के निर्धारण में प्रमुख तल माना गया है । वस्तुत: विनियोग अनुमानित लाभ की दृष्टि से किये जाते हैं और लाभ की मात्रा अनेक तत्वों पर निर्भर करती है जिसमें बाज दर केवल एक तत्व है ।

(5) पूँजीगत पदार्थो के उद्योगों तथा उपभोग पदार्थो के उद्योगों के बीच साधनों की गतिशीलता इतनी अधिक नहीं होती है जितनी कि हेयक ने मानी है ।

(6) यह सिद्धान्त व्यापार चक्र की एक पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता है, क्योंकि यह केवल कुछ ही तत्वों पर जोर देता है, व्यापार चक्र की सभी अव्यस्थाओं की व्याख्या नहीं करता । विशेष रूप से यह सिद्धान्त मन्दी की स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं करता है ।

उपर्युक्त त्रुटियों के रहते हुए भी हेयक के सिद्धान्त की उपयोगिता यह है कि पूँजी विनियोजन को आर्थिक परिवर्तनों का कारण बताया गया है जो पूर्णत: सही दृष्टिकोण है । यह सिद्धान्त इस बात पर भी जोर देता हे कि स्थिर एवं स्थायी विकास के लिए अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय संतुलन बनाये रखना आवश्यक है ।

10.8 सारांश (Summary)

इस इकाई में हमने व्यापार चक्र के बारे में व्यवस्थित अध्ययन करने वाले विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचारों एवं उनके सिद्धान्तों का अध्ययन करने का प्रयास किया है । इस क्रम में इस इकाई में सर्वप्रथम व्यापार चक्र की अवधारणा को स्पष्ट करने के बाद व्यापार चक्र के विभिन्न प्रकार - जगलर चक्रकिचिन चक्र, दीर्घ लहरें एवं बिल्डिंग चक्र के बारे में जानकारी प्राप्त की है । व्यापार चक्र के बारे में शुम्पीटर द्वारा प्रतिपादित विभिन्न चरण जैसे समृद्धि, सुस्ती, मन्दी एवं पुनरुत्थान के बारे में चर्चा की । इस इकाई में हाट्रे के आपार- चक्र सम्बन्धी सिद्धान्त की विस्तृत चर्चा करने के बाद हेयक के सिद्धान्त के बारे में जानकारी दी गेई है । इन सिद्धान्तों में दृष्टिगोचर हुई कमजोरियों का भी यहां उल्लेख किया गंया है ।

10.9 शब्दावली (Glossary)

आवर्ती	Recurring
आर्थिक संकट	Economic Panics
व्यापार में प्रतिकर्षण अथवा खिंचाव	Revalsions in Trade
चक्रीय	Cyclical
समक्रमिता	Synchronism
साख चक्रों	Credit Cycles

प्रमुख चक्र	Major Cycles
जगलर चक्र	Juglar Cycles
लघु चक्र	Minor Cycles
दीर्घ लहरें	Long Waves
निर्माण कार्य चक्र	Building Cycles
समय क्रम	Time Sequence
परावर्तन बिन्दु	Turning Point
शिखर	Peak
गर्त	Trough
मन्दी	Depression
संकुचन	Contraction
पुनरुत्थान	Recovery or Revinal
समृद्धि	Prosperity
तेजी	Boom
विस्तार	Expansion
प्रतिसार	Recession

10.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

Edward Shapiro, "Microeconomic Analysis" 15th ed.,1985, ch-18.

Michael K. Evans, "Microeconomic Activity"1969, ch-14.

Jhon R.Hicks, "A Contribution to the Theory of Trade Cycle", 1950.

Stanley Bober,"The Economics of Cycles and growth, 1968,Ch-8.

Paul A Samuelson, "Interaction between the Multiplier Analysis and the principle of Acceleration," "The review of Economic Statistics, "May, 1939, pp75-78,Reprinted in Mh.

Mueller (ed.) Reading in Macroeconomics, 1966, pp259-264.

Nicholas Kaldor "Model of the Trade cycle" the Economics Journal, March 1940, pp78-92.

J.M.Keynes, "The General Theroy of Employment, Interest and Money", 1936, ch-22.

M.L. Seth, "Macro Economics". 19th ed. 1999, pp473-492.

एम.सी. वैश्य "समष्टि अर्थशास्त्र 6th ed.

टी.टी. सेठी, "मेक्रो अर्थशास्त्र"10th edch-22

लक्ष्मीनारायण नथुरामका, "संमष्टि अर्थशास्त्र" 2nd ed.ch-14

10.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यापार चक्र की प्रमुख विशेषताएं बताइए तथा एक व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का भी उल्लेख कीजिए ।
2. "व्यापार चक्र एक पूर्णत: मौद्रिक है ।" -हाट्रे । क्या आप इस विचार से सहमत है?
3. आपार चक्र को प्रभावित करने वाले प्रमुख तब कौन-कौन से है?
4. व्यापार चक्र के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए । आपके विचार में व्यापार चक्र की सबसे अधिक सन्तोषजनक व्याख्या कौन-सी है?
5. व्यापार चक्र किसे कहते है इस सम्बन्ध में एक व्यापार चक्र की चार अवस्थाओं -हल्की मन्दी, निम्नतम बिन्दु विस्तार या पुनरूत्थान व चोटी के बिन्दु के लक्षण स्पष्ट कीजिए ।
6. हेयक के मौद्रिक अति विनियोग सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए ।

इकाई -11

हिक्स एवं सेम्युल्सन का व्यापार चक्र सिद्धान्त
(Hick's and Samuelson's Theory of Trade Cycle)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त

11.2.1 हिक्स का मॉडल

11.2.2 मान्यताएं

11.2.3 हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त का रेखाचित्रीय स्वरूप

11.3 हिक्स के सिद्धान्त की आलोचना

11.4 सेम्युल्सन का व्यापार चक्र सिद्धान्त

11.4.1 मान्यताएं

11.4.2 सेम्युल्सन का मॉडल

11.4.3 सेम्युल्सन के मॉडल का रेखाचित्रीय स्वरूप

11.5 सेम्युल्सन के व्यापार चक्र सिद्धान्त की आलोचना

11.6 हिक्स एवं सेम्युल्सन की व्याख्याओं में अन्तर

11.7 सारांश

11.8 शब्दाश्ली

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य (Objectives)

आर्थिक जगत अथवा अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय एवं रोजगार के क्षेत्र में उच्चावचन एक सामान्य घटना है । उत्पादन एवं आय के स्तर कभी एक समान नहीं होते हैं । यह उच्चावचन जब तक एक निश्चित सीमा में रहते हैं, तब इनकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता, परन्तु जब यह उच्चावचन अधिक हो अथवा तेजी से होने लगते हैं तो हम सभी का ध्यान आकृर्षित करते हैं । अर्थशास्त्रियों विशेषकर कीन्स के पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया कि अर्थव्यवस्था में आय एवं उत्पादन के स्तर पूर्ण रोजगार के स्तर से कम हो सकते हैं, परन्तु यह स्थिति अधिक लम्बे समय तक नहीं रहती, अर्थात यह घटना अस्थाई है । परम्परावादी अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का यह तर्क था कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में स्वचालित शक्तियां सदैव अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने में समर्थ होती है । इस प्रकार आर्थिक उच्चावचन की समस्या अस्थाई होती है यह कोई गम्भीर मामला नहीं है ।

19वी शताब्दी में कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संकटों का विश्लेषण किया परन्तु वे इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर सके । 1860 में जगलर ने अपनी पुस्तक में आपार चक्रों के बारे में उल्लेख किया था । व्यापार चक्र की धारणा एवं उसके चरणों के बारे में हम इसके पूर्व इकाई संख्या 10 में चर्चा कर चुके हैं । इस इकाई का उद्देश्य हिक्स एवं सेम्युल्सन के व्यापार चक्र सम्बन्धी मॉडल से आपका परिचय कराना है । इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- हिक्स के एवं सेम्युल्सन के गुणक एवं त्वरक की अन्तःक्रिया पर आधारित व्यापार चक्र की व्याख्या को समझ सकेंगे
- जान सकेंगे कि हिक्स एवं सेम्युल्सन ने किन मान्यताओं के आधार पर अपने सिद्धान्त का निर्माण किया,
- सिद्धान्त के समीकरणों एवं रेखाचित्रीय स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे,
- हिक्स एवं सेम्युल्सन की व्याख्याओं में अन्तर को जान सकेंगे; एवं
- हिक्स एवं सेम्युल्सन के सिद्धान्त की समीक्षा कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त सम्बन्धी विचार उसकी पुस्तक "A Contribution to the Theory of Trade Cycle" में मिलते हैं । इस पुस्तक का प्रकाशन 1950 में हुआ था इस मॉडल का आज भी महत्वपूर्ण स्थान है । हिक्स के अनुसार उतार-चढाव जो विकास की रेखा के ऊपर अथवा नीचे होते हैं उन्हें व्यापारचक्र की श्रेणी में लिया जाता है । हिक्स ने यह मत व्यक्त किया कि उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया का आधारभूत कारण गुणक-बरक की अन्योय क्रिया है । व्यापार चक्रों की प्रवृत्ति में इतनी नियमितता पाई जाती है कि स्वायत्त निवेशों के समय-समय पर लग सकने बाते झटकों के कारणों के आधार पर इनकी वैज्ञानिक व्याख्या कर पाना कठिन है । अर्थव्यावस्था के लिए दीर्घकालिक साम्य विकास का निर्धारण स्वायत्त निदेश (Autonomous Investment) की वृद्धि दर (Growth Rate) के द्वारा होता है । साम्य आय (Equilibrium Income) तथा स्वायत्त निदेश का अनुपात लरक (Accelerator) एवं गुणक (Multiplier) के आकार (Size or Value) पर निर्भर करना है । हिक्स का सिद्धान्त त्वरक एवं गुणक की पारस्परिक अन्तःक्रिया के आस-पास ही रहता है । सेम्युल्सन ने हिक्स से पूर्व मई 1939 में प्रसिद्ध आर्थिक पत्रिका The Review of Economics and Statistics के Vol xxi में प्रकाशित एक लेख "Interaction between the Multiplier Analysis and Principle of Acceleration" में व्यक्त किए थे। सेन्यूल्सन के सिद्धान्त में कुल निदेश को कुल उपभोग व्यय में हुवे परिवर्तनों से सम्बन्धित किया गया है जबकि हिक्स ने कुल निवेश का सम्बन्ध कुल आय में परिवर्तन के साथ जोडा है । कीन्स ने आय परिवर्तनों के लिए पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) के आधार पर निवेश के माहौल में परिवर्तन से आय एवं रोजगार में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया था ।

भविष्य के लिए आशावादी दृष्टिकोण के कारण जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) ऊँची होती है तो इसका सीधा अभिप्राय यह है कि व्यापारी वर्ग वर्तमान में निवेश को फायदेमन्द मानता है अर्थात् लाभ की धारणा है । ऐसी स्थिति में व्यापारी वर्ग नया निदेश करने लगता है । निवेश में वृद्धि का प्रभाव गुणक प्रक्रिया के कारण' आय एवं रोजगार स्तर पर पड़ता है इससे अर्थव्यवस्था में नवीन आशा का संचार होता है एवं अर्थव्यवस्था में तेजी की धारणा बनती है । अब प्रश्न यह है कि यह गुणक प्रक्रिया विपरीत कब एवं क्यों हो जाती है? एवं तेजी अचानक मंदी क्यों लाती है? हम सभी यह अध्ययन कर चुके हैं कि व्यक्ति अपनी समूर्ण आय उपभोग पर व्यय नहीं करता है उसमें से वह 'बचत भी करता है । अन्य शब्दों में उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC) का मूल्य इकाई से कम (Less than one, O<MPC<1) होता है । इस वजह से उपभोग वस्तुओं की मांग उत्पत्ति अथवा आय स्तर के अनुपात में कम बढ़ पाती है उत्पत्ति तथा मांग का अन्तराल अन्ततः मंदी की धारणा को जन्म देता है । मंदी की धारणा बनने पर व्यापारी मुनाफे में कमी अथवा हानि होने की सोचने लगता है अर्थात पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) में कमी की धारणा बना लेता है (स्मरण रहे यह केवल आशावादिता है वास्तविक हानि या लाभ नहीं है) इसके परिणामस्वरूप वह नया निवेश करने को तैयार नहीं होता । निवेश की कमी से गुणक क्रिया के कारण आय व रोजगार में कई गुणा अधिक कमी आ जाती है एवं संकुचन प्रारम्भ हो जाता है ।

सेम्युल्सन के कीन्स के उपर्युक्त विश्लेषण पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया । सेमुल्सन ने माना कि व्यापार चक्रों में जिस गति से एवं जिस मात्रा में आर्थिक उतार-चढाव उत्पन्न होते हैं उन्हें मात्र कीन्स की (MEC) अथवा गुणक की क्रियाशीलता के आधार पर समझना कठिन है । सेमुल्सन गुणक के साथ त्वरक (Accelerator) को सम्मिलित कर अपने सिद्धान्त का निर्माण करते हैं ।

11.2 हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त (Hicks' Theory of Trade Cycle)

11.2.1 हिक्स का मॉडल

हिक्स के अनुसार "गुणक का सिद्धान्त त्वरक का सिद्धान्त तथा त्वरक का सिद्धान्त चक्रीय उतार-चढावों के सिद्धान्त के ठीक उसी प्रकार दो पहलू है जिस प्रकार कि मूल्य सिद्धान्त के दो पहलू मांग का सिद्धान्त एवं पूर्ति का सिद्धान्त के रूप में हैं ।" हिक्स के अनुसार स्थिर विकास दर के लिए यह आवश्यक है कि वास्तविक बचत दर एवं वास्तविक निवेश दर समान हो । वास्तविक वृद्धि दर में दीर्घकालीन वृद्धि दर गुणक एवं त्वरक की पारस्परिक अन्तःक्रिया से उपयुक्त विकास दर के ऊपर-नीचे घूमता है । दीर्घकालीन संवृद्धि दर में यह उतार-चढ़ाव ही व्यापार चक्र है । जब कभी अर्थव्यवस्था में नवोन्मेषकारी प्रवृत्तियों के कारण स्वायत्त निवेश में असामान्य वृद्धि हो जाती है तो अर्थव्यवस्था अपने दीर्घकालिक संतुलन पथ से विचीलत हो तेजी से ऊपर की ओर बढेगा लगती है । अब प्रश्न यह है कि यह असामान्य वृद्धि क्यों होती है ।

हिक्स के मत में इसका कारण गुणक एवं त्वरक की पाररस्पीरक क्रिया है । हिक्स ने यह माना कि अर्थव्यवस्था में स्वायत्त एवं प्रेरित दोनों प्रकार के निवेश मौजूद रहते हैं । स्वायत्त निवेश पर आय परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं होता है । इसका अभिप्राय यह है कि यह निदेश तो आएगा ही चाहे अर्थव्यवस्था के विकास की दर कुछ भी हो । स्वायत्त निवेश कुल निवेश का वह भाग है जो अर्थव्यवस्था के विकास से असम्बद्ध होता है । स्वायत्त निवेश कितना होगा इसका निर्धारण बाह्यशक्तियों द्वारा होता है । स्वायत्त निवेश को आप स्वतंत्र निवेश कहकर भी सम्बोधित कर सकते हैं । यह आय एवं उत्पादन की वृद्धि अथवा कमी से स्वतंत्र है । हिक्स यह मानते हैं कि 'यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं कि सामान्य परिस्थितियों में होने वाले विशुद्ध निवेश का एक बड़ा भाग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कुल उत्पादन अथवा आय में भूतकाल में हुये परिवर्तनों का परिणाम होता है, फिर भी कुल निवेश का कुछ भाग इनसे स्वतंत्र होता है जिस पर यह प्रमाय नगण्य पढता है । सार्वजनिक निवेश, वह निवेश जो आविष्कारों के कारण होता है और वह निषेश जिसका भुगतान बहुत दीर्घकाल में होता है यह सभी स्वायत्त निवेश है' । 'इसके विपरीत प्रेरित निक्एश कुल आय के स्तर में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर करता है । प्रेरित निदेश की मात्रा अर्थव्यवस्था में उत्पादन वृद्धि दर के साथ-साथ घटती बढ़ती है । यदि उत्पादन वृद्धि अथवा आय वृद्धि की दर ऊँची होगी तो प्रेरित निवेश भी अधिक मात्रा में आएगा एवं यदि यह दर नीची होगी तो प्रेरित पिको कम होगा । व्यापार चक्रों में प्रेरित निवेश की भूमिका होती है क्योंकि इसी पर त्वरक का आचरण निर्भर करता है । उत्पत्ति में वृद्धि उत्तरोतर अधिक प्रेरित निदेश एवं अधिक प्रेरित निवेश से उच्च विकास दर प्राप्त होती है परन्तु एक सीमा के बाद उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण रोजगार स्तर आ जाता है पूर्ण रोजगार का स्तर आने के बाद वृद्धि दर की गीत बनाए रखना सम्भव नहीं होता । इससे विकास की दर में अवरोध उत्पन्न होता है एवं नरक विपरीत दिशा में काम करने लगता है । अर्थव्यवस्था में मंदी का दौर प्रारम्भ हो जाता है।

दीर्घकालिक वृद्धि दर की अपेक्षा उत्पत्ति में तेजी से गिरावट होने से अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता उत्पन्न हो जाती है । इस स्थिति में त्वरक निष्क्रिय हो जाता है एवं अर्थव्यवस्था में उत्पादन में गिरावट केल गुणक का विपरीत दिशा में क्रियाशीलता का परिणाम रह जाता है । उत्पादन की इस दशा में विनिवेश क्योंकि सकल रूप में शून्य से नीचे नहीं जा सकता अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता कुछ समय के लिए बनी रहती है । अर्थव्यवस्था में उत्पाद का निम्नतम बिन्दु स्वायत्त निवेश एवं उससे उत्पन्न गुणक की क्रियाशीलता से उत्पादित उत्पत्ति स्तर द्वारा निर्धारित होता है । तकनीकी नवोन्मेष के अभाव में अर्थव्यवस्था निम्नतम बिन्दु पर बनी रहेगी जब तक अतिरिक्त उत्पादन क्षमता समाप्त नहीं हो जाती । अतिरिक्त क्षमता धीरे-धीरे (घिसावट व्यय अथवा पूँजीगत मशीनों की टूट फूट) के कारण समाप्त हो जावेगी । इसके कारण इस निम्न स्तर के उत्पादन को बनाए रखने के लिए भी पूँजी विनियोजन की आवश्यकता होगी । जैसे ही मशीनों की घिसावट के पुनर्स्थापना के लिए नया निवेश आने लगेगा गुणक व त्वरक की क्रियाशीलता के कारण अर्थव्ययस्था में

---

1. J.R. Hicks (1950)"A Contribution to the Theory of Trade Cycle"p-38

सकारात्मक दौर शुरू हो जाएगा एवं अर्थयवस्था में पुन: तेजी का दौर शुरू हो जावेगा जो तेजी से बड़कर पूर्ण रोजगार को प्राप्त कर लेगा । इस प्रकार तेजी, अवसाद, मंदी एवं पुनरुत्थान जैसी घटनाएं क्रम के अनुसार एक के बाद एक चलती रहती है एवं इसकी गति को विस्फोटक करने में गुणक का एवं उससे अधिक त्वरक क्रिया का हाथ होता है ।

11.2.2 हिक्स के सिद्धान्त की मान्यताएं

हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त की निम्नांकित प्रमुख मान्यताएं हैं-

- अर्थव्यवस्था में दीर्घकालिक संवृद्धि पथ पर बांछित वृद्धि दर से सामान्य अभिवृद्धि की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसका आशय यह है कि वास्तविक बचत दर एवं निवेश दर बराबर बने रहेंगे।
- उपभोग फलन एवं प्रेरित निवेश में समय अन्तराल होगा।
- निवेश पूर्ण रोजगार के स्तर से ऊपर नहीं हो सकता।
- मंदी में विनिवेश प्रतिस्थापन की मात्रा तक ही सीमित रहता है ।
- गुणक एवं त्वरक के मूल्य स्थिर बने रहते है ।

11.2.3 हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त का रेखाचिंत्रींय स्वरूप

हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त के प्रमुख समीकरण निम्नानुसार है-

$$y_t = C_t + I_t$$

$$C_t = bY_{t-1}$$

$$I_t = I_a + W(Y_{t-1} - Y_{t-2})$$

समय अन्तराल युक्त उपयोग फलन का अभिप्राय यह है कि चालू अवधि का उपभोग (C_t) उपभोक्ता द्वारा पिछले वर्ष में अर्जित आय (Y_{t-1}) पर निर्भर होता है। इसी प्रकार प्रेरित निवेश फलन भी अन्तराल युक्त होता है । अर्थात् कुल उत्पादन में परिवर्तन होने के कुछ समय बाद प्रेरित निवेश में पीरवर्तन होता है । हिक्स के मॉडल को रेखाचित्र 11.1 में प्रदर्शित किया गया है ।

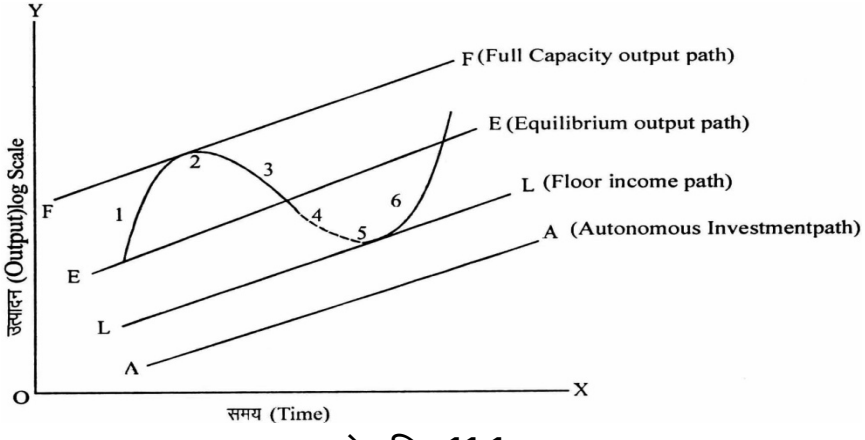

रेखाचित्र 11.1

1 = Accelerator Operative in Uprising (प्रसारकाल)

2 = Moving along ceiling (उच्चतम सीमा)

3 = Accelerator Operative in downswing (संकुचनकाल)

4 = Only Multiplier Operative (गुणक क्रियाशील)

5 = Moving along floor (निम्नतम सीमा)

6 = Accelerator Operative (छनर्पसारकाल)

रेखाचित्र 11.1 में 44 स्वायत्त निवेश (Autonomous Investment) का समय पथ है । EE रेखा AA रेखा पर आधारित कुल उत्पादन का साम्य विकास पथ (Equilibrium Growth Path) है । साम्य पथ का सीधी रेखा में प्रदर्शन का कारण लागीरथ्म माप है । दीर्घकाल में साम्य आय रेखा एवं स्वायत्त निवेश रेखाओं की समान्तर दूरी हिक्स की इस मान्यता पर आधारित है कि दीर्घकालीन आय स्वायत्त निवेश का एक स्थिर गुणक है । इसके मूल्य का निर्धारण गुणक एवं त्वरक की क्रियाशीलता पर निर्भर है । FF रेखा पूर्णरोजगार सीमा को बताती है यह कुल उत्पादन की अधिकतम सीमा है । FF रेखा न्यूनतम आय का मार्ग बताती है अर्थात् यह निम्नतम सीमा है । इन्हीं दो सीमाओं के बीच व्यापार चक्र घूमता है ।

(i) **प्रसार काल** हिक्स के व्यापार चक्र के मॉडल में गुणक एवं त्वरक के मूल्यों को स्थिर माना गया है । गुणक सम्पूर्ण अवधि में क्रियाशील रहता है जबकि त्वरक विस्तार चरण व सुस्ती के वरण की प्रारम्भिक अवस्था में ही क्रियाशील होता है । मंदी के समय त्वरक प्रभावहीन हो जाता हैं प्रसारकाल में दोनों की क्रियाशीता से उत्पादन एवं आय रोजगार की गति तेज हो जाती है । विकास के साम्य पथ पर चल रही अर्थव्यावस्था को गति कैसे मिलती है? हम यह मान लें कि प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था EE रेखा पर है । किसी नवोन्मेषकारी प्रवृत्ति से स्वायत्त निवेश अचानक बड़ जाते हैं । गुणक व त्वरक की संयुक्त क्रियाशीलता के कारण स्वायत्त निवेश की प्रारम्भिक वृद्धि से विस्फोटक वृद्धि होती है इस अबीध में उपभोग जय एवं आय दोनों में वृद्धि होती है । उपभोग व्यय में वृद्धि होने से त्वरक के माध्यम से निवेश व्यय में वृद्धि होती है । गुणक व त्वरक की अन्योय क्रिया से उत्पादन तेजी से बढ़ता हुआ पूर्ण रोजगार संतुलन की सीमा से टकराकर कुछ समय के लिए ऊपरी बिन्दु पर कायम रहता है ।

(ii) **उच्चतम सीमा** उच्चतम सीमा पर पहुँचने के बाद उत्पादन में और अधिक वृद्धि सम्भव नहीं होती एवं उत्पादन में वृद्धि की दर उत्पत्ति की साधनों की उपलब्ध की दर में सामान्य वृद्धि तक सीमित हो जाती है । कुछ समय तक पूर्व के प्रभाव से अर्थव्यवस्था एक स्तर पर बनी रह सकती है । यहाँ उपलब्ध अतिरिक्त क्षमता के कारण निवेश धीमे पड़ जाते हैं । निवेश की प्रत्येक कमी गुणक की क्रियाशीलता के कारण आय एवं उपभोग में कमी लाएगी । त्वरक विपरीत दिशा में क्रियाशील हो जादेगा एवं गिरावट का दौर प्रारम्भ हो जावेगा ।

(iii) **संकुचन प्रक्रिया** आय स्तर की वृद्धि दर में पिछले समयों की अपेक्षा कमी आ जाने से त्वरक विपरीत दिशा में क्रियाशील हो जाता है । आय में कमी के कारण उपभोग में कमी आती है ।गिरावट प्रारम्भ होने के बाद निवेश में कमी हो जाती है परन्तु कुल निवेश शून्य से कम नहीं हो सकता एवं अर्थव्यवस्था में अपनिवेश (Disinvestment) का परिणाम या मात्रा

अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया में घिसी हुई पूँजी की प्रतिस्थापित नहीं की गई राशि से अधिक नहीं हो सकता है । इस प्रकार गिरावट काल में अपनिवेश घर्षण व्यय तक सीमित हो जाता है । उत्पत्ति में हास की अपेक्षा उत्पादन क्षमता में हास कम हो पाएगा ।

- **निम्नतम सीमा की ओर प्रस्थान** गिरावट काल में अर्थव्यवस्था साम्य रेखा पर नहीं रूक पाएगी क्योंकि मंदी के कारण व्यापारी वर्ग में निराशा बाज हो जाती है एवं वे हानि के भय से नये निवेश नहीं करना चाहते हैं । अर्थव्यवस्था में गिरावट का यह क्रम LL रेखा पर जाकर रूकता है जो निम्नतम सीमा है । इस सीमा से नीचे नहीं गिरने का कारण सकारात्मक स्वायत निवेश है । LL रेखा स्वायत्त निवेश एवं गुणक की क्रियाशीलता को प्रदर्शित करती है । यह निम्नतम सीमा है एवं यहाँ से अर्थव्यवस्था पुन: सकारात्मक रुख लेती है ।
- **पुनर्प्रसार** हिक्स के अनुसार स्वायत्त निवेश के कारण निचला बिन्दु परबर्तन बिन्दु होता है । जब तक अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता रहेगी अर्थव्यवस्था निम्नतम स्तर पर घिसटती रहेगी । अन्तत: ऐसी स्थिति आती है जब देश में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता बिल्कुल समाप्त हो जाती है । यहाँ नये निवेश की आवश्यकता अनुभब की जाती है । यही परावर्तन बिन्दु है । जैसे ही नया निवेश आता है गुणक व त्वरक क्रियाशील होकर अर्थव्यवस्था को ऊपर उँची वृद्धि दर की ओर धकेल देते हैं ।

बोध प्रश्न -01

1. निवेश में असामान्य वृद्धि के क्या कारण हैं?
2. स्वायत्त निवेश का निर्णय कौन लेता है?
3. प्रेरित निवेश किस पर निर्भर होते है?
4. व्यापार चक्र के लिये कौनसा निवेश उत्तरदायी है?
5. उच्चतम स्टार से परावर्तन किस कारण होता है?
6. हिक्स मॉडल में अर्थव्यवस्था निम्नतम स्टार पर किस कारण से घिसटती है?

11.3 हिक्स के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Hicks' Model)

आर्थिक जगत में हिक्स के व्यापार चक्र मॉडल की काफी सराहना हुई । आधुनिक पूँजीवदी अर्थव्यवस्था में विकास पथ की आख्या करते हुवे हेरोड-डामर मॉडल में यह शंका व्यक्त की गई थी कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में साम्य की स्थिति एक "छुरी धार ' (Knife Edge) संतुलन है । एक बार यदि किसी बर्हिजात अथव अन्तर्जात धक्के से अर्थव्यवस्था इस मार्ग से विचलित हो जाती है तो वह विस्फोटक वृद्धि या मंदी के गर्त में गिरती चली जाती है एवं उसे पुन: लौटा लाने का रास्ता हेरोड के मॉडल में नहीं था । इस स्थिति के विपरीत हिक्स ने यह स्पष्ट किया कि संतुलन पथ से विवलन अनन्त समय तक नहीं रहता एवं अर्थव्यवस्थाएं ऊपरी अथवा नीचले परिवर्तन बिन्दु से टकराकर पुन: संतुलन पथ की ओर लौटती है । यह सम्भव है

कि वह कुछ समय तक तेजी के साथ एवं कुछ समय मंदी के साथ घिसटती रहे अर्थात् त्वरक के क्रियाशील होने से पूर्व ऐसी स्थितियां रह सकती है ।

ऊपरी परावर्तन बिन्दु कहाँ स्थित है यह बताना कठिन है । हिक्स इसके लिए हेरोड द्वारा प्रस्तुत आय की प्राकृतिक दर का आश्रय लेते हैं । उत्पादन की अधिकतम सीमा तक पहुँचने के बाद गुणक एवं त्वरक की विस्तारक शक्ति घटने लगती है तथा ओर अधिक विकास दर प्राप्ते करने में यह असमर्थ हो जाती है । इस सीमा के आगे ऊर्ध्वमुखी गीत सम्भव नहीं होती है । चूँकि अधिकतम क्षमता से अधिक उत्पादन सम्भव नहीं होता अधिक से अधिक उत्पादन पूर्ण रोजगार रेखा FF के साथ कुछ समय तक घिसटता रह सकता है । बाद में यह नीचे की ओर मुड जाता है । इस प्रकार पूँजीवादी विश्व में जहाँ बहुत अधिक मात्रा में पूँजीगत स्टॉक उपलब्ध होता है विस्तार के बाद संकुचन का आना स्वाभाविक है।

हिक्स के मॉडल की निम्नलिखित आधार पर आलोचना की जाती है :

(i) **गुणक व त्वरक के मूल्य स्थिर नहीं रहते** हिक्स व्यापार चक्र के विभिन्न चरणों में गुणक व त्वरक के मूल्यों को स्थिर मानते है जो एक वास्तविकता नहीं है । गुणक का मूल्य इस कारण से स्थिर है क्योंकि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति ' b ' भी स्थिर है । विभिन्न आनुभाविक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि गुणक व्यापार चक्रों के विभिन्न चरणों में स्थिर नहीं रहता । इसी प्रकार त्वरक भी तकनीकी विकास, निवेश की संरचना आदि के साथ बदल जाता है ।

(ii) **स्वायत निवेश भी स्थिर नहीं रहता** व्यापार चक्रों के विविध चरणों में स्वायत्त निवेश में स्थिर गति से वृद्धि की मान्यता भी सही नहीं लगती । शुम्पीटर के अनुसार तकनीकी नवोन्मेष (Innovations) स्वयं स्वायत्त निवेश की प्रवृत्ति में परिवर्तिन लाते हैं ।

(iii) **विकास के लिए बहिर्जात तत्व उत्तरदायो नहीं होते** आर्थर स्मिथिज के अनुसार अर्थव्यवसस्था में संवृद्धि कारक तत्व अर्थव्यश्स्था के अन्दर ही अन्तर्निहित होते हैं

(iv) **निवेश का वर्गीकरण अनुचित है** हिक्स ने निवेश को दो भागों में विभाजित कर सायत्त एवं प्रेरित निवेश के रूप में व्याख्या की । वास्तव में कुछ अर्थशास्त्री इस वर्गीकरण से सहमत नहीं हैं । अल्पकाल में प्रत्येक निवेश स्वायत्त निवेश होता है एवं दीर्घकाल में स्वायत्त निदेश का अधिकांश भाग अभिप्रेरित होता है ।

(v) **पूर्ण रोजगार बिन्दु** पूर्ण रोजगार बिन्दु भी साधनों की उपलब्ध के साथ-साथ बदलता रहता है ।

(vi) **अभिप्रेरित निवेश** अभिप्रेरित निवेश मात्र उत्पादन की दर पर निर्भर नहीं होकर लाभ पर अधिक निर्भर देखा जाता है ।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद हिक्स के सिद्धान्त को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है एवं इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

11.4 सेम्युल्सन का व्यापार चक्र सिद्धान्त
(Samuelson's Theory of Trade Cycle)

व्यापार चक्र के उत्पन्न होने का मुख्य कारण स्वायत्त निवेश में प्रारम्भिक वृद्धि के बाद जनित गुणक प्रमाद के कारण आय में वृद्धि होने से उत्पन्न उपभोग वस्तुओं की मांग से क्रियाशील त्वरक प्रभाव है । इस प्रकार गुणक एवं त्वरक की अन्योय क्रिया के माध्यम से आय-उपभोग एवं निवेश व्ययों में परिवर्तन के अन्तहीन सिलसिले द्‌वारा व्यापार चक्रों का जन्म होता है । गुणक प्रभाव से उत्पन्न अतिरिक्त आय के उपभोग से उपभोग वस्तुओं की मांग बढ़ती है, क्योंकि आय बड़ने पर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के कारण उपयोग में भी वृद्धि होती है एवं उपभोग में यह वृद्धि आय वृद्धि से कम होती है क्योंकि MPC का मूल्य इकाई से सदैव कम ही होता है । उपभोग वस्तुओं की मांग बड़ने से उनकी पूर्ति करने के लिए नई-नई मशीने खरीदनी पड़ती है, अत: नया निवेश प्रोत्साहित होता है । निवेश में वृद्धि का पुन: आय पर प्रभाव पड़ता है यह प्रभाव त्वरक (Accelerator) प्रमाव है जो पुन: आय में कई गुणा वृद्धि को जन्म देता हैं इस प्रकार आय में वृद्धि से पुन: उपभोग वृद्धि एवं उपभोग बढ़ने से पुन: त्वरक प्रमाद द्‌वारा आय वृद्धि का सिलसिला आर्थिक क्षेत्र में तेजी को जन्म देता है । गुणक-त्वरक की इस अन्योय क्रिया को सेम्युल्सन (Leverage Effect) उत्तोलन प्रभाव कहते हैं । हेन्सन इसे अधिगुणक (Super Multiplier) का नाम देते हँ । गुणक व त्वरक की पारस्परिक क्रिया एक अन्तर्जात शक्ति (Endogenous Force) है जिसके कारण व्यापार चक्रों का जन्म होता है ।

सेम्युल्सन के अनुसार राष्ट्रीय आय में सरकारी व्यय (G) का भाग स्वायत्त रूप से होता है अर्थात् यह किसी पर निर्भर नहीं है इसका निर्णय सरकार करती है कि कर, कहाँ एवं कितना विनियोग करना है । राष्ट्रीय आय (Y_t) किसी दी हुई समयावधि में उपभोग (C_t), विनियोग (I_t) एवं सरकारी व्यय (G_t) के योग के बराबर होती है, अर्थात्:

$$Y_t = C_t + I_t + G_t ----------(1)$$
$$C_t = bY_{t-1}$$
$$I_t = W(C_t - C_{t-1})$$

G_t एवं I_t के स्थान पर प्रथम समीकरण में इनके समीकरण मूल्यों को प्रतिस्थापित करने पर साम्य राष्ट्रीय आय के समीकरण को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है ।

$$Y_t = G_t + bY_{t-1} + v(C_t - C_{t-1})$$
$$Y_t = G_t + bY_{t-1} + bv(Y_{t-1} - Y_{t-1}) ------(2)$$

इस प्रकार समीकरण 2 से यह बात स्पष्ट होती है कि किसी अवधि की साम्य आय स्वायत्त सरकारी व्यय (G_t) कुल उपभोग (C_t) एवं कुल निवेश व्यय जो त्वरक के मूल्य एवं पूर्व अवधियों में हवे उपभोग परिवर्तनों पर निर्भर करता है । अन्य शब्दों में b तथा v के मूल्य स्वायत्त सरकारी व्यय की राशि व उपभोग व्यय में हुवे परिवर्तन की राशि पर निर्भर होता है । इनके मूल्य ज्ञात होने पर किसी अवधि में साम्य आय की गणना की जा सकती है । हम सभी

जानते हैं कि उपभोग फलन में b सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के द्वारा जनित गुणक प्रभाव एवं v त्वरक प्रभाव है जो उपभोग परिवर्तन द्वारा जनित है । यदि उपभोग उत्तरोतर अवीधयों में लगातार बढ़ता जाता है तो त्वरक तेजी की परिस्थितियों को जन्म देता है अर्थात् आय में तेजी से वृद्धि करता है । उपभोग के धीमा पडने पर अथवा न बढ़ने पर त्वरक विपरीत दिशा में काम करता है व आय में कमी लाता है जो अर्थव्यवस्था में मंदी को जन्म देती

11.4.1 मान्यताएं

सेम्युल्सन के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएं निम्नलिखित हैं:

(1) वर्तमान समय का उपभोग पिछले वर्ष की आय का फलन होता है इसका कुछ भाग स्वायत्त उपभोग को प्रदर्शित करता है ।

(2) त्वरक उपभोग परिवर्तनों पर निर्भर है ।

(3) गुणक एवं त्वरक के मूल्य स्थिर रहते है । इसका अभिप्राय यह है कि MPC का मूल्य एवं पूँजी उत्पाद अनुपात ($\frac{C}{0}$) स्थिर बना रहता है ।

बोध प्रश्न -02

1. सेम्युल्सन के व्यापार चक्र सिधान्त में उपयोग किस निर्भर माना गया है ?
2. सेम्युल्सन के व्यापार चक्र सिधान्त में गुणक एवं त्वरक के मूल्यों के बारे में क्या मन्यता ली गई है ?
3. हिक्स के सिधान्त की किन्हीं दो कमजोरियों का नाम लिखो ।

11.4.2 सेम्युलर का माँडल

गुणक एवं त्वरक की अन्योय क्रिया को स्पष्ट करने हेतु हम यह मूल्य आरोपित करते है माना कि:

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) = 0.6 $Y_t = C_t + I_t$

पूँजी उत्पाद अनुपात ($\frac{C}{0}$) = 1.5 $C_t = C_a + bY_{t-1}$

स्वायत्त उपभोग (C_a) = 10 $I_t = I_a + vv(_t - C_{t-1})$

स्वायत्त विनियोग (I_a) = 30 $Y_t = C_a + b_{yt-1} + I_a + v(C_t - C_{t-1})$

पूंजी की आय (Y_{t-1}) = 100

समीकरण के मूल्य प्रतिस्थापित करने पर

$Y_t = C_a + bY_{t-1} + I_a + v(C_t - C_{t-1})$

t समय पर आय = $110 = 10 + 60 + 40 + 1.5(70 - 70)$

t+1 समय पर आय = $125 = 10 + 66 + 40 + 1.5(76 - 70)$

t+2 समय पर आय 138.5= $10 + 75 + 40 + 1.5 + (85 - 75)$

इसी प्रकार अगले कुछ बर्षो का मूल्य नीचे सारणी 11.1 में प्रदर्शित किए गये हैं:

सारणी - 11.1

गुणक-त्वरक अंत: क्रिया एवं आय परिवर्तन

समया	स्वायत्त उपयोग $C_a = 10$	प्रेरित उपयोग bY_{t-1} $b = 6$	स्वायत्त निवेश I_a	प्रेरित निवेश $V(C_t - C_{t-1})$ $v = 1.5$	कुल आय Y_t	पिछली अवधि के मुक़ाबले परिवर्तन	प्रारम्भ से कुल आय में परिवर्तन
t-1	10	60	30	00	100	--	--
t	10	60	40	00	110	10	10
t+1	10	66	40	9.0	125	15	25
t+2	10	75	40	13.5	138.5	13.5	38.5
t+3	10	83.1	40	12.2	145.2	6.7	45.2
t+4	10	87.1	40	6.1	143.2	-2.0	43.2
t+5	10	85.9	40	-1.8	134.1	-9.1	34.1
t+6	10	73.4	40	-8.2	122.3	-11.8	22.3
t+7	10	80.5	40	-10.7	112.7	-9.6	12.7
t+8	10	67.6	40	-8.6	109.0	-3.7	9.0
t+9	10	65.4	40	-3.3	112.1	+3.1	12.1
t+10	10	67.2	40	2.8	120.0	+7.9	20.0
t+11	10	72.0	40	7.2	129.2	+9.2	29.2
t+12	10	77.5	40	8.2	135.7	+6.5	35.7
t+13	10	81.4	40	5.9	137.3	+1.6	37.3
t+14	10	82.4	40	1.5	133.9	-3.4	33.9

सारणी 11.1 से स्पष्ट की t+3 समय के बाद अपने उच्चतम पहुँच बिन्दु 145.2 पर पहुँच जावेगा एवं बाद में गिरावट प्रारम्भ हो जवेगी । t+8 समय में यह पुन: निम्नतम स्तर पर 109.0 पर पहुँच जवेगा । इस क्रम मैं एक बार पुन: बढ़कर यह t+13 समय में 137.3 के स्तर को प्राप्त कर पुन: घटने लगता है । इस प्रकार उत्तरोतर घटते हुवे आयामों में उतार चढाव के चक्रीय क्रम के साथ अन्तत: गुणक प्रभाव युक्त आय वृद्धि सहित इस उदाहरण में संतुलन की स्थिति प्राप्त होगी ।

11.4.3 सेम्युल्सर के मॉडल का रेखाचित्रीय स्वरूप

सेम्युल्सन ने त्वरक (v) तथा गुणक (b) के विभिन्न मूल्यों के संयोग के आधार पर आय स्तरों पर होने वाले उतार-चढ़ाव के पाँच नमूनों को दर्शाया गया है ।

(1) **उच्चावचन रहित नया साम्य** त्वरक का मूल्य इकाई से कम हो तो केवल गुणक प्रमाद के कारण किसी भी स्वायत्त निवेश में परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय स्तर में उच्चावचन

रहित नया संतुलन की स्थिति प्राप्त हो जाती है । इस स्थिति को रेखा चित्र 112 द्वारा इस रूप में प्रदर्शित किया जाएगा ।

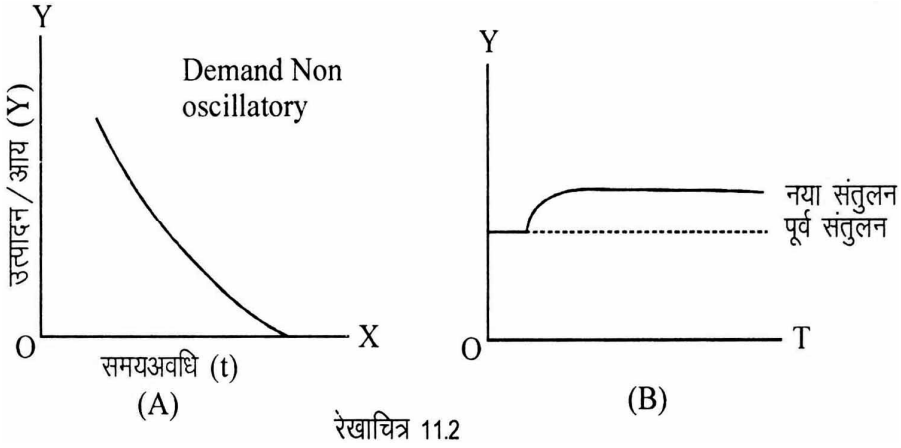

रेखाचित्र 11.2

(2) **उच्चावचन युक्त नया संतुलन** इसके अन्तर्गत स्वायत्त निवेश में हुआ परिवर्तन घटते हुवे आयाम वाले उच्चावचनों द्वारा गुणक गुणा परिवर्तन कर नये संतुलन के साथ अपनी चक्रीयता विलिन कर लेता है इससे गुणक व त्वरक के मूल्यों का गुणनफल इकाई से कम होता है जैसे- (b) = 0.6 एवं v = 1.5 हो तो यह स्थिति बनती है:

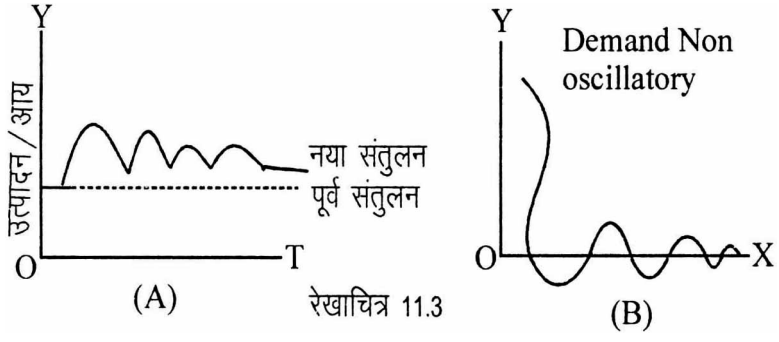

रेखाचित्र 11.3

(3) **विस्फोटक उच्चावना युक्त** जब स्वायत निवेश में कोई भी परिवेर्तन आय स्तर में उत्तरोतर बड़ते हुवे आयाम वाले विस्फोटक उतास्चढ़ावों को जन्म दे तो यह स्थिति बनती है । इसमे b तथा r के मूल्य का गुणनफल इकाई से अधिक होता है ।

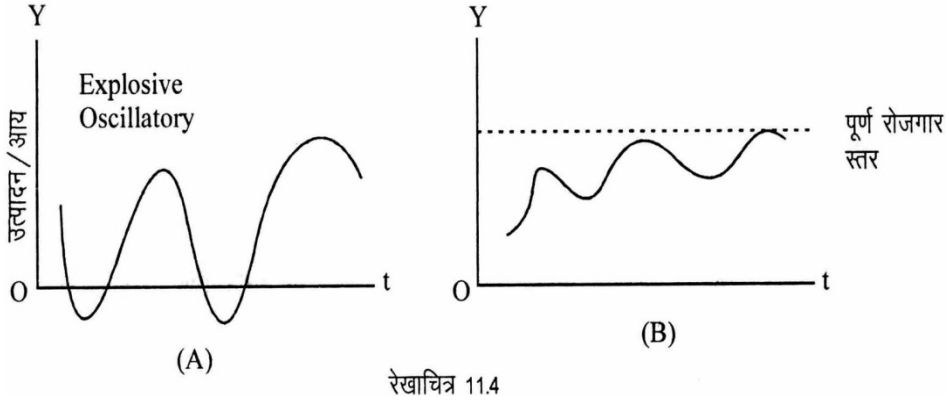

रेखाचित्र 11.4

(4) **विस्फोटक उच्चावचन रहित तेजी** यदि स्वायत्त निवेश में हुई हल्की सी तेजी आय में उच्चावचन रहित विस्फोटक वृद्धि को जन्म दे तो इस स्थिति का जन्म होता है । इसमें b तथा v के मूल्यों का गुणनफल ऊँचा होता है ।

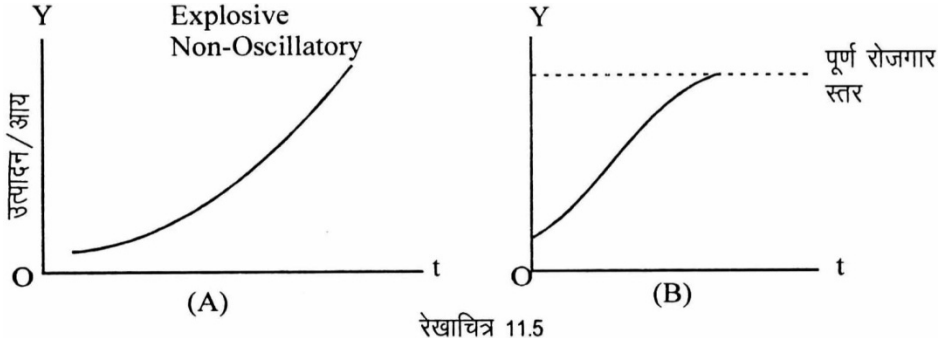

रेखाचित्र 11.5

(5) **उच्चावचन युक्त वृद्धि पथ** यदि संयोगवश गुणक (b) एवं त्वरक के मूल्यों का गुणनफल इकाई के बराबर हो जो इस प्रकार की स्थिर चक्रीयता उत्पन्न होती है । अर्थव्यवस्था स्वायत्त निवेश में वृद्धि के कारण पूर्ण रोजगार के इर्द-गिर्द चक्कर काटती रहती है ।

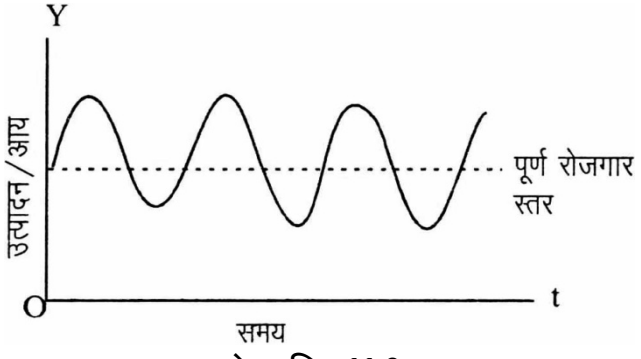

रेखा चित्र 11.6

- **एक चित्र में सभी स्थितियों का चित्रण** अब हम रेखा चित्र 11.7 में गुणक (b) तथा त्वरक के मूल्यों के आधार पर आय की विभिन्न वृद्धि प्रवृत्तियों का एक साथ चित्रण करते हैं ।

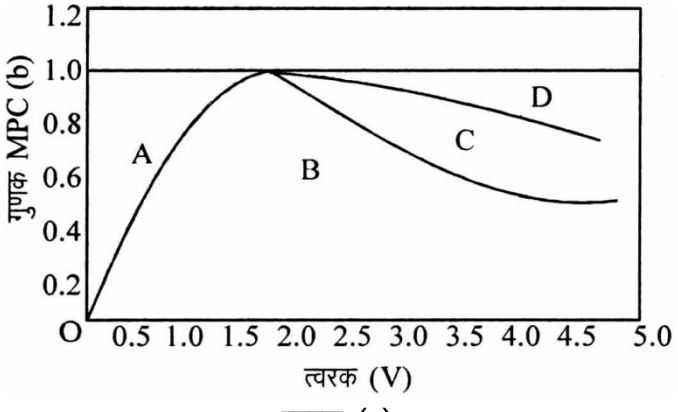

त्वरक (v)

रेखाचित्र 11.7

गुणक एवं त्वरक के जो मूल्य A क्षेत्र में हैं वे बिना चक्रीय उतार-चढ़ाव के आय में गुणक गुणा वृद्धि कर नेव संतुलन को प्राप्त कर लेंगे । इस प्रकार B क्षेत्र में जो b एवं v के विभिन्न संयोग है वे भी अवमन्दित परन्तु उच्चावचन वाले उतार-चढ़ाव पैदा करेंगे । C एवं D क्षेत्र में पड़ने वाले मूल्य b एवं v के उन संयोगों को व्यक्त करेंगे जो विस्फोटक स्थितियों को जन्म देंगे । अंतिम स्थिति में इकाई के बराबर गुणनफल की स्थिति काल्पनिक है ।

11.5 सेम्युल्सन के व्यापार चक्र सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Samuelson's Theory of Trade Cycle)

सेम्युल्सन का सिद्धान्त निश्चय ही कीन्स के सिद्धान्त का उन्नत रूप है फिर भी विद्वानों ने इसमें निम्नलिखित दोष गिनाए हैं:

- यह सिद्धान्त पूर्णतया गतिशील नहीं माना जा सकता क्यों कि इसमें अर्थव्यवस्था की दीर्घकालिक प्रवृत्ति का संकेत नहीं किया गया है ।
- यह सिद्धान्त अनम्य त्वरक सिद्धान्त पर आधारित है । त्वरक सिद्धान्त की अपनी कुछ कमियां है । चूँकि त्वरक को केवल उपभोग वस्तुओं की मांग का फलन माना गया है।
- गुणक एवं त्वरक के मूल्यों को स्थिर मानकर व्याख्या की गई है जो वास्तविकता से मेल नहीं जाती है ।
- यह सिद्धान्त वास्तविकता से परे है एवं अनुभव में इस प्रकार के चक्रीय सरूप देखने में नहीं आते हैं ।

11.6 सेम्युल्सन एवं हिक्स की व्याख्याओं में अन्तर

अवमन्दित एवं विस्फोटक गीत के व्यापार चक्रों की धारणा के अलावा सेम्युल्सन और हिक्स के सिद्धान्तों में और भी महत्वपूर्ण अन्तर है । हिक्स का सिद्धान्त अर्थव्यवस्था की दीर्घकालिक सामान्य विकास प्रवृत्ति के सन्दर्भ में करते हैं जिसकी सेमुल्सन ने उपेक्षा की है । हिक्स के अनुसार यदि अर्थव्यवस्थास्था में स्वायत्त निवेश में स्थिर गीत से वृद्धि होती रहेगी तो स्थिर गुणक लरक के साथ आय वृद्धि दर भी स्थिरतापूर्वक संतुलन विकास पर अग्रसर होती रहेगी । परन्तु संतुलित विकास पथ के साथ वास्तविक उत्पत्ति दर का सदा मेल नहीं रह पाता । स्वायत्त निवेश में आकस्मिक उतार-चढावों के कारण विकास दर में भी उच्चावचन देखने को मिलते हैं । सेम्युल्सन ने प्रेरित निवेश को उपभोग वस्तुओं की मांग में परिवर्तन से सम्बन्धित किया किन्तु पूँजीगत भण्डार में वृद्धि से केवल उपभोग वस्तुओं की क्षमता ही नहीं बढ़ती बल्कि सम्पूर्ण उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है इसलिए हिक्स प्रेरित निवेश को कुल उत्पत्ति की मांग से सम्बन्धित करते हैं ।

सेम्युल्सन व्यापार चक्र में उच्चतम बिन्दु से नीचे की ओर प्रवृत्ति का कारण उपभोग स्तर में अपेक्षाकृत धीमी गीत से वृद्धि को मानते हैं । हिक्स बाह्य हस्तक्षेपकारी तत्व पूर्ण रोजगार संतुलन को उत्तरदायी मानते हैं । पूर्ण रोजगार स्तर पर पहुँचकर स्वत: त्वरक उल्टी दिशा में क्रियाशील हो जाता है । हिक्स गुणक व त्वरक के मूल्यों को समाप्ति ऊँचा मानते हैं । हिक्स के अनुसार व्यापार चक्र की प्रकृति निर्बल अन्तिमाश (Weak ending) का नहीं हो

सकती वे उच्चतम व निम्नतम सीमा से टकराकर मुड़ जाने वाले सबल अन्तिमांश प्रकृति के होंगे ।

11.7 सारांश (Summary)

हिक्स के मतानुसार त्वरक एवं गुणक के ऊँचे अंकीय मूल (High Numerical Value) के कारण स्वायत्त नितेश में किसी समय आया उछाल अर्थव्यवस्था को दीर्घकालीक संतुलन पथ से विचीलत कर देगा । ऊँचे मूल्यों के परिणामस्वरूप स्वायत्त निवेश में हुई प्रारम्भिक वृद्धि को जन्म देगी इस वृद्धि में गुणक अकेला नहीं है बल्कि बरक भी सहयोग करेगा । अर्थव्यश्स्था पूर्ण रोजगार की उच्चतम सीमा की ओर चल पड़ती है । उच्चतम सीमा पर स्वायत्त निवेश जारी रहने एवं प्रेरित निवेश के कुछ समय के बाद कम होने से (अन्तराल के कारण) अर्थव्यवस्था इसी सीमा पर रेंगती रहेगी । उत्पादन दर में कमी के कारण त्वरक विपरीत दिशा में क्रियाशील होने से आय स्तर में गिरावट अवश्यम्माबी है । उत्पादन क्षमता में कमी की अपेक्षा वास्तविक उत्पादन क्षमता में तेजी से गिरावट आने से अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता पैदा हो जाती है । जब तक अतिरिक्त उत्पादन क्षमता विद्यमान होती है त्वरक निष्क्रिय रहता है । आगे की गिरावट में केवल गुणक की विपरीत क्रियाशीलता उत्तरदायी है । अन्ततः उत्पादन निम्नतम बिन्दु पर पहुँच जाएगा । अर्थव्यासथा कुछ समय के लिए इसी स्तर पर बनी रहती है जब तक अतिरिक्त उत्पादन क्षमता विद्यमान रहती है । अतिरिक्त उत्पादन क्षमता समाप्त होते ही सकारात्मक निवेश प्रारम्भ हो जाता है । सकारात्मक निवेश पुनः तरक को क्रियाशील कर देगा जिससे अर्व्यवस्था विकास मार्ग पर चल पडती है ।

सेम्युल्सन के व्यापार चक्र सिद्धान्त में त्वरक एवं गुणक के मूल्यों के गुणनफल के आधार पर विभिन्न रूपों के व्यापार चक्रों की कल्पना की गई है । व्यापार चक्र कभी एक दिशा में क्रियाशील नहीं होते एवं न ही सदैव विस्फोटक गति से उपर अथवा नीचे की गीत लेते हैं । वास्व में यह एक ऊपरी सीमा व एक नीचली सीमा के मध्य अनियमित अन्तराल से चक्कर लगाते हैं ।

11.8 शभाबली (Glossary)

गुणक	(Multiplier)
त्वरक	(Accelerator)
स्वायत्त निवेश	(Autonomous Investment)
प्रेरित निवेश	(Induced Investment)
उच्च परावर्तन बिन्दु	(Upper turning Point)
निम्न परावर्तन बिन्दु	(Lower तुरनिंग Point)
बिस्फोटक वृद्धि दर	(Explosive Growth Rate)

11.9 सन्दर्भ ग्रन्ध (References)

Edward Shapiro, "Macroeconomic Analysis"

James Aurthur, "Business Cycles"
झिंगन एम.एल., 'समष्टि आर्थिक सिद्धान्त"

11.10 अभ्यसार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त के उच्च एवं निम्न परिवर्तन बिन्दु के बारे में अर्थशास्त्रियों के विचारों की व्याख्या कीजिए ।
2. सेम्युल्सन एवं हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्तों का अध्ययन कीजिए इनमें क्या समानताएं व विभिन्नमताएं हैं
3. हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
4. सेम्युल्सन के व्यापार चक्र सिद्धान्त की क्या मान्यताएं थी । इसके रेखाचित्रीय स्वरूप की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।

इकाई -12

व्यापार चक्र का आधुनिक सिद्धान्त एवं व्यापार चक्र नियंत्रण (Modern Theory and Control of trade Cycles)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 व्यापार चक्र का आधुनिक सिद्धान्त

12.2.1 हिक्स एवं सेम्युल्सन मॉडल

12.2.2 काल्डर मॉडल

12.2.3 बचत विनियोग फलनों की गैररेखीयता

12.3 व्यापार चक्र नियत्रंण

12.3.1 मौद्रिक नीति

12.3.2 राजकोषीय नीति

12.4 व्यापार चक्र विरोधी नीतियों की प्रमावकता

12.5 सारांश

12.6 शब्दादली

12.7 सन्दर्भ ग्रन्ध

12..8 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य (Objectives)

हम पिछली दो इकाइयों में व्यापार चक्र के विभिन्न सिद्धान्तों की चर्चा कर चुके हैं । अपने-अपने आनुभावि अध्ययनों के आधार पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने व्यापार चक्रों की व्याख्या में भिन्न-भिन्न तत्वों को महत्व दिया है । समस्त अर्थशास्त्री इस बात पर एकमत हैं कि व्यापार चक्र में आर्थिक गतिविधियों में विस्तार एवं उसके पश्चात् मंदी एवं पुनर्जीवन विध्धमान होता है । व्यापार चक्र के सिद्धान्तों में विभिन्न समूहों में एकत्रित करना भी सम्भव नहीं है क्योंकि अलग-अलग विदानों ने अलग-अलग तत्वों को महत्त्व दिया है । जोसफ एशुम्पीटर ने जहाँ नवाचारों (Innovations) के कारण भारी पूँजी निवेश को कारण माना वहीं हाटरे ने इसे एक विशुद्ध मौद्रिक घटना माना है । मुद्रा की पूर्ति के चक्रीय प्रवाह में साख व्यापार चक्र की जननी है । बैंकों द्वारा कम ब्याज दर पर ऋणों से यह समस्या उत्पन्न होती है । इसी प्रकार हेयक भी अति विनियोग को समस्या की जननी मानते हैं । कीन्स पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में चक्रीय परिवर्तन को उत्तरदीयी ठहराते हैं । हिक्स एवं सेमुल्सन गुणक व त्वरक की क्रिया को उत्तरदायी मानते हैं । इन सभी के बीच काल्डर बचत एवं निवेश के गैर रेखीय स्वरूप के आधार पर अपने सिद्धान्त की आख्या करते हैं । व्यापार चक्र के आधुनिक

सिद्धान्त के नाम से किसी एक सिद्धान्त को नहीं गिनाया जा सकता परन्तु सामान्य रूप में हिक्स, सेमुल्सन व काल्डोर आदि की व्याख्याओं को आधुनिक सिद्धान्त का नाम दिया जाता है । हम हिक्स व सेन्युल्सन के विचारों का अध्ययन कर चुके हैं । इस इकाई का उद्देश्य आपको काल्डोर के सिद्धान्त से अवगत कराना है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- जान सकेंगे कि बचत फलन एवं निवेश फलन के रेखीय स्वरूप के स्थान पर गैर-रेखीय स्वरूप से क्या अभिप्राय है?
- गैर-रेखीय फलनों से किस प्रकार के चक्रीय परिवर्तन उत्पन्न होते हे?
- व्यापार चक्रों को किस प्रकार से रोका जा सकता है अथवा उनके दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है?

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में बचत एवं निवेश फलन की गैर-रेखीयता के प्रणवों को समझने का प्रयास किया जायेगा । बचत फलन के रेखीय होने का आशय यह है कि वह एक सीधी रेखा के रूप में बढ़ता है अर्थात् वृद्धि पथ (Linear) रेखीय है । गैर-रेखीय (Non-Linear) फलन होते हैं, उनमें विस्फोटक वृद्धि अथवा उच्चावचन युक्त वृद्धि-कमी देखी जा सकती है । काल्डोर का यह मानना था कि वास्तविक जगत में बचत एवं विनियोग का वृद्धि पथ गैर-रेखीय (Non-Linear) है । बचत एवं निवेश फलनों की आपसी क्रिया से विभिन्न आय स्तरों का निर्माण हो सकता है । यह गैर-रेखीयता का ही परिणाम है कि हम आने वाले संकट का सही-सही पूर्वानुमान नहीं लगा सकते । इकाई के अगले खण्ड में हिक्स एवं सेम्युल्सन के सिद्धान्त का संक्षिप्त परिचय देकर हम काल्डोर के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या करेंगे । खण्ड 12.3 में व्यापार चक्र निरोधक नीतियों की व्याख्या की जाएगी इसमें मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति की चर्चा करने के बाद खण्ड 12.4 में इन नीतियों की प्रभावकता की चर्चा की जाएगी । अन्त में सारांश, शब्दाबली एवं उपयोगी पुस्तकों की सूची व अभ्यासार्थ प्रश्न दिए गए हैं ।

12.2 व्यापार चक्र का आधुनिक सिद्धान्त

12.2.1 हिक्स एवं सेम्युल्सन मॉडल

इकाई 11 में वर्णित हिक्स एवं सेम्युल्सन के मॉडलों में स्वायत्त निवेश की भूमिका महत्वपूर्ण है । यह आर्थिक गतिविधियों को गति प्रदान करता है एवं आय परिवर्तनों से स्वतंत्र है । इस प्रकार कीन्सवादी परम्परा का निर्वहन करते हुवे हिक्स एवं सेम्युल्सन ने विकास के ईंजिन को खींचने की जिम्मेदारी सरकार के कन्धों पर डाली है । स्वायत्त निवेश वस्तुत: सरकारी क्षेत्र से ही आएगा । स्वायत्त निवेश से गुणक एवं उसके परिणामस्वरूप आय स्तर के परिवर्तन से त्वरक क्रियाशील हो जाता है । गुणक एवं त्वरक मिलकर अर्थव्यवस्था में हलचल उत्पन्न करते हैं, जो कभी तेजी एवं कभी मंदी की स्थितियों को जन्म देते हैं । गुणक एवं त्वरक के मूल्यों का गुणनफल अर्थव्यवस्था का विकास पथ तय करता है ।

हिक्स का मानना था कि गुणक-त्वरक की अन्योय क्रिया के साथ हमें अर्थव्यवस्था की पूर्ण क्षमता की सीमा को नहीं भूलना चाहिए । क्योंकि यदि यह सीमाएं न हो तो विस्फोटक वृद्धि अथवा कमी के बाद उनका परावर्तन कैसे होगा । इस सिद्धान्त को व्यापार चक्र का आधुनिक सिद्धान्त माना जाता है । विद्यार्थियों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि यदि परीक्षा में आधुनिक सिद्धान्त के बारे में पूछा जाता है तो इन सिद्धान्तों के साथ-साथ काल्डोर के सिद्धान्त की चर्चा भी की जा सकती है । यदि काल्डोर का सिद्धान्त अलग से पूछा जाय तो हिक्स एवं सेम्युल्सन के मॉडल की चर्चा नहीं करनी चाहिए । इन सिद्धान्तों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसार के बाद संकुचन की स्थिति आना सामान्य प्रक्रिया है ।

12.2.2 काल्डोर मॉडल

काल्डोर का व्यापार चक्र सिद्धान्त कीन्स की आय निर्धारण व्याख्या पर आधारित है । अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव रहित विकास की दर पर बने रहने के लिए बचत एवं निवेश का बराबर बने रहना आवश्यक है । यदि किसी कारण नियोजित बचत एवं नियोजित निवेश के बीच साम्य नहीं रहता है तो अर्थव्यवयस्था में तेजी या मंदी की स्थिति आएगी । कीन्स ने स्पष्ट किया कि यदि नियोजित निवेश (Planned Investment) की मात्रा नियोजित बचत (Planned Savings) से अधिक है तो इसका अमिप्राय यह है कि उद्यमियों में आशावादिता है उन्हें आशा है कि वे लाभार्जन करने में सफल होंगे । यह स्थिति आय स्तर पर प्रसारात्मक प्रभाव डालती है । इसके विपरीत यदि नियोजित निवेश की मात्रा नियोजित बचत की मात्रा से कम है तो इसका अभिप्राय यह है कि व्यापारी अथवा उद्यमी वर्ग भविष्य में लाभार्जन के प्रति आशावान नहीं है । ऐसी परिस्थिति में आय के स्तर में संकुचनात्मक प्रभाद उत्पन्न होगा । कीन्स का विश्लेषण निवेश एवं बचत फलनों की रेखीयता (एक सीधी रेखा) की मान्यता लिए हुवे है ।

- **रेखीय निवेश एवं बचत फलन एवं व्यापार चक्र**

कीन्स के विश्लेषण के रेखीय फलन संतुलन एवं असंतुलनकारी हो सकते हैं अर्थात् वे अर्थव्यवस्था को साम्य आय के स्तर पर ले जा सकते हैं अथवा नहीं ले जा सकते । यह रेखीय वक्र व्यापार चक्रों का विश्लेषण करने में असमर्थ है । कालोर ने अपने विचार मार्च, 1940 में अपने सुप्रसिद्ध लेख "A Model of the Trade Cycle में व्यक्त किए जो The Economic Journal में प्रकाशित हुए । काल्डोर का व्यापार चक्र सिद्धान्त कीन्सवादी बचत-निवेश विश्लेषण पर आधारित एक सरल एवं स्पष्ट व्याख्या है ।

बचत एवं निवेश फलनों का रूप इस प्रकार होता है:

$S = a + sY$.....(12.1)

$I = I_a + eY$.....(12.2)

स्थिर साम्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सीमान्त निवेश प्रवृत्ति (MPI) सीमान्त बचत प्रवृत्ति से कम हो । $\frac{\Delta I}{\Delta Y} < \frac{\Delta S}{\Delta Y}$ होने पर आय स्तर संतुलनकारी होगा ।

निवेश फलन (मांग फलन) का ढाल बचत फलन (पूर्ति फलन) से कम होना चाहिए । इसका अर्थ यह भी है कि साम्य की स्थिति तभी स्थाई रह सकती है जब निवेश फलन बचत फलन को ऊपर से काटे । यह स्थिति निम्नांकित रेखाचित्र 12.1 से प्रदर्शित की गई है ।

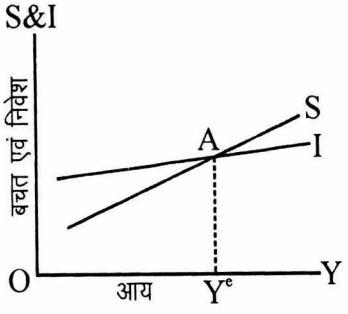

रेखाचित्र 12.1

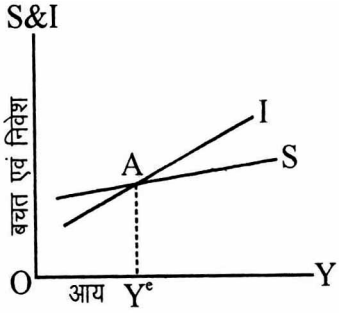

रेखाचित्र 12.2

इस स्थिति में संतुलन से किन्हीं कारणों से विचलन होने पर संतुलनकारी शक्तियां आय को पुन: Y^e स्तर पर ले आएगी । आय के स्थिर संतुलन को बतलाने वाले यह वक्र व्यापार चक्रों की व्याख्या नहीं कर सकते क्योंकि व्यापार चक्र में आय स्तरों में उच्चावचन होते हैं स्थिर संतुलन नहीं होता ।

रेखा चित्र 12.2 में सीमान्त निवेश प्रवृत्ति MPI का मूल्य सीमान्त बचत प्रवृत्ति से ऊँचा है । अर्थात् $\frac{\Delta I}{\Delta Y} < \frac{\Delta S}{\Delta Y}$ हो तो निवेश फलन बचत फलन की अपेक्षा अधिक ढालयुक्त होगा । ऐसी स्थिति में आय स्तर के संतुलन की स्थिति में कोई व्यवधान आने पर असंतुलनकारी शक्तियों को बल मिलेगा । रेखाचित्र 12.2 में एक बार संतुलन बिन्दु A से हट जाने पर अर्थव्यवस्था निरन्तर प्रसार अथवा संकुचन मार्ग पर आगे बढ़ जाएगी एवं पुन: A बिन्दु पर लौटना सम्भव नहीं होगा यह स्थिति भी वास्तविकता से मेल नहीं खाती क्योंकि इसमें भी चक्रीयता उत्पन्न नहीं होती ।

12.2.3 बचत विनियोग फलनों कीं गैर-रेखीयता

इस प्रकार काल्डोर ने कीन्सवादी व्याख्या को अस्वीकार कर दिया । काल्डोर ने आपार चक्र में चक्रीयता के समावेश के लिए गैर-रेखीय बचत एवं निवेश फलनों की मान्यता ली । काल्डोर बचत एवं निवेश को आय स्तर एवं पूँजीगत साज सामान के भण्डार से सम्बन्धित मानते हैं । काल्डोर के मत में यदि सम्पूर्ण व्यापार चक्र को निम्न, सामान्य एवं उच्च आय के चरणों में विभाजित किया जाता है तो तीनों चरणों में सीमान्त निवेश प्रवृत्ति MPI के मूल्य समान नहीं होंगे । अर्थात् बहुत ऊँचे आय स्तरों पर निवेश फलन का ढाल कम होगा । अन्य शब्दों में नीचे के आय स्तरों पर अर्थव्यवस्था में अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता की उपलब्धता के कारण निवेश मांग फलन की आय लोच कम होगी । ऊँचे आय स्तरों पर भी निवेश मांग की आय लोच कम होगी क्योंकि इस चरण में निर्माण लागते पूँजी प्राप्त करने की लागतें तथा अन्य लागतें काफी ऊँची होती है । इस प्रकार विभिन्न आय स्तरों पर बचत फलन का ढाल भी एक समान नहीं होगा । किसी व्यापार चक्र की अवधि में अत्यधिक नीचे एवं ऊँचे आय स्तरों पर बचत फलनों का डाल अपेक्षाकृत अधिक होगा । अन्य शब्दों में अत्यधिक नीची एवं ऊँची

आय स्तरों पर बचत फलन की आय लोच अपेक्षाकृत अधिक होती है क्योंकि जब आय कम होती है तो व्यक्ति अपने पूर्व के जीवनस्तर को बनाए रखते हैं फलस्वरूप आय में कमी की अपेक्षा बचत में कमी अधिक होगी । इसके विपरीत जब आय ऊँची होती है तो लोग अधिक बचत करते हैं क्योंकि उनका यह मानना होता है कि यह वृद्धि अस्थायी है । इस प्रकार निवेश एवं बचत दोनों फलनों का ढाल अलग-अलग आय स्तरों पर अलग-अलग होता है यही गैर-रेखीयता है ।

अब हम गैर-रेखीय निवेश एवं बचत फलन को रेखाचित्र 12.3 के माध्यम से व्यक्त करते हैं ।

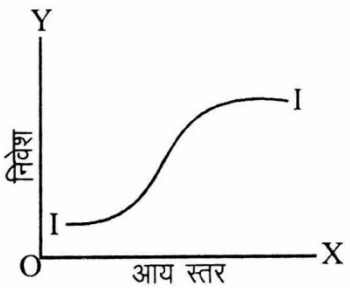

निवेश फलन
रेखाचित्र 12.3

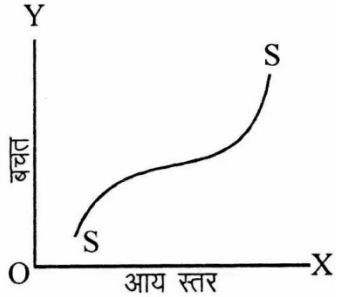

बचत फलन
रेखाचित्र 12.4

रेखाचित्र 12.3 में उच्च एवं निम्न आय स्तरों पर निवेश फलन वक्र को लगभग समतलीय चित्रित किया गया है । इन दोनों आय स्तरों पर MPI लगभग नगण्य है । जब आय स्तर निम्न स्तर से उपर उठता है तो निवेश व्यय में तेजी से वृद्धि होती है इसका कारण इस तल पर विद्यमान अतिरिक्त उत्पादन क्षमता होगी । इसी प्रकार उच्च आय स्तरों पर भी पूर्ण रोजगार की स्थिति, पूँजी प्राप्ति की कठिनाइयों एवं बढ़ती लागतों के कारण निवेश मन्द पड़ जाते हैं । इस वजह से MPI नगण्य होती है । बीच के सामान्य आय स्तरों पर अधिक उत्साह पाया जाता है अत: निवेश वक्रों का ढाल भी तीव्र होता है।

निवेश फलन की तरह आय स्तरों पर गैर रेखीय बचत फलन रेखाचित्र 12.4 में प्रदर्शित किया गया है । विभिन्न आय स्तरों पर MPS एक जैसा नहीं रहता । निवेश फलन के विपरीत बचत फलन सामान्य आय स्तर पर अपेक्षाकृत नीचा एवं बहुत कम व बहुत ऊँचे आय स्तरों पर अपेक्षाकृत ऊँचा रहता है । रेखाचित्र 12.3 एवं 12.4 में इन्हीं परिस्थितियों के वक्र बनाए गए हैं ।

रेखाचित्र 12.3 एवं 12.4 में निम्न एवं उच्च आय स्तरों पर बचत फलन (S) को ऊँचा व सामान्य आय फलन से विपरीत बचत फलन को अपेक्षाकृत नीचा प्रदर्शित किया गया है । अर्थव्यवस्था जब निम्न आय स्तरों से सुधारकाल के प्रारम्भिक चरण में प्रवेश करती है तो लोग मंदी के युग में अपनी बचतों में हुई कमी की भरपाई करते हैं इसके लिए वे अधिक बचत करते है । ऊँचे आय स्तरों पर बचत क्षमता में वृद्धि हो जाने से अधिक बचत की जाती है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विविध आय स्तरों पर बचत एवं निवेश फलनों की प्रवृत्ति एक दूसरे के विपरीत दिशा की ओर होती है । काल्डोर मात्र आय को बचत एवं

निवेश का निर्धारक नहीं मानते उनके अनुसार पूँजीगत साधनों का भण्डार इन फलनों के निर्धारण में अधिक महत्व रखता है । काल्डोर के अनुसार-

$S = f (Y,K)$

$I = f (Y,K)$

जहां S = बचत

I = निवेश

Y = आय

K = पूँगत साधनों का स्टॉक

बचत एवं पूँजीगत साधनों के स्टॉक में सीधा एवं धनात्मक सम्बन्ध है एवं निवेश एवं पूँजीगत साधनों के भण्डार में विपरीत अथवा ऋणात्मक सम्बन्ध है । अन्य शब्दों में अधिक पूँजीगत भण्डार होने पर अधिक बचत की जाएगी एवं निवेश कम किया जाएगा । पूँजीगत भण्डार कम होने पर बचत कम एवं निवेश अधिक किया जाएगा ।

- निवेश एवं बचत फलनों का संयोजन

रेखाचित्र 12.3 एवं 12.4 में वर्णित बचत एवं निवेश फलन के चित्रों को एक ही रेखाचित्र 12.5 में चित्रित करने पर विभिन्न आय स्तरों पर संतुलन की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है ।

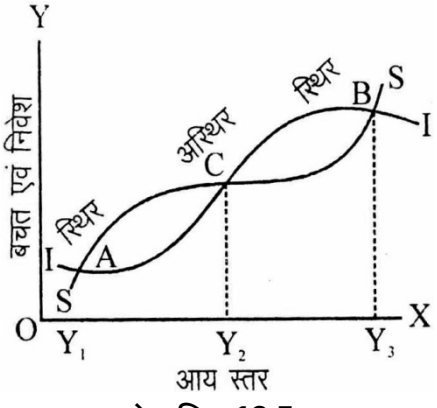

रेखाचित्र 12.5

रेखाचित्र 12.5 में तीन संतुलन आय स्तर दर्शाये गये हैं । इनमें से A तथा B बिन्दुओं द्वारा प्रदर्शित आय स्तर Y_1 एवं Y_3 आय स्तर स्थिर संतुलन की दशाओं को व्यक्त करते हैं । Y1 से नीचे तथा Y_2 एवं Y_3 आय स्तरों के बीच आय स्तरों में I > S की स्थिति है । अत: इन स्थितियों में आय स्तर में उस समय तक वृद्धि होती जाएगी जब तक I = S की स्थिति प्राप्त न हो जाये । यह Y_1 एवं Y_3 स्थितियों पर प्राप्त होगी । A एवं B बिन्दु स्थिर संतुलन को दिखाते हैं । Y_1 एवं Y_2 आय के बीच तथा Y_3 से ऊपर आय स्तरों पर S > I है अत: आय स्तर में गिरावट आएगी एवं आय स्तर Y_1 अथवा Y_3 पर लौट आएगा । C बिन्दु पर संतुलन कायम नहीं रहेगा वह या तो ऊपर उठकर Y_3 की ओर अथवा गिरकर Y_1 की ओर आवेगा ।

इस प्रकार काल्डोर का व्यापार चक्र विश्लेषण विलक्षण है । काल्डोर ने जिस चक्रीय प्रक्रिया को समझाया है वह स्वप्रर्तित है । ऊँचे आय स्तरों पर यह प्रवृत्ति उन शक्तियों को जन्म देती है जो नीचे आय स्तरों की ओर धकेलती है एवं नीचे आय स्तरों पर शक्तियां उसे ऊपर की ओर धकेलती है । यह शक्तियां अर्थव्यवस्था में अन्तर्निहित है ।

बोध प्रश्न -01

1. गैररेखीय फलन का अर्थ समझाइए।
2. बचत एवं निवेश फलन में आय के अतिरिक्त एक अन्य तत्व कौनसा है?
3. स्थिर साम्य प्राप्ति की क्या शर्त है?

12.3 व्यापार चक्र नियंत्रण

अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रीय परिस्थितियां उत्पन्न होने पर तेजी अथवा मंदी की स्थितियों से अर्थव्यवस्था को बचाना आवश्यक होता है जिससे सामान्य जनता को कम से कम कष्ट हो । यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार पथ से विचलित हो जाय अथवा मुद्रा प्रसार, अतिउत्पादन जैसी समस्याएं हो तो कोई भी सरकार मूकदर्शक बनकर नहीं बैठ सकती । यद्यपि व्यापार चक्र को रोक पाना अथवा सकी दिशा या दुष्प्रभावों से बच पाना इतना आसान काम नहीं है, फिर भी विश्व की सभी सरकारें मौद्रिक एवं राजकोषीय उपायों को अपनाकर मांग प्रबन्धन का प्रयास किया जाता है जिससे प्रसारकाल के दुष्प्रभावों में कमी लाई जा सके । संकुचन अथवा मंदीकाल में इसके विपरीत उपायों द्वारा मांग में वृद्धि के उपाय किए जाते हैं जिससे उत्पादन, रोजगार एवं कीमत स्तर की गिरावट को रोका जा सके । इस प्रकार तेजीकाल में मांग में कमी एवं मंदीकाल में मांग में वृद्धि रूपी उपाय अपनाने के कारण व्यापार चक्र विरोधक नीतियों को मांग प्रबन्धन (Demand Management) नीतियां भी कहा जाता है ।

12.3.1 मौद्रिक नीति

मौद्रिक नीति से मुद्रा की पूर्ति पर नियंत्रण के माध्यम से निम्नलिखित आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयत्न किये जाते हैं:

- आर्थिक विकास या वृद्धि दर को बनाए रखना;
- अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने का प्रयास करना; एवं
- कीमत स्तर में स्थिरता, विदेशी विनिमय दर में स्थिरता, निर्यातों में स्थिरता बनाए रखकर उच्चावचनों से रक्षा करना ।

देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में व्यापारिक बैंकों द्वारा दी जा रही साख को नियंत्रित करने के उद्देश्य से मौद्रिक नीति का अनुसरण किया जाता है । मौद्रिक नीति में मुद्रा की मात्रा, उपलब्धता एवं लागत में परिवर्तन के लिए विभिन्न उपायों का सहारा लिया जाता है। मौद्रिक नीति के प्रमुख उपकरण निम्नांकित है: भारत में मौद्रिक नीति लागू करने की जिम्मेदारी भारतीय रिर्जव बैंक की है ।

1. बैंक दर में परिवर्तन

2. खुले बाजार की क्रियाएं
3. न्यूनतम कोषानुपात दर-रेपो दर-रिवर्स-रेपो दर आदि में परिवर्तन कर मुद्रा की पूर्ति को बढ़ाना।
4. उपर्युक्त तीन परिमाणात्मक उपायों के साथ-साथ कुछ गुणात्मक उपाय भी अपनाए जाते हैं जिनमें मार्जिन की आवश्यक मात्रा को बढ़ाना, नैतिक जिम्मेदारी का अहसास करवाना इत्यादि प्रमुख है ।

- **बैंक दर** बैंक दर वह दर है जिस पर देश के व्यापारिक बैंक अपनी प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों पर (Rediscount) पुनर्बट्टा के आधार पर देश के केन्द्रीय बैंक से कोष प्राप्त करते हैं । यदि देश का केन्द्रीय बैंक, बैंक दर में वृद्धि करता है अथवा कमी करता है तो इससे बैंकों के उधार देय कोषों की लागत प्रभावित होती है । तेजी काल में बैंक दर में वृद्धि एवं मंदी काल में कमी की जाती है ।
- **खुले बाजार की क्रियाएं** मौद्रिक नीति का एक महत्वपूर्ण औजार खुले बाजार की क्रियाएं हैं । केन्द्रीय बैंक खुले बाजार में उधार देय कोषों की मात्रा को प्रमावित करने हेतु इसका उपयोग किया जाता है । मुद्रा प्रसार या तेजी की स्थिति में प्रीतिभूतियों का विक्रय किया जाता है एवं मंदी की स्थितियों में उन्हें पुन: क्रय किया जाता है ।
- **न्यूनतम कोषानुपात में परिवर्तन** मौद्रिक अधिकारी CRR, Repo एवं Reverse Repo दरों में परिवर्तन कर उधार देय कोषों की लागत को प्रभावित किया जाता है । तेजी काल में CRR, में वृद्धि की जाती है इससे बैंकों की उधार देने की क्षमता में कमी आती है । इसके विपरीत मंदी काल में CRR दर रेपो दर, रिवर्स रेपो दरें घटाई जाती है जिससे बैंकों के पास उपलब्ध कोष बढ़ जाते हैं ।

12.3.2 राजकोषीय नीति

राजकोषीय नीति देश की सरकार की व्यय एवं राजस्व नीति है । राजकोषीय नीति के माध्यम से उत्पत्ति रोजगार एवं कीमतों को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है । राजकोषीय नीति के उपकरण निम्नलिखित है:

1. करारोपण
2. सार्वजनिक व्यय
3. सार्वजनिक ऋण

उपर्युक्त वर्णित नीतियों के माध्यम में तेजीकाल में करों में वृद्धि एवं मंदीकाल में करों में कमी लाई जा सकती है । इसी प्रकार सरकार द्वारा अपने बजट से चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं पर व्यय को भी बढ़ाकर अथवा रोककर सरकार मूल्य स्तर एवं रोजगार स्तर को प्रभावित करने का प्रयास करती है । तेजी के दौर में सरकार अपने व्यय कम करके एवं मंदी के समय व्यय बढ़ाकर अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाने का प्रयास करती है । इसी प्रकार सरकारी ऋणों का प्रबन्धन भी मंदी एवं तेजी की परिस्थितियों के अनुरूप किया जाता है । तेजी के दौर में बजट अधिशेष रखकर उधार नहीं लिया जाना चाहिए एवं मंदी के समय घाटे के वित्त व्यवस्था कर व्यय बढ़ाए जाने चाहिए । सार्वजनिक व्यय, करारोपण एवं ऋण आदि का प्रबन्धन

सरल कार्य नहीं है । देश की सरकारों के समक्ष कई राजनीतिक बाधाएं होती है फिर भी सरकारें अपनी क्षमता के अनुरूप इनका प्रयोग करती हैं ।

बोध प्रश्न -01

1. भारत में मौद्रिक नीति को कौनसा बैंक लागू करता है?
2. मौद्रिक नीति के किन्हीं दो उद्देशों के नाम बताइये।
3. मौद्रिक नीति के मुख्य परिणात्मक उपकरण कौनसे है?
4. मौद्रिक नीति के मुख्य गुणात्मक उपकरण कौनसे है?
5. राजकोषीय नीति के प्रमुख उपकरण कौनसे है?
6. आर्थिक मंदी में सरकार को कौनसे राजकोषीय उपाय करने चाहिए?
7. आर्थिक तेजी में सरकार को कौनसे राजकोषीय उपाय करने चाहिए?

12.4 व्यापार चक्र विरोधी नीतियों की प्रभावकता

व्यापार चक्र निरोधक नीतियां यदि अर्थव्यवस्था में तेजी एवं मंदी की स्थिति में कुछ प्रभाव डाल कर इसके दुष्प्रभावों को कम कर सके तो इन्हें प्रभावी माना जाएगा अन्यथा इन्हें प्रमावी नहीं माना जा सकता है । अर्थशास्त्रियों की इस बारे में एक राय नहीं है । कीन्सवादी अर्थशास्त्रियों के मत में मौद्रिक नीति की अपेक्षा राजकोषीय उपाय अधिक कारगर होते हैं । अत: उनका झुकाव मौद्रिक नीति की ओर न होकर राजकोषीय नीति की ओर अधिक है । दूसरी तरफ मिल्टन फ्रीडमैन एवं अन्य मुदावादी अर्थशास्त्री राजकोषीय उपायों के पक्ष में नहीं है । उनका मानना है कि व्यापार चक्रों का मुकाबला करने के लिए मौद्रिक नीति के उपकरण एवं औजारों का ही सहारा लिया जाना चाहिए।

प्रसार काल में मौद्रिक नीति के माध्यम से मांग उत्पन्न करने के प्रयास किए जा सकते हैं परन्तु लागत प्रेरित (Cash Push) मुद्रा स्फीति का नियंत्रण करने में मौद्रिक नीति अप्रभावी रहती है । मध्यम स्तर की मुद्रा स्फीति या तेजी की स्थिति को काज दरों में परिवर्तनों के माध्यम से हल किया जा सकता है । तीव्र मुद्रा प्रसार की स्थिति में ब्याज दर ऊँची रहने के बाबजूद निवेश बढ़ाए जा सकते हैं क्योंकि उद्यमियों को निवेश लाभदायक लगते हैं । मंदी के दौर में उद्यमी या साहसी निवेश को लाभदायक नहीं मानते अत: ब्याज दरों में कमी के बावजूद निवेश नहीं बढ़ते । अत: मौद्रिक नीति सामान्य तेजी की परिस्थितियों में ही प्रभावी होगी । राजकोषीय नीति के माध्यम से सरकार स्वायत्त निवेश जारी रखकर अथवा स्वायत्त निवेश की मात्रा घटाकर अधिक प्रभावी तरीके से मुकाबला कर सकती है । सरकारी निवेश लाभदायकता से प्रभावित नहीं होंगे । अत: मांग प्रबन्धन के लिए राजकोषीय नीति अधिक प्रभावी होगी । परन्तु कीन्सवादी एवं मुद्रावादी अर्थशास्त्रियों की यह बहस अन्तहीन है, अत: समय एक परिस्थितियों के अनुरूप दोनों नीतियों का मिला जुला इस्तेमाल कर अर्थव्यवस्था में स्थायित्व स्थापित करने के प्रयास किए जाने चाहिए ।

12.5 साराश (Summary)

व्यापार चक्र के आधुनिक सिद्धान्त में हिक्स, सेम्युल्सन एवं काल्डोर के व्यापार चक्र सिद्धान्तों का नाम गिनाया जा सकता है । हिक्स एवं सेम्युल्सन ने व्यापार चक्रों के लिए गुणक एवं त्वरक की अन्तःक्रिया को उत्तरदायी ठहराया था । सेम्युल्सन का मानना था कि गुणक-त्वरक मिलकर अर्थव्यवस्था में अन्तहीन अस्थिरता उत्पन्न करते हैं जिससे अर्थव्यवस्था में सदैव उच्चावचन एक सीमा के भीतर होते हैं । ऊपरी परावर्तन बिन्दु का निर्धारण पूर्ण रोजगार स्तर से होता है एवं निचली सीमा निर्धारण अर्थव्यवस्था में उपलब्ध अतिरिक्त क्षमता पर निर्भर करता है क्योंकि सकल निवेश कभी शून्य से नीचे नहीं जा सकता । निम्नतम स्तर स्वायत्त निवेश एवं उसके गुणक प्रभावजनित आय स्तर पर निर्भर होगा । इस सिद्धान्त की विस्तृत चर्चा इकाई सेख्या 11 में की गई है । इसी क्रम में काल्डोर सिद्धान्त की चर्चा से स्पष्ट होता है कि उच्चावचन अर्थव्यवस्था के अन्दरूनी कारणों से उत्पन्न होते हैं । काल्डोर ने कीन्स की व्याख्या को आगे बढ़ाते हुवे कीन्स की बचत एवं निवेश फलनों की रेखीयता की मान्यता को समाप्त कर दिया । काल्डोर ने गैर-रेखीय बचत एह निवेश फलनों की अन्योय क्रिया से उत्पन्न अन्तर्जात कारकों की सहायता से व्यापार चक्रों की व्याख्या प्रस्तुत की । इन व्यापार चक्रों का प्रमुख कारण नियोजित निवेश एवं नियोजित बचत में अन्तराल उत्पन्न होना है । काल्डोर ने बचत एवं निवेश फलनों में एक अतिरिक्त चर पूँजीगत साधनों के भण्डार के रूप में डाला । इस प्रकार बचत एवं निवेश आय एवं पूँजीगत साधनों के भण्डार पर निर्भर होती है । इनके मूल्यों में अन्तराल व्यापार चक्रों के लिए उत्तरदायी है ।

12.6 शब्दावली (Glossary)

रैखीय फलन	Linear Function
गैर-रैखीय फलन	Non-Linear Function
सीमान्त निवेश प्रवृत्ति	Marginal Propensity to Invest (MRP)
सीमान्त बचत प्रवृत्ति	Marginal Propensity to Save (MPS)
मांग प्रबन्धन नीति	Demand Management Policy
मौद्रिक नीति	Monetary Policy
राजकोषीय नीति	Fiscal Policy
बैंक दर	Bank Rate
खुले बाजार की क्रियाएं	Open Market Operations
न्यूनतम कोषानुपात	Cash Reserve Ratio (CRR)
रेपो दर	Repo Rate
रिवर्स रेपो दर	Reserve Repo Rate
सार्वजनिक ऋण	Public Debt
सार्वजनिक व्यय	Public Expenditure

12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

Edward Shapiro, Macroeconomic Policy.

Musgrave & Musgrave, Public Finance in Theory and Policy.

एम.सी. वैश्य समष्टि अर्थशास्त्र ।

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. काल्डोर के व्यापार चक्र सिद्धान्त की विवेचना कीजिए ।
2. व्यापार चक्र नियंत्रण के लिए आप कौन-कौन सी नीतियों का सहारा लेंगे एवं क्यों?
3. व्यापार चक्र नियंत्रण के लिए मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों के मुख्य उपकरण कौनसे हैं, उनकी प्रभावकता पर आपके क्या विचार है ।

इकाई -13

आर्थिक विकास का अर्थ, आर्थिक विकास का परम्परागत सिद्धान्त

(Meaning of Economic Development, Classical theory of Economic growth)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 आर्थिक विकास का अर्थ

13.2.1 आर्थिक विकास का अर्थ - राष्ट्रीय आय में वृद्धि

13.2.2 आर्थिक विकास का अर्थ - प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

13.2.3 आर्थिक विकास का अर्थ - सर्वांगीण विकास

13.3 आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक उन्नति

13.3.1 आर्थिक वृद्धि के प्रकार

13.4 आर्थिक विकास की प्रकृति

13.5 आर्थिक विकास का माप

13.6 आर्थिक विकास का परम्परागत सिद्धान्त

13.6.1 परम्परागत सिद्धान्त के प्रमुख तथ्य

13.7 परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त - एक दृष्टि

13.7.1 परम्परागत आर्थिक विकास मॉडल समीकरण

13.8 परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त तथा विकासशील राष्ट्र

13.9 परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त की आलोचना

13.10 सारांश

13.11 शब्दावली

13.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य (Objectives)

आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने चारों तरफ के वातावरण पर अधिक नियंत्रण प्राप्त होता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी स्वतंत्रता में वृद्धि होती है । अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में मनुष्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त कठिनाइयों तथा सुविधाओं के मध्य अपना जीवन व्यतीत करता है, किन्तु शनैः-शनैः राष्ट्र में आर्थिक विकास होता है तो उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण विदोहन प्रारम्भ होता है तथा प्राकृतिक समस्याओं पर मनुष्य के

नियंत्रण में वृद्धि होती है । इस प्रक्रिया में मनुष्य के उपयोग हेतु वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा में वृद्धि होती है । आर्थिक विकास का वृहद अर्थ यह है कि राष्ट्र या समाज की प्रतिव्यक्ति, वास्तविक आय में वृद्धि होती है, अर्थात् आर्थिक विकास या वृद्धि एक परिणामात्मक प्रस्तुति है।

इस इकाई के माध्यम से हम किसी अर्थव्यवस्था के विकास सम्बन्धी तथ्यों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे एवं साथ-साथ आर्थिक विकास के सन्दर्भ में परम्परागत सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे जिससे वर्तमान में विद्यमान आर्थिक विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों को समझने में सुगमता प्राप्त हो ।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- आर्थिक विकास का अर्थ जान सकेंगे एवं यह भी समझ सकेंगे कि आर्थिक विकास, आर्थिक उन्नति तथा आर्थिक वृद्धि जैसे समानार्थक शब्दों के वास्तविक मायने क्या है?
- राष्ट्रीय आय, प्रतिव्यक्ति आय एवं सर्वांगीण विकास के रूप में आर्थिक विकास की परिभाषा कर सकेंगे;
- आर्थिक विकास के क्लासिकल मॉडल की विभिन्न मान्यताओं एवं समीकरणों से परिचित हो जाएंगे; एवं
- जान सकेंगे कि आर्थिक विकास के परम्परागत सिद्धान्त की प्रमुख कमियाँ क्या है?

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

यदि हमें आधुनिक विश्व के राष्ट्रों के आर्थिक विकास सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन करना है तो सर्वप्रथम आर्थिक विकास का अर्थ ज्ञात करना अनिवार्य है । इस विषय को अधिक सरल बनाने हेतु हमें इसकी पृष्ठभूमि में जाना होगा ।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् आर्थिक समस्याओं की तरफ विश्व आकर्षित हुआ था । विश्व के एक बड़े भू-भाग पर निर्धनता तथा पिछड़ेपन के कारण विश्व के आर्थिक विकास के भाग में बाधा उत्पन्न होने की सम्भावना के कारण अमीर व गरीब दोनों प्रकार के राष्ट्रों का ध्यान आर्थिक विकास की समस्याओं की तरफ आकर्षित हुआ था । वर्तमान में यह विकासशील राष्ट्रों की समस्याओं तथा उनके विकास की सम्भावनाओं पर केन्द्रित है । विश्व अर्थव्यवस्था में अमीर राष्ट्रों तथा गरीब राष्ट्रों के मध्य वृद्धि करती आर्थिक खाई ने आर्थिक विकास के प्रयासों की आवश्यकता को तीव्र बना दिया है । यातायात तथा संचार माध्यम के विकास ने गरीब राष्ट्रों के निवासियों को उसकी गरीबी के आभास में वृद्धि की है । ये राष्ट्र अपनी निर्धनता के प्रति सचेत हैं तथा उनके आर्थिक विकास की समस्या उनकी प्रमुख समस्या के रूप में प्रकट हुई है ।

राष्ट्रों के राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति से तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकता पर अधिक दबाव बना है । समाज यह समझने लगा है कि आर्थिक विकास के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है तथा राजनीतिक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए भी आर्थिक विकास अनिवार्य है । अत: द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् आर्थिक विकास एवं विकास की समस्याओं की तरफ सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित हुआ है ।

13.2 आर्थिक विकास का अर्थ (Meaning of Economic Growth)

आर्थिक विकास एक सतत् प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है । सामान्यत: हम कह सकते हैं कि आर्थिक विकास धनात्मक (Positive) शून्य (Zero) अथवा ऋणात्मक (Negative) हो सकता है । यदि राष्ट्रीय आय में समय के सापेक्ष वृद्धि होती है तो आर्थिक विकास धनात्मक होता है । यदि राष्ट्रीय आय में समय के सापेक्ष द्वारा वृद्धि नहीं होती है तो आर्थिक विकास ऋणात्मक होता है और यदि राष्ट्रीय आय अपरिवर्तनशील रहती है तो आर्थिक विकास शून्य होता है । वस्तुत: हम आर्थिक का अर्थ गतिहीनता व अवनति की स्थिति की व्याख्या के लिए नहीं करते हैं अपितु अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय में उत्तरोत्तर वृद्धि के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त करते है।

आर्थिक विकास की कोई निश्चित तथा सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत करना सरल नहीं हैं, क्योंकि विश्व में भिन्न राष्ट्रों के सन्दर्भ में आर्थिक विकास की परिभाषा विभिन्न रूप में प्रस्तुत की गई है । अध्ययन की सुविधा हेतु हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत व्याख्या कर सकते हैं ।

13.2.1 आर्थिक विकास का अर्थ - राष्ट्रीय आय में वृद्धि

आर्थिक विकास की परिभाषा यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के सन्दर्भ में की जाये तो - मेयर व बाल्डविन, प्रो. कुजनेट्स इत्यादि का मत है कि आर्थिक विकास से तात्पर्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि से है ।

मेयर व बाल्डविन के अनुसार "आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय दीर्घकाल में बढ़ती है।"

"Economic Development is a Process, Whereby an economy's real national income increases over a long period as time" - Meier & Boldwin, Economic DevlopmentP-3

प्रो. कुजनेट्स के अनुसार "राष्ट्रीय आय राष्ट्र को आर्थिक क्रियाओं की अंतिम उपज है जो आर्थिक क्रियाओं के समूहिक प्रयास को प्रदर्शित करती है तथा प्रचलित आर्थिक संगठन तथा उसके फल के अनुमान प्रस्तुत करती है" ।

"National income is the end product of a country's economic activity, reflecting the combind play of economic forces and serving to apprise the prevailing economic organization in term of its return" - Kuznets, Reading in the Theory of Income Distributionp-3.

आर्थिक विकास की उपर्युक्त परिभाषा से निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं ।

(i) आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है, का अर्थ अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन, यह परिवर्तन आर्थिक विकास की गति तथा समय पर निर्भर करता है । परिवर्तनों को सामान्यतया: हम दो भागों में बांट सकते हैं- प्रथम साधनों की पूर्ति में परिवर्तन इसमें जनसंख्या वृद्धि, पूँजी का संचयन, तकनीकी ज्ञान में वृद्धि, संस्थागत परिवर्तन प्रमुख है।

द्वितीय, वस्तु की मांग प्रक्रिया में परिवर्तन, इसके अन्तर्गत हम जनसंख्या के आकार में परिवर्तन, आय स्तर तथा उसके वितरण के स्वरूप में परिवर्तन, उपभोग प्रवृत्ति में परिवर्तन इत्यादि को सम्मिलित कर सकते है।

अत: आर्थिक विकास के फलस्वरूप मांग व पूर्ति के स्वरूप में परिवर्तन होते हैं जो कि आर्थिक विकास की गति तथा समय पर निर्भर करते हैं ।

(ii) वास्तविक राष्ट्रीय आय का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आर्थिक विकास से होता है । किसी अर्थव्यवस्था में एक निश्चित समय की अवधि में वस्तुओं तथा सेवाओं के विशुद्ध मूल्य में होने वाली वृद्धि । अत: राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास का माप करने का आधार होता है ।

(iii) आर्थिक विकास का अर्थ ज्ञात करते समय यह भी आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय में निरन्तर दीर्घकालीन वृद्धि होना अनिवार्य है अल्पकालीन घटकों से होने वाली वृद्धि को र्थिक विकास मानना गलत होगा ।

13.2.2 आर्थिक विकास का अर्थ - प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

विलियमसन, लिबिस्ट्रोन, लेविस वाश्नर आदि अर्थशास्त्रियों के मतानुसार प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि का धनात्मक रूप आर्थिक विकास है ।

विलियमसन व बटर्टिक के शब्दों में "आर्थिक विकास अथवा प्रगति से उस प्रक्रिया का बोध होता है जिसके द्वारा किसी राष्ट्र अथवा प्रदेश निवासी उपलब्ध साधनों का प्रयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओं के उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु करते हैं ।

"Economic Development or growth is the process where by the people of the country or region come to utilize the resources available to bring about a sustained increase in per capita production of goods and services" **Williamson and buttrick, Economic Devlopmentp-7.**

बुकानन तथा ऐलिस के मतानुसार "विकास का अर्थ है, विनियोग के द्वारा इस प्रकार के परिवर्तन किए जाय तथा इस प्रकार के साधनों में वृद्धि की जाय, जिनसे प्रति व्यक्ति, आय में वृद्धि सम्भव हो एवं इस प्रकार अर्द्ध विकसित क्षेत्रों की वास्तविक आय क्षमता को विकसित किया जाय ।"

"Development means developing the real income potentialities of the under developed area by using investment to effect those changes and to auqment those productive resources which promise real income per person" Buckanon and Ellis.

बेरन के अनुसार "भौतिक वस्तुओं के प्रति व्यक्ति उत्पादन की एक निर्धारित समय में वृद्धि के रूप में आर्थिक विकास को परिभाषित किया जाना चाहिए ।"

"Let Economic Growth be defined overtime as increase in per Capita output of material goods". **Baran.**

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास को राष्ट्रीय आय की तुलना में प्रति व्यक्ति आय द्वारा ही व्यक्त किया जाना चाहिए । प्राय: आर्थिक विकास का सूचक जीवन स्तर माना जाना चाहिए । अत: प्रति व्यक्ति की आय को ही आर्थिक विकास का संकेतक माना जाना चाहिए, क्योंकि सामान्यत: उच्च जीवन स्तर से अभिप्राय उच्च प्रति व्यक्ति आय से होता है चूंकि आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य जन-साधारण के जीवन स्तर को उच्च करना है इसलिए हम कह सकते हैं कि आर्थिक विकास बह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की प्रति व्यक्ति, शुद्ध आय दीर्घकाल में वृद्धि करती है ।

13.2.3 आर्थिक विकास का अर्थ - सर्वांगीण विकास

सामान्यत: हम आर्थिक विकास का लक्ष्य वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन वृद्धि से ज्ञात करते हैं किन्तु यह आर्थिक विकास का मात्र एक लक्ष्य नहीं है । वस्तुत: आर्थिक विकास से अभिप्राय राष्ट्रीय आय में वृद्धि, आर्थिक संरचना में सकारात्मक परिवर्तन, समाज का उच्च जीवन स्तर, समाज की मान्यताओं व दृष्टिकोण में परिवर्तन, राष्ट्रीय उत्पादन क्षमता में वृद्धि एवंमनुष्य का सर्वांगीण विकास है । अत: आर्थिक विकास एक व्यापक आर्थिक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप अन्ततोगत्वा एक राष्ट्र की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन स्पष्ट होता है ।

प्रो. ब्राईट सिंह के अनुसार आर्थिक विकास एक बहुमुखी तत्व है जिसमें मात्र मौद्रिक आय में वृद्धि सम्मिलित नहीं है अपितु वास्तश्कि आया शिक्षा, जन-स्वास्थ्य अधिक आशय तथा वस्तुत: उन समस्त सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में वृद्धि सम्मिलित होती है जो एक पूर्ण तथा सुखी जीवन का सृजन करती है ।

अत: हम कह सकते हैं कि मनुष्य का सर्वांगीण विकास ही आर्थिक विकास है ।

आर्थिक विकास की भिन्न-भिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण से हमें ज्ञात होता है कि आर्थिक विकास के अन्तर्गत निम्नलिखित लक्ष्यार्थ निहित है।

(i) पूँजी निर्माण हेतु अर्थव्यवस्था में पूँजीगत संसाधनों जैसे- मशीन, कारखानों इत्यादि के स्टॉक में वृद्धि होनी चाहिए ।

(ii) अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों वैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग किया जाना आवश्यक है जिससे उत्पादन के सभी क्षेत्रों में उत्पादन प्रविधि में धनात्मक परिवर्तन किया जा सके।

(iii) अर्थव्यवस्था की मानवीय पूँजी में विनियोग करके श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि की जा सकती है । यहां मानवीय पूँजी में विनियोग से तात्पर्य स्वास्थ्य सेशओं में सुधार, शिक्षा का विस्तार इत्यादि है । एक अर्थव्यवस्था को अपने विकास के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु मात्र पूँजीगत से साधनों में वृद्धि करना नहीं होता है अपितु मानवीय पूँजी निर्माण में वृद्धि करना आवश्यक होता है ।

13.3 आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक उन्नति (Economic Development, Economic Growth and Economic Progress)

सामान्यत: आर्थिक जगत में आर्थिक विकास (Economic Development) तथा आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) शब्दों का प्रयोग समान अर्थो में किया जाता है जिससे अध्ययनकर्त्ता का भ्रमित होना स्वाभाविक होता है ।

जबसे विश्व अर्थथवस्था को अमीर राष्ट्रों व गरीब राष्ट्रों के मध्य विभाजित किया जाने लगा था । उसी समय से आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि शब्दों के प्रयोग में भी अन्तर होने लगा था । विशेषत: प्रो. शुम्पीटर तथा श्रीमती हिक्स ने इस शब्दों के मध्य भेद प्रस्तुत किया था ।

आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) को एक स्वाभाबिक एवं सामान्य प्रक्रिया माना है जिसके लिए समुदाय को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना होता है ।

आर्थिक विकास (Economic Development) की प्रक्रिया के अन्तर्गत संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आयश्यक है जिसके अभाव में सामाजिक व्यवस्था की निश्चलता का मुकाबला करके भूतकाल से अवश्य ही सम्बन्ध विच्छेद करना सम्भव नहीं होता है । उदाहरणार्थ उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रगति को आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) से सम्बोधित किया जा सकता है जककई एशियाई राष्ट्रों की प्रगति को आर्थिक विकास (Economic Development) के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है क्योंकि इन राष्ट्रों की प्रगति उनके निश्चित प्रयासों का परिणाम था ।

प्रो. शुम्पीटर ने सर्वप्रथम सन् 1991 में प्रकाशित पुस्तक "Theory of Economic Development" में आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक विकास के मध्य भेद प्रस्तुत किया था ।

प्रो. शुम्पीटर के अनुसार विकास (Development) एक स्थिर अवस्था में एक विच्छिन्न (Discontinuous) तथा स्वत: (Spontaneous) परिवर्तन है जो पूर्व में स्थापित साम्य अवस्था को सदैव के लिए पूर्णत: परिवर्तन कर देता है । जबकि आर्थिक वृद्धि दीर्घकाल में होने वाला एक क्रमिक तथा स्थिर गीत का परिवर्तन है जो बचत तथा जनसंख्या की दर में होने वाली सामान्य वृद्धि का परिणाम होते हैं ।

"Development is a discontinuous and spontaneous change in the stationary state which for ever and displace equilibrium state previously exiting; while growth is a general and steady change in long run which comes abount by general increase in the rate of saving and population"- J**.A. Schumpeter, the Theory of Economic Development., p.p. 63-64.**

शुम्पीटर का मानना था कि विकास, व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करने वाली शक्तियों का प्रभाव है जबकि अन्य तल स्थिर रहते हैं । जबकि वृद्धि जनसंख्या का बचत इत्यादि में सामान्य वृद्धि का परिणाम होता है ।

श्रीमती हिक्स की विचारधारा थी कि आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) शब्द विकसित राष्ट्रों (developed Countries) के सन्दर्भ में प्रयोग किया जाता है जहां अनेक साधनों का ज्ञान पूर्व में होता है एवं वे विकसित होते हैं ।

इसके विपरीत आर्थिक विकास (Economic Development) का सम्बन्ध विकासशील राष्ट्रों (Developing Countries) से हैं । इन राष्ट्रों में संसाधनों की भविष्य में विदोहन की सम्भावना होती है । इस प्रकार हम कह सकते है कि विकास (Development) शब्द का प्रयोग विकसित राष्ट्रों के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है ।

प्रो. मैडिसन के शब्दों "अमीर राष्ट्रों में आय स्तर की वृद्धि को सामान्यतया आर्थिक वृद्धि कहा जाता है तथा गरीब राष्ट्रों में उसे आर्थिक विकास कहते हैं ।

"The raising of income levels is generally called economic growth in rich countries and in poor ones it is called economic development"-**A Maddison, Economic Progress and Policy in developing countries.**

इसी प्रकार आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) तथा आर्थिक उन्नति (Economic Progress)में भी अन्तर किया जा सकता है ।

आर्थिक उन्नति (Economic Progress) का अर्थ प्रतिव्यक्ति उत्पादन में वृद्धि से होता है जब कि आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) का अर्थ जनसंख्या तथा कुल आय दोनों में वृद्धि से होता है ।

13.3.1 आर्थिक वृद्धि के प्रकार

हम आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) को निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं

(i) **प्रगतिशील वृद्धि (Progressive Growth)** इसमें कुल वास्तविक आय की वृद्धि, जनसंख्या में वृद्धि से अधिक होती है ।

(ii) **प्रतिगामी वृद्धि (Regressive Growth)** इसमें कुल वास्तविक आय की वृद्धि, जनसंख्या में वृद्धि के अनुपात से कम होती है ।

(iii) **स्थिर वृद्धि (Static Growth)** इसमें कुल वास्तविक आय की वृद्धि, जनसंख्या में वृद्धि के अनुपात के समान होती है ।

बोध प्रश्न -01

1. आर्थिक विकास की राष्ट्रीय आय वृद्धि सम्बन्धी परिभाषा लिखिए ।
2. आर्थिक विकास की प्रति व्यक्ति आय वृद्धि की परिभाषा समझाइये ।
3. आर्थिक विकास का अर्थ सर्वांगीण विकास क्यों है?
4. आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि शब्द का अर्थ बताइए ।
5. आर्थिक उन्नति को समझाइए?
6. आर्थिक वृद्धि कितने प्रकार की होती है?

13.4 आर्थिक विकास की प्रकृति (Nature of Economic Development)

हमें आर्थिक विकास शब्द का अर्थ स्पष्ट है पुन: यह तथ्य अनिवार्य है कि आर्थिक विकास की प्रकृति क्या है? हम जानते हैं कि आर्थिक विकास गतिशील है क्योंकि इसका प्रमुख उद्देश्य आर्थिक प्रगति का अध्ययन करके दीर्घकालीन में आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण करके प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त करना है । अत: आर्थिक विकास का स्वभाव स्थैतिक (Static) तथा प्रावैगिक (Dynamic) स्वरूपों पर आधारित है ।

हम आर्थिक विश्लेषण में जब भी स्थैतिक शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा अभिप्राय गतिहीनता की स्थिति से नहीं होता है; अपितु उस अवस्था से होता है जिसमें परिवर्तन तो होते हैं किन्तु परिवर्तन होने की दर शून्य होती है ।

प्रो. हैरोड के शब्दों में "एक स्थैतिक संतुलन का अर्थ विश्राम की अवस्था से नहीं होता है अपितु उस अवस्था से होता है जिसमें कार्य दिन-प्रतिदिन तथा वर्ष-प्रतिवर्ष सतत् चलता रहता है, किन्तु उसमें कोई वृद्धि या हास नहीं होता है; तो उस आशय को स्थैतिक अर्थशास्त्र में प्रयोग किया जाना चाहिए। "

"Thus a static equilibrium by no means implies a state of idleness, but one in which work is steadily going forward day by day year, but without increase or diminution, that is to this active but unchanging process that the expression static economics should be applied." - **Harrod, Towards a Dynamic Economics, pp-3-4**

आर्थिक विश्लेषण में प्रावैगिक शब्द का प्रयोग उस समय किया जाता है जब समय के सापेक्ष होने वाले आर्थिक घटकों में परिवर्तनता की दर असमान होती है ।

प्रो. हैरोड के अनुसार "प्रावैगिक का सम्बन्ध विशेषत: निरन्तर परिवर्तन के प्रभाव एवं निर्धारित होने वाले मूल्यों ह्रास में परिवर्तन की दरों से होता है।"

"Dynamics will specially be concerned with the effects of continuina change with rate of change in the values that have to be determined"- **Harrod, Towards a Dynamic Economics,p-8.**

अब तक हम कह सकते हैं कि आर्थिक विकास मूलत: प्रावैगिक है । आर्थिक विकास का उद्देश्य एक तरफ आर्थिक प्रगति की स्थितियों का विश्लेषण करना होता है तो दूसरी तरफ दीर्घकालीन आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण करना भी होता है ।

अन्य शब्दों में आर्थिक विकास में परिवर्तन एक साम्य से दूसरे साम्य की और होता है तथा दीर्घकालीन परिवर्तनों की सहायता से आर्थिक विकास का अध्ययन किया जा सकता है ।

बोध प्रश्न-2

1. स्थैतिक शब्द का अर्थशास्त्र में क्या महत्व है ?

2. प्रावैगिक शब्द का अर्थ बताइये ?

3. आर्थिक विकास एक गत्यात्मक प्रक्रिया है क्यों ?

13.5 आर्थिक विकास का माप (Measurement of Economic Growth)

आर्थिक विकास का सम्बन्ध एक निश्चित समय से न होकर दीर्घकालीन परिवर्तनों से होता है । इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण आर्थिक विकास का एक सही एवं निश्चित माप प्रदान करना असम्भव होता है । इस परिवर्तनशीलता की विशेषता के कारण आर्थिक विकास के माप के विषय में भिन्न मत है । आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक विकास के निम्नलिखित मापदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं:-

(i) राष्ट्रीय आय (National Income).

(ii) प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita Income)

(iii) आर्थिक कल्याण (Economic Welfare)

उपर्युक्त में से कौन सा मापदण्ड एक उचित मापदण्ड होना चाहिए यहां हम कह सकते हैं कि विकासशील राष्ट्रों के लिए प्रतिव्यक्ति आय तथा विकसित राष्ट्रों के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि उचित प्रतीत होता है। सामान्यत: आर्थिक विकास का मापदण्ड प्रतिव्यक्ति आय ही स्वीकार किया जाता है।

बोध प्रश्न -03

1. आर्थिक विकास के माप का अर्थ बताइए।

2. आर्थिक विकास के मापदण्ड कितने है?

13.6 आर्थिक विकास के परम्परागत सिद्धांत (The Classical Theory of Economic Growth)

हमें यह ज्ञात है कि आर्थिक विकास एक इस प्रकार की प्रक्रिया है जिसके द्वारा निम्न आय स्तर वाली अर्थव्यस्था का रूपान्तरण उच्च आय वाली अर्थव्यवस्था में होता है। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्रिया-तत्व किस प्रकार तथा किन परिस्थितियों में होते हैं? एक गरीब राष्ट्र जो निम्न उत्पादकता, निम्न प्रति व्यक्ति आय, निम्न बचत दर तथा निम्न पूँजी निर्माण के कुचक्र से प्रभावित होता है, किस प्रकार इन स्थितियों से बाहर आता है तथा सतत् आर्थिक विकास की ओर अग्रासित होता है ।

इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर हमें आर्थिक विकास के सिद्धान्त के द्वारा प्राप्त होता है। आर्थिक विकास का सिद्धान्त इस तथ्य की व्याख्या करता है कि अर्थव्यवस्था में किस प्रकार के परिवर्तन होते हैं । वे कौन-कौन से घटक हैं जो आर्थिक विकास की गति में सहायक व बाधा उत्पन्न करते हैं । एक आर्थिक विकास का सिद्धान्त इस तथ्य पर भी प्रकाश डालता है कि जब

आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तो उसे यथावत् रखने के लिए क्या-क्या बातें अनिवार्य होती है।

परम्परागत अर्थशास्त्रियों जिनमें एडम स्मिथ (Adam Smith) रिकॉर्डो (Ricardo) तथा माथल्स (Malthus) प्रमुख हैं, को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने सर्वप्रथम एक अर्थव्यवस्था क्यों विकास करती है, का दीर्घकालीन कारण ज्ञात करने का प्रयास किया था। परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त अथवा परम्परागत अर्थशास्त्रियों द्वारा उन कारणों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया था जिनके कारण दीर्घकाल में राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तथा किस प्रकार एक राष्ट्र या एक अर्थव्यवस्था का आर्थिक विकास होता है ।

हमें यहां यह भी स्पष्ट करना है किं यदि हम एडम स्मिथ, डेविड रिकॉर्डो तथा माथल्स के आर्थिक विचारों का अध्ययन करते हैं तथा उनमें से जो विचार प्रत्यक्ष रूप से एक अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास से सम्बन्धित है। यदि उन विचारों का संकलन किया जाए, उन्हें एक साथ प्रस्तुत किया जाए तो यह आर्थिक विकास का परम्परागत सिद्धान्त कहा जाता है ।

परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अध्ययन का प्रमुख विषय किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास सम्बन्धी दीर्घकालीन कारणों की खोज करना था। उन्होंने अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों में पाए जाने वाले कारण सम्बन्धों के महत्व को समझा तथा यह बात बताने का प्रयास किया कि इन सम्बन्धों का किसी राष्ट्रों के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव होता है?

परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त के प्रतिपादन में परम्परागत अर्थशास्त्रियों द्वारा राष्ट्रीय आय को तीन भागों में व्यक्त किया था अर्थात् मजदूरी (Wages),लगान (Rent) तथा लाभ (Profit) क्योंकि परम्परागत अर्थशास्त्रियों का मत था कि इनके संबन्ध ही प्रमुख रूप से आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं।इसी आधार पर राष्ट्रीय उत्पादन को मात्र कृषि तथा निर्मित वस्तुओं में ही विभाजित किया था।इसके साथ-साथ परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त द्वारा इस प्रकार की नीतियों का निर्माण किया जो उस समय में आर्थिक विकास की गति को वृद्धि प्रदान कर सके।

13.6.1 परम्परागत सिद्धान्त के प्रमुख तथ्य

प्रस्तुत इकाई के उपर्युक्त अध्ययन से हमें यह स्पष्ट है कि सभी परम्परागत अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक विकास के सन्दर्भ में प्रस्तुत विचारों का संकलन ही हमारा परम्परागत सिद्धान्त है । अत: अध्ययन की सुविधा हेतु यदि इन अर्थशास्त्रियों के विचारों को संयुक्त रूप में व्यक्त किया जा सकता है जिसकी व्याख्या निम्न प्रकार है:-

(i) **विकास एक संचयी प्रक्रिया है** परम्परागत आर्थिक सिद्धान्त का प्रथम मत यह है कि आर्थिक विकास इस प्रकार की प्रक्रिया है जो शनैः-शनै: घटित होती है तथा जिसका प्रभाव संचयी होता है ।

(ii) **आर्थिक विकास के लिए भौतिक वस्तुओं का उत्पादन आवश्यक है** परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त भौतिक वस्तुओं के उत्पादन में होने वाली वृद्धि को आर्थिक विकास का संकेत मानता है । यहां पर आर्थिक विकास के मात्र तीन घटक है - भूमि, श्रम व पूँजी

के अस्तित्व को ही स्वीकार किया गया है । आर्थिक विकास का मापदण्ड, राष्ट्रीय आय मे होने वाली वृद्धि को माना गया है ।

(iii) **विकास के लिए पूँजी निर्माण आवश्यक है** परम्परागत अर्थशास्त्रियों का मत था कि राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु पूँजी निर्माण एक अनिवार्यता है यह सिद्धान्त पूँजी निर्माण की दर तथा आर्थिक विकास की दर में एक प्रत्यक्ष अनुपात की कल्पना करता है ।

परम्परागत आर्थिक विकास यह मानता है कि बचत में वृद्धि करने के लिए उपभोग को सीमित करना गलत है । बचत करने की पात्रकता मात्र पूँजीपति या भू-स्वामी की ही है क्योंकि श्रमिक वर्ग बचत करने में सक्षम नहीं है ।

(iv) **पूँजी विनियोग की प्रेरणा लाभ पर आधारित** परम्परागत आर्थिक विचार इस मत के समर्थक थे कि पूँजी निर्माण अन्ततः पूँजीपति वर्ग पर निर्भर करता है, यदि पूँजीपति वर्ग को उनके विनियोग तथा साहस करने का प्रतिफल लाभ अधिक लाभ प्राप्त होता है तो वे अधिक पूँजी विनियोग करने योग्य होता है ।

इन क्चिारकों का मत था कि लाभ की दर को अधिक करने के लिए श्रम (मजदूरी) की दर को कम करना चाहिए, किन्तु मजदूरी की यह दर जीवन निर्वाह स्त;! से कम नहीं होनी चाहिए ।

(v) **राज्य सरकार का न्यूनतम हस्तक्षेप** परम्परागत अर्थशास्त्रियों का यह मानना था कि जब तक एक व्यक्ति को सामाजिक तथा आर्थिक विषयों की पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होगी तब तक आर्थिक विकास हेतु आवश्यक आर्थिक प्रेरणाएं उत्पन्न नहीं हो सकती है । ये विचारक इस बात के भी समर्थक थे कि पूर्ण प्रतियोगिता उत्पादन तथा उपभोग की स्वतंत्रता, निजी सम्पत्ति का अस्तित्व नहीं होगा, तब तक आर्थिक विकास सम्भव नहीं है क्योंकि वे इन घटकों को आर्थिक विकास की प्रेरणा या उतेरक मानते थे ।

परम्परागत सिद्धान्त राज्य सरकार का हस्तक्षेप मात्र प्रशासनिक कार्यो, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि तक ही सीमित मानता है ।

(vi) **अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार की स्थिति** परम्परागत आर्थिक विकास का सिद्धान्त यह मानता है कि अर्थव्यवस्था (राष्ट्र) में सदैव पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्यमान होती है । अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी तथा अति-उत्पादन सम्मद नहीं है । यदि अर्थव्यवस्था में बाह्य घटकों का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होता है तो मांग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा पूर्ण रोजगार स्वतः ही स्थापित हो जाती है ।

(vii) **स्थिर अवस्था** परम्परागत आर्थिक अर्थशास्त्रियों का मत था कि कोई भी अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास की अंतिम स्थिति स्थिरता की अवस्था को अवश्य प्राप्त करती है ।

उनका मत था कि समय के सापेक्ष अर्थव्यवस्था एक इस प्रकार की स्थिति को प्राप्त करती है, जहां लाभ की दर शून्य तक हो जाती है । जब लाभ की दर शब्द हो जाएगी तब पूँजी से चयन पूर्ण रूप से रूक जाएगा एवं अर्थ व्यवस्था राष्ट्र) एक स्थिर बिन्दु पर पहुँच जाएगी ।

13.7 परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त - एक दृष्टि (Classical Model of Economic Growth: An Overview)

हम परम्परागत आर्थिक विकास मॉडल (सिद्धान्त) संक्षेप में अक्त कर सकते हैं । मान लीजिए अर्थव्यवस्था में लाभ की मात्रा में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि होती है जिससे पूँजी विनियोग में वृद्धि होती है । परिणामस्वरूप मजदूरी कोष तथा मजदूरी की दर में वृद्धि होती है । उच्च मजदूरी के कारण जनसंख्या में वृद्धि होती है, साथ-साथ खाद्यान्नों की मांग में वृद्धि हो जाती है साथ-साथ ही श्रम व पूँजी का विनियोग किया जाएगा । यहां उत्पत्ति हास नियम क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप उत्पादन लागत में वृद्धि होती' है ।

अत: लगान व मजदूरी दोनों में ही वृद्धि होगी । इस स्थिति में लाभ की मात्रा में वृद्धि का ह्रास होता है । लाभ की मात्रा के हास के परिणामस्वरूप विनियोग घटने लगेगा तकनीकी प्रगति रूप जायेगी, मजदूरी की दर में हास होगा तथा अन्तत: पूँजी संचयन अवरूद्ध हो जाएगा । अत: हम कह सकते हैं ' कि 'परम्परागत विकास मॉडल में पूँजीवादी विकास का अंतिम परिणाम स्थिरता है । यह स्थिरता लाभों के द्वारा की स्वाभाविक प्रवृति तथा उसके परिणामस्वरूप पूँजी संचयन के अवरोध से उत्पन्न होता हौ

परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त निम्न प्रकार से किया जा सकता है ।.

लाभ में वृद्धि
↓
विनियोग वृद्धि
↓
तकनीकी ज्ञान में वृद्धि
↓
अधिक जनसंख्या
↓
खाद्यान्न की अधिक मात्राएं (मांग)

स्थिरता की अवस्था
↑
प्रगति में बाधा
↑
विनियोग ह्रास
↑
लाभ में ह्रास
↑
श्रम लागत वृद्धि
↑
लगान वृद्धि
↑
उत्पादन वृद्धि का प्रयास (भूमि का घटता प्रतिफल)

आर्थिक विकास के परम्परागत मॉडल को हम चित्र के माध्यम से भी प्रस्तुत कर सकते हैं । यहां स्पष्ट है कि t समय अवधि में अर्थव्यवस्था प्रारम्भिक बिन्दु k से बिन्दु S तक गति करती है । बिन्दु S के पश्चात् वक्र में परिवर्तन दर शून्य हो जाती है । क्योंकि लगान तथा श्रम की दर में वृद्धि के कारण लाभ की दर शून्य होने लगती है? । परिणामस्वरूप पूँजी संचयन रूक जाता है ।

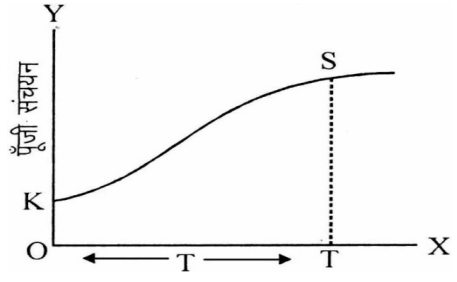

रेखा चित्र 13.1

13.7.1 परम्परागत आर्थिक विकास मॉडल समीकरण

परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त को सर्वप्रथम गणितीय रूप में प्रोहिगीन्स (Higgins) द्वारा अपनी पुस्तक Economic Development में प्रस्तुत किया गया था जिसका सारांश निम्न प्रकार है।

(i) **उत्पादन फलन** कुल उत्पादन अर्थव्यवस्था में उपलब्ध भूमि, श्रम, तकनीकी व पूँजी की मात्रा पर निर्भर करता है ।

अर्थात् O = F (L,K,T,Q)

O = कुल उत्पादन

L = श्रम की मात्रा

T = तकनीकी ज्ञान

K = भूमि की मात्रा

Q = पूँजी की मात्रा

(ii) **पूंजी संग्रह** पूँजी निर्माण व तकनीकी ज्ञान परस्पर सम्बन्धित होते हैं ।

अर्थात् T = T (I)

T = तकनीकी ज्ञान

I = विनियोग

(iii) विनियोग लाभ पर निर्भर होता है ।

अर्थात् I = I (P).

I = तकनीकी की मात्रा

P = लाभ की मात्रा

(iv) लाभ, श्रम पूर्ति तथा तकनीकी ज्ञान की प्रगति पर निर्भर करता है ।

अर्थात् P = P (T, L)

P = लाभ की मात्रा

T = तकनीकी ज्ञान

L = श्रम को पूर्ति

(v) श्रम की पूर्ति के स्तर पर निर्भर करती है ।

अर्थात् L = L (W)

L = श्रम

W = मजदूरी

(vi) मजदूरी विनियोग के स्तर पर निर्भर करता है ।

अर्थात् W = W (I)

W = मजदूरी निधि

I = विनियोग

अंतिम समीकरण के रूप में हम कह सकते हैं कि कुल उत्पादन का मूल्य कुल राष्ट्रीय आय के बराबर होता है तथा कुल राष्ट्रीय आय लाभ तथा मजदूरी का योग होता है ।

अर्थात् O = (P) + (W)

O = कुल उत्पादन

P = लाभ

W = मजदूरी

आर्थिक विकास की उपर्युक्त समीकरण यह स्पष्ट करती है कि आर्थिक विकास का क्रम किस प्रकार परस्पर सम्बन्धित है ।

बोध प्रश्न - 04

1. परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त क्या है ?
2. परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त के प्रतिपादन में किन-किन अर्थशास्त्रियों का योगदान है ?
3. परम्परागत आर्थिक विकास मॉडल की समीकरण लिखिए ।

13.8 परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त तथा विकासशील राष्ट्र (Classical Economic Growth Model and Development Countries)

परम्परागत आर्थिक विकास मॉडल जो कि विशेषत: विकसित अर्थव्यवस्था (पूँजीवादी अर्थव्यश्स्था) की सभी शर्ते पूर्ण करता है । विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए इसके उपयुक्तता अधिक नहीं है क्योंकि इन राष्ट्रों में बाजार का आकार सामान्यत: छोटा होता है जिसके परिणामस्वरूप बचत करने की क्षमता तथा पूँजी विनियोग की सम्भावना कम होती है । तात्पर्य यह है कि बाजार का लघु आकार, उत्पादकता व पूँजीगत विनियोग को सीमित रखते हुए आय स्तर को निम्न बनाए रखता है ।

सरल शब्दों में विकासशील राष्ट्रों में वास्तविक आय का निम्न स्तर होता है जबकि उपभोग प्रवृत्ति उच्च होती है । इसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक विकास हेतु अनिवार्य पूँजी संचयन का अभाव होता है । वस्तुत: यह विकास मॉडल श्रम विभाजन तथा बाजार के विस्तार पर आधारित है जो कि विकासशील राष्ट्र पर पूर्णत: लागू नहीं होता है ।

13.9 परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Classical Theory Economic Growth)

(i) परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अनुसार विकास की प्रक्रिया स्थैतिक प्रकृति की है जबकि वास्तविकता यह है कि आर्थिक विकास समरूप व सतत न होकर शनैः-शनैः अथवा झटके के साथ होता है ।

(ii) परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है ।

(iii) यह सिद्धान्त आर्थिक विकास के क्षेत्र के रूप में सार्वजीनक क्षेत्र के महत्व को बताने में असमर्थ रहा है ।

(iv) परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त तकनीकी ज्ञान की सम्भावनाओं का अनुमान लगाने में असमर्थ है ।

(v) वर्तमान में प्रदत्त परम्परावादी अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त मजदूरी लगान तथा लाभ सम्बन्धी सिद्धान्त गलत सिद्ध हुए हैं ।

13.10 सारांश (Summary)

यदि हमें आर्थिक विकास की प्रक्रिया को समझना है तो आर्थिक विकास के मॉडल का ज्ञान होना आवश्यक है तथा आधुनिक विश्व अर्थव्यवस्था में समय के सापेक्ष जितने भी आर्थिक विकास के सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं उनमें हमारा प्रथम अध्ययन परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त ही है ।

हम विश्व अर्थव्यवस्था का विकास इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति से प्रारम्भ मानते हैं अर्थात् समकालीन अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, रिकॉर्डो, माथल्स आदि ने जो आर्थिक विकास के विषय में मत व्यक्त किए हैं । उनका संकलन ही वस्तुत: परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त है जिसे हमने मॉडल के रूप में भी अध्ययन किया है । चूँकि विकासशील राष्ट्र श्रम प्रधान राष्ट्र होते हैं । अत: यह सिद्धान्त इन राष्ट्रों में स्पष्ट रूप से लागू नहीं हो सकता हे ।

13.11 शब्दावली (Glossary)

धनात्मक	Positive
ऋणात्मक	Negative
आर्थिक विकास	Economic Development
आर्थिक वृद्धि	Economic Growth
आर्थिक उन्नति	Economic Progress
विच्छिन्न	Discontinuous
स्वत:	Spontaneous
बचत	Saving
जनसंख्या	Population
प्रगतिशील वृद्धि	Progressive Growth
प्रतिगामी वृद्धि	Regressive Growth
स्थिर वृद्धि	Static Growth
राष्ट्रीय आय	National Income
प्रतिव्यक्ति आय	Per Capita Income
आर्थिक कल्याण	Economic Welfare

13.12 सन्दर्भ ग्रन्ध (Reference)

Boldwin, R.E "Economic Development and Growth"

Meier & Boldwin Kuznets "Economic development Reading in the Theory of Income Distribution

Schumeter J.A., “The Theory of Economic Development”.

Maddison.A, “Economic Progress and Policy in Developing Countries”.

H.Arrod, “Towords a Dynamic Economic”

सिंह, एस.पी., आर्थिक विकास एवं नियोजन

13.13 अम्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. परम्परागत आर्थिक विकास सिद्धान्त केप्रमुख तत्वों का वर्णन कीजिए ।
2. आर्थिक विकास के परम्परागत सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए ।
3. आर्थिक विकास के परम्परागत सिद्धान्त के मुख्य अंगौ की व्यावहारिक महत्ता को विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में मूल्यांकित कीजिए ।
4. "परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूँजीवादी विकास तकनीकी प्रंगति तथा जनसंख्या की वृद्धि के मध्य एक दौड़ है ।" समीक्षा कीजिए ।

इकाई -14

मार्क्स आर्थिक विकास का सिद्धान्त

(Marxian Model of Economic Development)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 मार्क्स के विकास सिद्धान्त का आधार

14.2.1 इतिहास की मौतिकवादी व्याख्या

14.2.2 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

14.2.3 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

14.3 मार्क्सवादी आर्थिक विकास का सिद्धान्त

14.3.1 सरल पुनरूत्पादन योजना

14.3.2 विकास हेतु संचयन आगयक

14.3.3 विकास संचयन का परिणाम

14.3.4 एकाधिकारी पूँजीवाद,

14.3.5 समाजवाद का जन्म

14.4 विकास की अवस्थाएं

14.5 मार्क्सवादी विकास मॉडल

14.6 मार्क्स के विकास मॉडल की आलोचना

14.7 विकासशील राष्ट्र तथा मार्क्स का सिद्धान्त

14.8 सारांश

14.9 शब्दाबली

14.10 सन्दर्भ ग्रन्ध

14.11 अभ्यासार्थे प्रश्न

14.0 उद्देश्य (Objectives)

यदि अर्थशास्त्र का जनक एडम स्मिथ को माना जाता है तो कार्ल मार्क्स को समाजवादी आन्दोलन का प्रभावशाली पथ प्रदर्शक तथा मार्क्सवाद का प्रवर्तक माना जाता है । आधुनिक आर्थिक जगत में एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक के समरूप्र कार्ल मार्क्स की पुस्तक भी विश्व के उच्चकोटि के ग्रन्थों में सम्मिलित की जाती है । वस्तुस्थिति तो यह है कि मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक मार्क्स को अपना पैगम्बर मानते हैं तो उनके लिए मार्क्स की विचारधारा धर्म है तथा मार्क्स की पुस्तक, बाईबिल के समान है । आधुनिक इतिहास में शायद ही किसी आर्थिकं विचारक का महत्व तथा प्रभाव इतना रहा हो, जितना कि कार्ल मार्क्स का है

। यथार्थ में कार्ल मार्क्स इतिहास के दर्शन के लेखक थे, जिन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अन्त होगा तथा समाजवादी अर्थव्यव्स्था का समागमन होगा । हम यहां पर कार्ल मार्क्स के आर्थिक विकास के सन्दर्भ में प्रस्तुत विचारों का विश्लेषण करने का प्रयास कर रहे हैं, अत: मात्र उन्हीं सिद्धान्तों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है जिनका सम्बन्ध प्रस्तुत इकाई से है ।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- मार्क्स की इतिहास की मौतिकवादी व्याख्या की अवधारणा से परिचित हो जाएंगे;
- मार्क्स के आर्थिक विकास के मॉडल की व्याख्या कर सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

कार्ल मार्क्स के प्रदत्त सिद्धान्त के विषय में प्रोशुम्पीटर ने लिखा हे कि "मार्क्सवाद एक धर्म है किसी अन्य धर्म में विश्वास करने वालों की भांति कहर मार्क्सवादी के लिए विरोधी मात्र गलती पर ही नहीं अपितु पाप ग्रस्त है ।" कार्लमार्क्स ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अनिवार्य रूप से समाज हो जाने तथा विकास के अंतिम चरण के रूप में साम्यवादी अर्थव्यवस्था स्थापित होने की भविष्यवाणी की थी । मार्क्सवादी परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के विकास सिद्धान्तों की तुलना में अधिक व्यापक होने का मत प्रस्तुत करता है । मार्क्स का कथन है कि तकनीकी विकास की धीमी प्रगति अथवा प्राकृतिक साधनों का अभाव आदि आर्थिक विकास सम्बन्धी ऊपरी कठिनाइयां है । किन्तु विकास के जिम्मेदार घटकों को ज्ञात करने तथा उन्हें समझने के लिए हमें उस आर्थिक प्रणाली को समझना होगा जिसके अन्तर्गत उत्पादन होता है । उत्पादन की विशिष्ट एक आर्थिक प्रणाली समाज के वर्ग ढांचे को निर्धारित करती है तथा वर्ग ढांचा समाज की संस्कृति ' को निर्धारित करता है । इस प्रकार कार्ल मार्क्स के लिए आर्थिक विकास का अध्ययन समाज के व्यापक अध्ययन के समान है । प्रस्तुत इकाई में कार्ल मार्क्स के सभी सिद्धान्तों पर विचार न करके मात्र आर्थिक विकास की कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे ।

14.2 मार्क्स के विकास सिद्धान्त का आधार (Basis of Marxian Theory of Development)

कार्ल मार्क्स ने अपने अध्ययन के लिए इतिहास का ऐसा दर्शन प्रस्तुत किया; जो पूँजीवाद के अनिवार्य पतन तथा समाजवाद के उदय की भविष्यवाणी करता था । मार्क्स ने भी पूँजीवादी अर्थव्यावस्था के विकास तथा उसके विघटन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया था । मार्क्स का बिश्लेषण विशेषत: यह प्रदर्शित करने का प्रयास करता है कि आर्थिक प्रगति सम्पूर्ण समाज के ढांचे में किस प्रकार परिवर्तन उल्पन्न करती है । उनका विचार था कि पूँजीवाद का अंत आर्थिक कारण से न होकर सामाजिक कारणों से होगा, तथा समाज का विघटन उस अवस्था में होगा जबकि पूँजीवाद आर्थिक विकास की उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेगा । इसलिए हम मार्क्स विचारों या दर्शन का संक्षिप्त विदरण जो कि उनके विकास सिद्धान्त का आधार है, सरलता से निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं-

14.2.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation of History)

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या सामाजिक जीवन के विकास के कारणों पर प्रकाश डालती है । मार्क्स ने सामाजिक विकास की तात्विक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या को अस्वीकार करके उनके स्थान पर ऐतिहासिक भौतिकवादी व्याख्या प्रदान की है । सामाजिक विकास की तात्विक व्याख्या को अस्वीकार करने का कारण मार्क्स ने यह बताया कि यह रहस्यमय है तथा मनोवैज्ञानिक व्याख्या का तिरस्कार इस तथ्य से किया कि मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती है अपितु सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है । अत: मार्क्स के लिए इतिहास मात्र घटनाओं का संकलन नहीं हैं अपितु इतिहास सदैव अवश्य ही कुछ नियमों का पालन करता है; जो सतत् परिवर्तनशील सामाजिक व्याख्याओं को जन्म देता है ।

इस प्रकार मार्क्स द्वारा इतिहास का आर्थिक बिश्लेषण करने का प्रयास किया गया था एवं कहा कि इतिहास की सभी घटनाओं का आर्थिक आधार अवश्य ही होता है । अन्य शब्दों में इतिहास का निर्माण आर्थिक कारणों द्वारा होता है । विश्व में हुए युद्ध राजनैतिक आन्दोलन, उद्भव इत्यादि आर्थिक कारण से उतन्न होते हैं । इस प्रकार मार्क्स के मतानुसार उत्पाद विधि ' (Mode of Production) तथा उत्पादन सम्बन्ध (Relation of Production) किसी भी युग की सांस्कृतिक व्याख्या उसके नैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विचार क्रम को निर्धारित करते हैं । अत: सभी सामाजिक संस्थाएं आर्थिक परिस्थितियों, विशेषत: उत्पादन प्रणाली द्वारा निर्धारित तथा प्रभावित होती है । अत: मार्क्स के शब्दों में 'सामाजिक परिवर्तनों का कारण उत्पादन तथा विनिमय की विधियों में पाया जाता है । ' मार्क्स इस बात के पूर्ण समर्थक थै कि उत्पादन की दशाओं का समाज की संस्थाओं को निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है ।

मार्क्स ने इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया था । उनका मत था कि हस्तचलित कल (Hand Mill) द्वारा सामन्तबादी समाज की उत्पत्ति की तथा वाष्पचलित कल (Production Technic) ने पूँजीवादी समाज की उत्पत्ति की । अत: उत्पादन विधियों में परिवर्तन होने से सामाजिक ढांचे (Social Setup) में भी परिवर्तन होता है । वाष्पचलित कल के आविष्कार तथा विकास होने के परिणामस्वरूप नवीन सामाजिक कार्य तथा नवीन स्थितियां, नवीन विचार उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार आर्थिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन को जन्म देता है । इसी प्रकार आर्थिक परिवर्तन राजनीतिक स्थिति में भी परिवर्तन उत्पन्न कर देता है । सरल शब्दों में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में राजनीतिक संगठन इस प्रकार बन जाता है जो व्यक्तिगत पूँजी सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा करता है तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था में राजनीतिक संगठन (प्रशासनिक प्रणाली) पूँजीवादी प्रशासनिक प्रणाली से सदैथ भिन्न होती है । उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को विकसित तथा निर्धारित करता है तथा उत्पादन प्रणाली सामाजिक संगठन का आधार हुआ करती है ।

14.2.2 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

कार्ल मार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की धारणा 'हीगलवाद' पर आधारित ही है । हीगल के मतानुसार प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया को जन्म देती है एवं क्रिया व प्रतिक्रिया के मध्य संघर्ष होता है जिसके परिणामस्वरूप नयी परिस्थितियों को जन्म मिलता है प्रत्येक प्रारम्भिक स्थिति (Thesis) अन्य विरोधी स्थिति (Anti-Thesis) को उत्पन्न करती है । उक्त दोनों के मध्य संघर्ष के परिणामस्वरूप तृतीय स्थिति (Synthesis) को जन्म देती है । अत: विश्व में परिवर्तनों का क्रम संघर्ष पर आधारित है । मार्क्स के अनुसार माग समाज का सम्पूर्ण प्राचीन तथा वर्तमान इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है । अत: द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से तात्पर्य आर्थिक प्रणाली में उत्पन्न असंगतियों के पश्चात् ही समाज प्रगति करता है ।

सरल शब्दों में भू-स्वामित्व की सामन्तवादी प्रणाली प्रारम्भिक स्थिति में प्रगतिशील सिद्ध हुई थी एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया को सहायता प्राप्त हुई थी किन्तु सामन्तवादी समाज की सीमित प्रेरणाओं के आधार पर संचय की स्थिति स्थिर नहीं रह सकी थी । उत्पादन शक्तियों तथा सामाजिक सम्बन्धों के मध्य उत्पन्न असंगति ने पूँजीवादी प्रणाली को उत्पन्न किया था । एक स्तर के पश्चात् पूँजीवाद में भी असंगतियां उत्पन्न हो गई थी । इसके परिणामस्वरूप अन्त में एक नवीन प्रणाली जिसे समाजवाद कहा गया की उत्पत्ति हुई थी ।

14.2.3 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

यदि हमें कार्ल मार्क्स के आर्थिक विकास समबन्धी विचारों को समझना है तो अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) को समझना आवश्यक है । क्यों कि यह सिद्धान्त उनके आर्थिक विकास सम्बन्धी विचार या सिद्धान्त का आधार है ।

यहां एक अन्य तथ्य यह महत्वपूर्ण है कि मार्क्स द्वारा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त करने के लिए मूल के श्रम सिद्धान्त (Labour Theory of Value) को आधार बनाया गया है।

मार्क्स 'के अनुसार प्रत्येक वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन में प्रयोग किए गए श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारित - होती है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिक का कार्य वस्तु का उत्पादन करना होता है, किन्तु वस्तु पर अधिकार पूँजीपति वर्ग का होता है । तात्पर्य पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में समाज का विभाजन दो वगों, में होता है । प्रथम - पूँजीपति वर्ग जो उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है । द्वितीय - श्रमिक वर्ग जो उत्पादन प्रक्रिया में अपनी श्रम शक्ति का विक्रय पूँजीपति वर्ग को करता है ।

मार्क्स का मत है कि पूँजीपति श्रमिक वर्ग या श्रम को वह सम्पूर्ण मूल्य नहीं प्रदान करता है जो श्रमिक वर्ग द्वारा उत्पादित वस्तु के विक्रय द्वारा पूँजीपति को प्राप्त होता है । इनका मत है कि वस्तु का विक्रय मूल्य श्रमिक को प्राप्त होना चाहिए किन्तु पूँजीपति श्रमिक द्वारा उत्पादित मूल्य के एक अंश या हिस्से को अपने पास रख लेता है जो कि श्रम या श्रमिक वर्ग का शोषण है ।

अत: एक अवधि तक तो श्रमिक अपने लिए कार्य करता है, अर्थात् उस मूल्य का निर्माण करता है जो मजदूरी (Wages) के रूप में पूँजीपति द्वारा उसे दिया जाता है । इसको मार्क्स आवश्यक श्रम या मूल्य कहते हैं ।

एक समय अवधि के पश्चात् श्रम या श्रमिक एक इस प्रकार के मूल्य का निर्माण करता है, जिसे पूँजीपति द्वारा अपने पास रख लिया जाता है । मार्क्स ने इस प्रकार के मूल्य को अतिरिक्त मूल्य अथवा बचत श्रम कहा है । इस प्रकार मार्क्स ने श्रम के दो प्रकार बताए हैं।

(1) आवश्यक श्रम (2) बचत श्रम ।

उक्त विवरण को हम सरल रूप में समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं । हम यह मानते हैं कि श्रम की एक इकाई (मजदूर) नौ घन्टे परिश्रम करता है । अत: उसके श्रम के उत्पादन का विनिमय मूल्य नौ घन्टे के श्रम के बराबर है । यदि श्रमिक (मजदूर) को मात्र आठ घन्टे श्रम, श्रम के बराबर उत्पादन का विनिमय मूल्य प्रदान किया जाता है तो श्रमिक (मजदूर) द्वारा एक घन्टे में जो उत्पादन किया जाता है वह एक घन्टे की श्रम की बचत विनिमय मूल्य के तुल्य पूँजीपति के पास चली जाती है वह यहीवास्तब मैं-श्रम का शोषण है जो पूँजीपति के द्वारा किया जाता है ।

यहां यह स्पष्ट है कि यदि श्रमिक द्वारा उत्पादन का पूर्ण मूल मजदूरी के रूप में श्रमिक को मिल जाए तो पूँजीपति को अतिरिक्त मूत्यु कदापि प्राप्त नहीं लेगा । अत: अतिरिक्त मूल्य श्रमिक के श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु के मूल्य तथा श्रमिक को प्राप्त होने वाली मजदूरी के अन्तर के बराबर होता है

इस तथ्य को समीकरण के रूप में लिख सकते हैं-

S = P - W

S = अतिरिक्त मूल्य

P = वस्तु की कीमत जो पूँजीपति को प्राप्त होती है ।

W = मजदूरी

मार्क्स बताते हैं कि पूँजीपति का उद्देश्य इससे प्राप्त होने वाले अतिरिक्त मूल्य को अधिकतम करना होता है । इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु पूँजीपति निम्न प्रयास कर सकता है-

(i) श्रमिक से अतिरिक्त घन्टे परिश्रम कराना ।

(ii) श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग करना ।

(iii) श्रमिक के पारिश्रमिक की दर में कमी करना ।

(iv) श्रमिक की उत्पादकता में वृद्धि करना ।

मार्क्स का मानना है कि उपर्युक्त उपायों में पूँजीपति का अंतिम उपाय श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करने का प्रयास करता है । क्योंकि मजदूरी दर में कमी करना अथवा श्रम के कार्य के ' घन्टों में वृद्धि करना जैसे- उपायं, प्रयोग करने कीं नैतिक सीमाएं होती है ।

मार्क्स ने अतिरिक्त मूत्य को लाभ अर्थात् कुल आय व मजदूरी भुगतान का अन्तर बताकर परिभाषित किया है । इनके अनुसार लाभ की दर पूँजी की मात्रा तथा अतिरिक्त मूल का अनुपात होता है । मार्क्स द्वारा पूँजी के दो प्रकार बताए गए हैं-

प्रथम- वह पूँजी जिससे मजदूरी का भुगतान किया जाता है उसे पीरवर्तनशील पूँजी कहा जाता है द्वितीय- वह पूँजी जिससे कल कारखाना स्थापित किया जाता है, उसे स्थिर पूँजी कहा जाता है। अत: लाभ की दर ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है ।

$$R = \frac{O - L}{W + F}$$

R = लाभ की दर

O = उत्पादन का मूल्य

L = कुल मजदूरी

W = परिवर्तनशील पूँजी

F = स्थिर पूँजी

कार्ल मार्क्स की उक्त अभिव्यक्ति ही मार्क्सवादी आर्थिक विकास सिद्धान्त का आधार है।

बोध प्रश्न -01

1. कार्ल मार्क्स के दर्शन कि इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या क्या है ?
2. मार्क्स के दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी क्या है ?
3. आवश्यक मूल्य (श्रम) तथा अतिरिक्त मूल्य (श्रम) में अन्तर बताइए ।
4. मार्क्स ने पूँजी के कितने प्रकार बताए हैं ?
5. लाभ की दर का सूत्र लिखिए ।

14.3 मार्क्सवादी आर्थिक विकास का सिद्धान्त (Marxian Theory of Growth)

मार्क्स के आर्थिक विकास सिद्धान्त की प्रमुख बातें निम्न प्रकार हैं-

14.3.1 सरल पुनरूत्पादन योजना

कार्ल मार्क्स के आर्थिक विकास के सिद्धान्त की प्रथम स्थिति स्थिर अवस्था का विश्लेषण प्रारम्भ करते समय पुन: मार्क्स के विचारों को समझना आवश्यक है ।

मार्क्स ने अपने सिद्धान्त का विवेचन एक सरल पुनरूत्पादन योजना से प्रारम्भ किया है । इस स्थिति में अर्थव्यवस्था में संचयन (Accumulation) का अभाव होता है । सरल शब्दों में पुनरूत्पादन से तात्पर्य है कि पूँजी का विनियोग अतिरिक्त मूल्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है । पूँजी को उसकी उसी अवस्था में पुन:नियोजित अवश्य किया जाना चाहिए । जिससे निर्धारित समय की अवधि के पश्चात अतिरिक्त मूल्य में वृद्धि को प्राप्त किया जा सके

। इस प्रकार यदि पूँजीपति इस पूँजी का पूर्ण उपयोग कर सकता है; तो सरल पुनरूत्पादन प्राप्त होता है ।

मार्क्स ने समस्त उद्योग क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करने का प्रयास किया था ।

(i) उत्पत्ति के साधनों का उत्पादन करने वाले उद्योग ।

(ii) उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करने बाले उद्योग ।

यहां हम मार्क्स के विचारों को सरलरूप में व्यक्त करने का प्रयास कर रहे हैं-

मान लीजिए 'C' स्थिर पूँजी (Fixed Capital) को प्रदर्शित करता है । 'W' परिवर्तनशील पूँजी (Variable Capital) को प्रदर्शित करता है तथा 'S' अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) को बताता है तो इस प्रकार की परिस्थिति में प्रथम वर्ग (उत्पादन वस्तु) के उद्योगों $C_1 + W_1 + S_1 =$ कुल मूल्य [Total Value (V_1)] एवं द्वितीय वर्ग (उपभोग वस्तु) के उद्योगों $C_2 + W_2 + S_2 =$ कुल मूल्य [Value Value (W_2)] सरल पुनरूत्पादन की अवस्था में समस्त उत्पादित पूँजी का उपयोग हो जाना चाहिए;

अत: $C_1 + C_2 - V = C_1 + W_1 + S_1$

अथवा $C_1 = W_1 + S_1$

अर्थात् उपभोग वस्तु उत्पादन उद्योग द्वारा उपभोग की गई पूँजी उत्पादक वस्तु उद्योग में श्रमिकों तथा पूँजीपतियों के उपभोग में समान होनी चाहिए, यदि यह अवस्था अर्थव्यवस्था में विद्यमान हो तो अर्थव्यवस्था में निम्न दशाएं होगी-

(i) अर्थथवस्था में कोई शुद्ध विनियोग नहीं होगा ।

(ii) श्रम को मात्र जीवन निर्वाह के लिए पारिश्रमिक प्राप्त होगा ।

(iii) पूँजीपति वर्ग अपने सम्पूर्ण अतिरिक्त मूल्य का उपभोग करेगा ।

(iv) अर्थव्यवस्था की उत्पादन की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होगा ।

(v) अर्थव्यवस्था में उद्योगक क्षेत्र में उत्पादन वस्तु उद्योग तथा उपभोग वस्तु उद्योग के मध्य का सम्बन्ध पूर्ववत रहेगा ।

14.3.2 विकास हेतु संचयन आवश्यक

मार्क्स का आर्थिक विकास के सन्दर्भ में यह मानना था कि उपभोग की तुलना में संचयन आवश्यक है । अत: इन्होंने सरल पुनरूत्पादन का विचार प्रस्तुत किया था । मार्क्स संचयन (Accumulation) को विकास का कारण बताते थे । सरल पुनरूत्पादन प्रक्रिया में किसी भी प्रकार का संचयन या शुद्ध विनियोग नहीं होता है, इसलिए अर्थव्यवस्था स्थिर अवस्था में रहती है । अर्थव्यवस्था में जब पूँजीपति वर्ग द्वारा अतिरिक्त मूल्य में से संचय किया जाता है, उसी क्षण अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास की प्रक्रिया गतिमान हो जाती है । पूँजीपति द्वारा संचय इसलिए किया जाता है जिससे समाज में उसकी

स्थिति एक पूँजीपति के रूप में बनी रहे । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूँजीपतियों के मध्य उत्पन्न होने वाली प्रतिस्पर्द्धा पूँजीपति को संचय करने के लिए बाध्य कर देती है । इस विषय में स्वयं मार्क्स लिखते हैं 'एक कंजूस की भांति पूँजीपति भी धन को धन के लिए चाहता

है, किन्तु कंजूस का स्वभाव एक सनक है तब पूँजीपति का स्वभाव उस सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम है जिसका कि वह एक अंग है ।"

"The Capital Shares with the miser the passion for wealth. But that which in the miser is a mere idio syncroacy is, in the Capitalist, The effect of the Social mechanism of which he is but one of the wheels"

"Accumulate, accumulate; that is Moses are prophets.....Karl Marx.

इस विषय में मार्क्स यह भी मानते थे कि औद्योगिक प्रगति के कारण पूँजी की ओर अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है । पूँजीपति की एक विवशता यह होती है उसे समाज में अपना सम्मान व शक्ति की स्थिति यथावत् रखने के लिए अपने अवसाय के क्षेत्र में पुनर्विनियोग व संचयन में सतत वृद्धि करता रहे अन्यथा वह स्वत: पूँजीपति वर्ग से समाज में निष्कासित हो जाएगा । अत: मार्क्स का कथन उचित है 'संचय करो, संचय करो; यही ब्रह्म आदेश है'' अत: आर्थिक विकास हेतु पूँजी संचयन आवश्यक है ।

14.3.3 विकास संचयन का परिणाम

मार्क्स अपने विचारों में यह स्पष्ट करते हैं कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में जब संचयन प्रारम्भ होता है जिससे श्रम की मांग में वृद्धि होती है तथा परिणामस्वरूप पूँजीपति वर्ग में श्रम की अधिक मात्रा के कारण -कार्यक्षेत्र में भय व्याप्त होता है.। अत: पूँजीपति की मजदूरी को जीवन निर्वाह स्तर तक करने का प्रयास करता है । इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए पूँजीपति वर्ग द्वारा अतिरिक्त श्रम शक्ति का सृजन किया जाता है । इस कार्य को मार्क्स ने श्रम की सुरक्षित फौज (Reserve Army of Labour) बताया है ।

मार्क्स पुन: स्पष्ट करते हैं कि संचयन से उत्पन्न अधिक श्रम की मांग को प्रभाव्हीन करने के लिए यंत्रीकरण का तथा उद्योग में नवीन आविष्कारों का प्रयोन किया जाता है । यंत्रीकरण व आविष्कारों के कारण जो वर्तमान में श्रम कार्य कर रहा था, उसका परिणाम' यह होता है कि श्रम की नवीन मांग में ह्रास होता है । यंत्रीकरण तथा नवीन आविष्कारों के अतिरिक्त जनसंख्या वृद्धि एवं औद्योगिक क्षेत्र के छोटे व्यवसायों का बड़े व्यवसायों में विलीन होना भी कुछ कारण हैं जो श्रम की सुरसित फौज में और भी अतिरिक्त वृद्धि करते हैं । इन सभी परिस्थितियों का परिणाम यह होता है कि श्रम बाजार में सामान्यत: बेरोजगारी की स्थिति बनी रहती है । उत्पादन के साधन श्रम के मध्य रोजगार के अक्सरप्राप्त करने के लिए परस्परप्रतिस्फर्द्धा उत्पन्न हो जाती है । अत्: पूँजीपति श्रमिक को मात्र जीवन निर्वाह स्तर तक की मजदूरी प्रदान करने में सफल हो जाता है । इस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है । श्रम को कुल उत्पादकता का मात्र जीवन निर्वाह के स्तर के तुल्य हो जाती है तथा शेष का पूँजीपति वर्ग द्वारा शोषण किया जाता है तथा आर्थिक विकास सम्भव होता है ।

14.3.4 एकाधिकारी पूँजीवाद

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में यंत्रीकरण एवं वृहत पैमाने के स्तर पर उत्पादन होने के कारण औद्योगिक क्षेत्र में अनुचित प्रतियोगिता के उत्पन्न होने के कारण अल्प पूँजी वाले पूँजीपतियों की संख्या कम होने लगती है । परिणामस्वरूप पूँजीवादी अर्थअवस्था (समाज) में उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व मात्र अल्पसंख्यक पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाता है । इस प्रक्रिया में पुन: कुछ ही पूँजीपतियों के हाथों में पूँजी के केन्द्रीकरण के कारण वृहत औद्योगिक संगठनों की स्थापना, नियमों व एकाधिकारी पूँजीवाद का उदय होना बताते हैं तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक पूँजीवाद का अंत हो जाता है ।

मार्क्स के विचारों के अनुसार यह आर्थिक विकास की प्रक्रिया का संवेदनशील समय होता है; क्योंकि उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों एवं उत्पादन शक्तियों के मध्य असंगति उत्पन्न हो जाती है । जबकि उत्पादन शक्तियों तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया तो यह आवश्यक बनाती है कि अधिक मजदूरी श्रम का अस्तित्व हो, किन्तु इस कार्य के लिए क्षेत्र संकुचित हो जाता है, अत: आर्थिक विकास की प्रक्रिया अवरूद्ध होने लगती है ।

14.3.5 समाजवाद का जन्म

मार्क्स ने इस तथ्य की विवेचना भी प्रस्तुत की, कि समाजवाद का जन्म किस प्रकार हुआ था । उनके अनुसार एकाधिकारी पूँजीवाद की अवस्था से ही श्रमिक शनै-शनै अपनों के प्रति सजग हो जाता है तथा वृहद पूँजीपतियों के विरूद्ध संघर्ष का भाव उत्पन्न करता है, जिसका अंत श्रम संघों की स्थापना होना होता है । इस अवस्था से समाज में दो प्रमुख वर्ग- पूँजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग के मध्य वर्ग - संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है । जब यह संघर्ष विकराल रूप धारण करता है तो समाज में क्रांति का युग प्रारम्भ होता है । इस क्रांति का अंत श्रमिक वर्ग की सफलता होता है । इस समय परिस्थिति में एक नवीन सामाजिक प्रणाली का अविर्भाव होता है जिसमें उत्पत्ति के साधनों पर समाज का स्वामित्व होता है । अर्थव्यवस्था में जो भी उत्पादन होता है उस पर वर्ग विहीन समाज का अधिकार होता है । इस प्रकार पुन: समाज में उत्पादन सम्बन्धी एवं उत्पादन शक्तियों के मध्य सांमजस्य स्थापित हो जाता है क्योंकि समाज का प्रत्येक सदस्य अपना परिश्रम करता है तथा अपना पारिश्रमिक प्राप्त करता है यह अवस्था समाजवाद की जन्म की अवस्था है ।

14.4 विकास कीं अवस्थाएं (Stages of Growth)

कार्ल मार्क्स द्वारा आर्थिक विकास की अवस्थाओं की जो परिकल्पना की गई है उसका प्रारूप संक्षेप में निम्नलिखित है-

मौलिक अवस्था – प्रारम्भिक अथवा आदिम साम्यवाद (Primitive Communism)

द्वितीय अवस्था – दास समाज (Slave Society)

तृतीय अवस्था – सामन्तवादी समाज (Feudal Society)

चतुर्थ अवस्था – पूँजीवाद (Capitalism)

पंचम अवस्था – साम्राज्यवाद (Imperialism)

अंतिम अवस्था – समाजवाद व साम्यवाद (Socialism and Communism)

बोध प्रश्न -02

1. सरल पुरुत्पादन योजना की विशेषता लिखिए।
2. "संचय करो, संचय करो; यही बाह्य आदेश है" किसने कहा है।
3. एकाधिकार पूँजीवादी की विशेषता लिखिए।
4. कार्ल मार्क्स द्वारा परिकल्पित आर्थिक विकास की अवस्थाएं कोण-सी है?

14.5 मार्क्सवादी विकास मॉडल (Marxian Model of Growth)

कार्ल मार्क्स के विकास मॉडल को समीकरण रूप में हम निम्नलिखित प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं-

(i) उत्पादन फलन (Production Function) उत्पादन फलन के विषय में मार्क्सवादी विचार वही है जो परम्परागत अर्थशास्त्रियों के थे, अर्थात्

O = F (L, K, Q ,T)

O = उत्पादन

F = फलन

L = श्रम की पूर्ति

K = ज्ञान साधनों की पूर्ति

Q = पूँजी की पूर्ति

T = तकनीकी स्तर

(ii) तकनीकी प्रगति विनियोग पर निर्भर करती है, अर्थात्

T = T (I)

(iii) विनियोग लाभ की दर पर निर्भर करता है, अर्थात्

$I = I (R^1)$

I = विनियोग (Investment)

R^1 = पूँजी पर प्रतिफल दर (Rate of return)

यहां महत्वपूर्ण है कि परम्परागत अर्थशास्त्रियों ने विनियोग को लाभ के समतुल्य अर्थात् पूँजीपति की आय के समतुल्य माना है जब कार्ल मार्क्स ने विनियोग पूँजी के प्रतिफल की दर पर निर्भर माना है ।

(iv) लाभ की दर, लाभ तथा चल एवं अचल पूँजी के योग मध्य का अनुपात होती है ।

$$R^1 = \frac{O-W}{W+Q^1} = \frac{R}{W+Q^1}$$

R^1 = लाभ की दर

O = उत्पादन की मात्रा

W = मजदूरी के रूप में प्रदान की गई चल पूँजी

R = (O-W) लाभ की मात्रा

Q^1 = उत्पादन में प्रयुक्त चलपूँजी (पूँजीगत वस्तुए)

मार्क्स के अनुसार प्रति श्रमिक पूँजी में वृद्धि होने पर लाभ की दर गिरती है । इस प्रक्रिया के द्वारा लाभ के गिरने की प्रवृत्ति को बताते हैं ।

(v) मजदूरी विनियोग के स्तर पर निर्भर करती है, अर्थात्

W = W (I)

(vi) रोजगार विनियोग के स्तर पर निर्भर करती है, अर्थात्

$$L_1 = L_1\left(\frac{I}{Q}\right)$$

L_1 = रोजगार की मात्रा

(vii) उपभोग का निर्धारण मजदूरी कोष द्वारा होता है, अर्थात्

C = C (W)

C = उपभोग

(viii) लाभ तकनीकी की प्रगति के स्तर तथा उपभोग व्यय के स्तर पर निर्भर होता है, अर्थात्

R = R (T,C)

(ix) उत्पादन की मात्रा मजदूरी तथा लाभ की मात्रा के योग के समतुल्य होता है, अर्थात्

O= R+W

(x) मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्था पूँजीगत वस्तु क्षेत्र व उपभोग वस्तु क्षेत्र में विभक्त है । अर्थात् कुल उत्पादन उपभोग व विनियोग के बराबर होता है, अर्थात्

O = C+I

(xi) मार्क्स का मानना है कि चल पूँजी की लागत का पूँजी की कुल मात्रा में एक निश्चित अनुपात होता है जिसे (U) द्वारा प्रदर्शित किया गया है; अर्थात्

'Q' = U,R

14.6 मार्क्स के विकास मॉडल की आलोचना (Criticism of Marxian Model of Growth)

यद्यपि मार्क्स के पूँजीवादी आर्थिक विकास की उपयुक्त वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है फिर भी उनके सिद्धान्त की भिन्न-भिन्न आलोचना प्रस्तुत की हैं-

(i) मार्क्स का विचार है कि पूँजीवादी व्यवस्था में स्वयं विनाश की प्रक्रिया निहित है अत: समाजवाद का उदय अनिवार्य है, गलत सिद्ध हुआ है ।

(ii) मार्क्स तकनीकी बेरोजगारी के प्रभावों को वृहद मानते थे, किन्तु तकनीकी वृद्धि रोजगार में वृद्धि करती है ।

(iii) पूँजी के केन्द्रीकरण के विषय में मार्क्स का अनुमान गलत रहा है । समाज में इस प्रकार तीव्रता व उनके विस्तार का अति-अनुमान लगाया गया है ।

(iv) मार्क्स का अल्प-उपभोग सिद्धान्त अपर्याप्त व अस्पष्ट है, वे यह नहीं स्पष्ट कर सके हैं कि लाभ की दर तथा विनियोग उपभोग पर निर्भर करते हैं ।

14.7 विकासशील राष्ट्र तथा मार्क्स का सिद्धान्त (Development Countries and Marxian Theory)

विकासशील राष्ट्रों में क्या मार्क्स का विकास सिद्धान्त कार्यशील है? इस तर्क का उत्तर स्वयं स्पष्ट है । मार्क्सवादी विश्लेषण पूँजीवादी व विकसित पूँजीवादी समाज के समाजवादी अर्थव्यवस्था में परणित होने से सम्बन्धित है । मार्क्स की विचारधारा में किसी भी स्थान पर विकासशील राष्ट्र की समस्या सम्मिलित नहीं है । मार्क्स का मानना है कि उपनिवेशों की गरीबी तथा उनके आर्थिक पिछड़ेपन का कारण उपनिवेशों का शोषण तथा उन पर विदेशी शासन है मार्क्स ने कभी भी इन राष्ट्रों की विकास समस्या का विश्लेषण नहीं किया था ।

वस्तुत: मार्क्सवादी विकास मॉडल विकासशील राष्ट्रों में क्रियाशील नहीं है क्योंकि यह मॉडल जनसंख्या के अत्यधिक दबाव की उपेक्षा करते हैं जो विकासशील राष्ट्र की विशेषता होती है । मार्क्स का मॉडल इसलिए भी क्रियाशील नहीं है क्योंकि अधिकांश विकासशील राष्ट्र नियंत्रित पूँजीवादी अथवा नियोजन के साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था की दशाओं में अपना विकास कर रहे हैं । किन्तु फिर भी मार्क्सवादी विकास मॉडल के कुछ परिवर्तननीय तब (Variables) विकासशील राष्ट्रों में अधिकांशत: पाए जाते हैं जैसे कि जीवन व्यापन स्तर के तुल्य मजदूरी प्राप्त होना, पूँजी का केन्द्रीकरण, श्रम की बेरोजगारी इत्यादि । कुछ सीमा तक मार्क्सवादी मॉडल का नियोजित विकास का मत विकासशील राष्ट्रों में प्रयोग किया जाता है ।

बोध प्रश्न -03

1. मार्क्स के विकास मॉडल की समीकरण लिखिए ।
2. मार्क्स के मॉडल की दो आलोचनाएं बताइए ।
3. मार्क्स के विकास सिद्धान्त क्या विकासशील राष्ट्र में प्रयोग किया जा सकता है?

14.8 सारांश (Summary)

शुम्पीटर का कथन सही प्रतीत होता है कि मार्क्स की सैद्धान्तिक दुर्वन्तियों, दोषपूर्ण यहां तक कि अवैज्ञानिक विश्लेषण के पश्चात् भी वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने उस तथ्य को समझा जो वर्तमान तक भी भविष्य का आर्थिक सिद्धान्त बना हुआ है ।

तकनीकी ज्ञान, प्रगति नवप्रवर्तन आर्थिक विकास के मूल आधार हैं जिन्हें मार्क्स ने भी अपने अध्ययन में सम्मिलित किया था । इसी प्रकार पूँजी संचयन को आर्थिक वृद्धि का आधार

माना गया है । वर्तमान विश्व अर्थव्यवस्था में भी मार्क्स के समान लाभ पूँजीवादी विकास का प्रत्यक्ष प्रभाव है ।

मार्क्स ने आर्थिक विकास की दर समान न मानते हुए व्यापार चक्रीय प्रभाव से प्रभावित मानी है । आपका सोचना सही था कि अल्प उपभोग मन्दीकालीन अवस्था उत्पन्न करता है । सतत् आर्थिक विकास हेतु विनियोग तथा उपभोग के मध्य संतुलन अनिवार्य है । मार्क्सवाद में औद्योगिक बेरोजगारी प्रमुख घटक है ।

14.9 शब्दावली (Glossary)

प्रतिक्रिया	Anti -Thesis
संचयन	Accumulation
पूँजीवाद	Capitalism
चेतना	Consciousness
स्थिर पूँजी	Constant Capital
सामान्तवादी समाज	Feudal Society
हस्त चलित कल (मशीन)	Hand Mill
आध्यात्मिक	Metaphysics
वाष्प चलित कल (मशीन)	Steam Mill
समन्वय	Synthesis
दास समाज	Slave Society
समाजवाद	Socialism
क्रिया	Thesis
श्रम की सुरक्षित फौज	Reserve Army of Labour
परिवर्तनशील पूँजी	Variable Capital

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

Boldwin, R.E.; “Economic Development and Growth”

Ghose, S.; “Economic Development and Marx, in Theories of Economic Growth” Paper read at the Indian Economic Conference, 1967.

Hiqqins, B.; “Economic Development 1967”

Jhinqan, M.L.; “The Economic of Development and Planning - 2007”.

Marx, K.; Das “Capital, 1906

Marx, K.; “Introduction to a Critique of Heqel’s Philosophy of Rights”.1843

सिंह, एस.पी.; "आर्थिक विकास एवं नियोजन"

14.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. कार्ल मार्क्स के आर्थिक विकास सिद्धान्त का परिक्षण कीजिए ।

2. साम्यवाद या वर्गविहीन समाज का विचार मात्र एक स्वप्न है, वास्तविकता नहीं । तर्कपूर्ण अन्तर कीजिए ।
3. मार्क्स द्वारा प्रदत्त आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आख्या कीजिए ।
4. पूँजीवादी विकास के मार्क्सवादी सिद्धान्त के मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिए ।
5. कार्ल मार्क्स के आर्थिक विकास सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए तथा विकासशील राष्ट्रों में इसकी व्यवहार्यता की विवेचना कीजिए ।

इकाई -15

शुम्पीटर का आर्थिक विकास सिद्धान्त

(Schumpeterian Model of Economic Growth)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास
15.3 आर्थिक जीवन का चक्रीय प्रवाह
15.4 आर्थिक विकास, असतत् प्रक्रिया
15.5 उद्यमी की भूमिका
15.6 साख का महत्व
15.7 पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया
15.8 पूँजीवाद का पतन
15.9 शुम्पीटर का आर्थिक विकास मॉडल
15.10 आर्थिक विकास का शुम्पीटर सिद्धान्त : एक अवलोकन
15.11 शुम्पीटर तथा मार्क्स के विचारों में अन्तर
15.12 शुम्पीटर का विश्लेषण तथा विकासशील राष्ट्र
15.13 सारांश
15.14 शब्दावली
15.15 सन्दर्भ ग्रन्थ
15.18 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई में हम आर्थिक विकास के सिद्धान्तों के अध्ययन की श्रृंखला में जोसेफ एलोई शुम्पीटर (Joseph Alois Schumpeter) के आर्थिक विकास सम्बन्धी सिद्धान्त का विश्लेषण करेगें । शुम्पीटर के आर्थिक विकास का विश्लेषण परम्परागत आर्थिक विकास तथा नव-परम्परागत आर्थिक विकास का विरोधी है । शुम्पीटर से पूर्व के अर्थशास्त्रियों द्वारा मानव समाज के विकास के विषय में निराशावादी विचारों को प्रस्तुत किया गया था, किन्तु शुम्पीटर का आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचार आशावादी थे । परम्परागत अर्थशास्त्रियों के द्वारा दीर्घकालीन अवरोध (Secular Stagnation) सम्बन्धी बिचार व्यक्त किए गए थे । कार्ल मार्क्स पूँजीवाद के अनिवार्य पतन में विकास रखते थे । इसके विपरीत शुम्पीटर की एक प्रमुख देन विकास के अर्थशास्त्र में यह है कि उन्होंने आर्थिक विकास (Economic Development)

तथा आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) के मध्य अन्तर स्पष्ट किया था । प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से हमें यह स्पष्ट होगा कि -

- आर्थिक विकास एवं प्रावैगिक (Dynamic) तथा असतत् प्रक्रिया (Discontinuous Process) है।
- आर्थिक विकास में नव-प्रवर्तन तथा साहसी की भूमिका प्रमुख होती है ।
- आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अनिवार्य बचतें (Forced Saving) पूँजी संचय का एक ही प्रमुख स्रोत होती है ।
- आर्थिक विकास की प्रक्रिया चक्रीय प्रवृत्ति (Cyclical Nature) की होती है ।
- शुम्पीटर का आर्थिक विकास का सिद्धान्त विकासशील अर्थव्यवस्था में किस प्रकार कार्य कर सकता है ।

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

जे.ए. शुम्पीटर (J.A. Schumpeter) द्वारा आर्थिक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन जर्मन भाषा में प्रकाशित उनकी पुस्तक "The Theory of Economics (1911)" में किया गया था । शुम्पीटर के आर्थिक विकास की धारणा में एक इस प्रकार की अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया गया है जो कि स्थिर अर्थव्यवस्था (Static Economy) है । इस स्थिर अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) की कल्पना की गई है । इस अर्थव्यवस्था में कुछ तथ्य अपरिवर्तनशील मान लिए गए हैं जैसे कि लाभ, ब्याज, बचत, विनियोग इत्यादि तथा बेरोजगारी भी अर्थव्यवस्था में आज नहीं होती है । इसका यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि इस प्रकार की अर्थव्यवस्था सदैव सन्तुलन (Equilibrium) की स्थिति में पाई जाएगी, क्रेता-विक्रेता की उपलब्धता सदैव विद्यमान रहेगी । शुम्पीटर ने इस प्रकार की स्थिति का वर्णन चक्रीय प्रवाह द्वारा प्रदर्शित करने का प्रयास किया था । यदि आर्थिक जीवन में कभी कोई अक्समात् परिवर्तन दृष्टिगत होता है तो वह स्वत: ही समाप्त हो जाएगें, क्योंकि इस प्रकार के परिवर्तन अर्थथवस्था के आन्तरिक होंगे तथा उन पर कोई बाध्य प्रभाव नहीं होगा। शुम्पीटर ने साहसी द्वारा अपनाए गए नव प्रवर्तनों (innovations) को आर्थिक विकास का कारक बताया है । यहां अपने विचारों में शुम्पीटर ने आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में भी अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया

15.2 आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक विकास (Economic Growth and Economic Development)

शुम्पीटर के आर्थिक विकास के सिद्धान्त की एक प्रमुख विशेषता यह है कि शुम्पीटर द्वारा आर्थिक वृद्धि (Economic growth) तथा आर्थिक विकास (Economic Development) में अन्तर करने का प्रयास किया गया है । शुम्पीटर का मत था कि आर्थिक विकास (Economic Development) आर्थिक जीवन में घटित होने वाले मात्र वह परिवर्तन है

जिन्हें अर्थव्यवस्था में अलग से सम्मिलित नहीं किया जा सकता, अपितु वे स्वयंभू प्रेरणाओं से अर्थव्यवस्था में आन्तरिक रूप से प्रकट होते हैं।

शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक वृद्धि (Economic growth) का तात्पर्य यह है कि अर्थिक जीवन प्रत्येक वर्ष उन्हीं धाराओं से इस प्रकार प्रवाहित होता है जिस प्रकार मनुष्य में रक्त का संचालन होते है । इसका अर्थ यह है कि आर्थिक वृद्धि (Economic growth) के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में किसी भी प्रकार का कोई नवीन सृजन नहीं होता है, जो भी उत्पादन होता है वह एक परम्परागत व नियमित पद्धति के अनुसार होता रहता है तथा कोई नवीन सृजनता उत्पादन में नहीं होती है ।

शुम्पीटर ने आर्थिक विकास (Economic growth) के विषय मैं विचार व्यक्त किए हैं कि आर्थिक विकास का अर्थ मात्र समजातीय उत्पादन की भौतिक उत्पत्ति की वृद्धि से नहीं है, अपितु पूर्णरूप से नवीन उत्पादों (Product) का उत्पादन किया जाए तथा प्रचलित उत्पदों (Products) की गुणवत्ता में निरन्तर सुधार किया जाए । अत: आर्थिक विकास (Economic growth) के अन्तर्गत सृजनात्मक शक्तियों का जन्म होता है तथा नवीन उत्पादन होते हैं ।

बोध प्रश्न - 1

1. आर्थिक वृद्धि (Economic growth) से क्या तात्पर्य है?
2. आर्थिक विकास (Economic Development) शब्द का क्या आशय है?

15.3 आर्थिक जीवन का चक्रीय प्रवाह (Circular Flow of Economic Life)

शुम्पीटर के आर्थिक विकास के सिद्धान्त के विश्लेषण का प्रारम्भिक बिन्दु चक्रीय प्रवाह (Circular Flow) को समझना है । शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक जीवन का चक्रीय प्रवाह एक ऐसी दशा उत्पन्न करता है जिसमें आर्थिक क्रिया अपने आपको एक निर्धारित गति से उत्पन्न करती रहती है, तात्पर्य आर्थिक विकास की प्रक्रिया स्वयं नए विकास की स्थिति उत्पन्न करती है । चक्रीय प्रवाह एक इस प्रकार की निरन्तर क्रिया है जो बिना समाप्त हुए सतत् गति से चलती रहती है । यह प्रवाह स्थिर साम्य की दशा में उत्पन्न हो सकता है जो सामान्यत: एक अर्थव्यवस्था की विशेषता होती है । उसके प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हो सकते हैं -

- सभी आर्थिक क्रियाएं अवश्य ही आवृतिक होती है जो पूर्व निर्धारित मार्ग पर गमन करती हैं ।
- प्रत्येक उत्पादन कर्ता फर्म के पूर्ण प्रतियोगिता के साम्य की स्थिति में होने के कारण उत्पत्ति के साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार प्रतिफल प्राप्त होता है ।
- चूँकि अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रीतयोगितात्मक साम्य की दशा में होती है उत्पादन की कीमत व उसकी ब्याज औसत लागत समान होने के कारण प्राप्त होने वाला लाभ शून्य होता है, साथ ही साथ वज की दर की प्रवृत्ति शून्य की तरफ जाने की होती है

परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनों के मध्य किसी भी प्रकार की ऐच्छिक बेरोजगारी अर्थव्यवस्था में नहीं पाई जाती है ।

15.4 आर्थिक विकास : असतत् प्रक्रिया (Economic Development: Discontinuous Process)

आर्थिक विकास के सिद्धान्त की विवेचना करते हुए शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को आर्थिक जीवन के चक्रीय प्रवाह (Circular flow of Economic Life) का असतत् मानते हैं । शुम्पीटर का मत है कि "यह प्रवाह में होने वाला एक सत: तथा असतत् परिवर्तन है, साम्य का एक ऐसा विचलन है जो पूर्व स्थापित साम्य की अवस्था को सदा के लिए बदल देता है ।"

उपर्युक्त तथ्य से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि चक्रीय प्रवाह में बाधा या विचलन किस तरह से उत्पन्न होता है? इस संदर्भ में शुम्पीटर का मत है कि चक्रीय प्रवाह में यह बाधा या विचलन नव-प्रवर्तनों (Innovation) के द्वारा आता है । इनके अनुसार प्रगति आवश्यक रूप से समृद्धि तथा अवसाद (Depression) के साथ सम्बन्धित होती है । शुम्पीटर के आर्थिक विकास को तकनीकी परिवर्तनों की असतत् प्रक्रिया के रुप में विवेचना करते है । अत: यहां शुम्पीटर कालमार्क्स के विचारों से प्रभावित लगते हैं, क्योंकि कालमार्क्स भी आर्थिक विकास को प्रावैगिक (Dynamics) तथा असतत् प्रक्रिया मानते थे ।

शुम्पीटर ने नव-प्रवर्तनों का अर्थ, मात्र किसी आविष्कार से न लेकर, अपितु उत्पादन की तकनीकी व उत्पत्ति के साधनों (Factors of Production) के नवीन तथा विभिन्न संयोग से लिया है । एक स्थान पर स्वयं शुम्पीटर लिखते हैं कि, "नवप्रवर्तनों से मेरा अभिप्राय उत्पत्ति के साधनों के अनुपातों में होने वाले उन परिवर्तनों से है जो मन्द गीत से होकर तीव्र गति से घटित होते हैं ।"

शुम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन भिन्न रुप में अर्थव्यवस्था में पाया जा सकता है -

- नवीन वस्तु का उत्पादन
- उत्पादित वस्तु के गुण में परिवर्तन,
- उत्पादन एवं संयत्र के परिमाण में परिवर्तन
- नवीन बाजार में प्रवेश,
- नवीन स्रोत को कच्चे माल के लिए ज्ञात करना

बोध प्रश्न -2

1. चक्रीय प्रवाह को समझाइए।
2. असतत् प्रक्रिया से तात्पर्य है?
3. नव-प्रवर्तन के प्रकार लिखिए।

1. “It is spontaneous and discontinuous charge in the channels of the flow, disturbance of the equilibrium which forever alters and displaces the state previously existing.” Schumpeter.

15.5 उद्यमी की भूमिका (Role of Entrepreneur)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में एक उद्यमी (Entrepreneur) की भूमिका क्या होती है? इस विषय में शुम्पीटर का मत है कि आर्थिक विकास प्रक्रिया स्वत: नहीं होती है, अपितु आर्थिक विकास के निर्धारित स्तर को प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयत्नों व जोखिमों को सम्मलित करना होता है । आर्थिक विकास हेतु उत्पादन क्षेत्र में नवप्रवर्तन के लिए उद्यमी वर्ग (Entrepreneur class) का अर्थव्यवस्था में होना अनिवार्यता है क्योंकि प्रत्येक परिवर्तन उत्पन्न के साधनों के सहयोगों में परिवर्तन का परिणाम होता है तथा इस प्रकार के परिवर्तन को करने का साहस मात्र उद्यमी या साहसी (Entrepreneur) में होता हे ।

यहां उद्यमी के विषय में यह सुस्पष्ट है कि उद्यमी न तो वह व्यक्ति है जो नवप्रवर्तन कल्पित करता है, न ही वह व्यक्ति होता है जो इस कार्य के लिए व्यक्ति प्रबन्ध करता है, अपितु उद्यमी एक ऐसा व्यक्ति होता है जो नव प्रवर्तन को कार्य रूप में परिणित करता है । इसीलिए शुम्पीटर विकास सिद्धान्त में उद्यमी को महत्व देते हैं । आर्थिक विकास में प्रारम्भिक चरण में यह उद्यमी उत्पादन प्रक्रिया का नेतृत्व अपने हाथों में लेता है । उत्पादन में नवीनताओं का सृजन करके विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करता है । अनुकूलतम वातावरण सम्भावनाओं की खोज करके उन्हें उत्पादन प्रणाली में सम्मिलित करने का प्रयास करता है । अत: उद्यमी की नवप्रवर्तन की क्षमता ही अर्थव्यवस्था को प्रावैगिक बनाती है । यहां शुम्पीटर उद्यमी की भूमिका को महत्वपूर्ण बनाने के लिए 'उपभोक्ता की सार्वभौमिकता' (Consumer's Sovereignty) को महत्व नहीं देते हैं, क्योंकि शुम्पीटर मान लेते हैं कि उपभोक्ता की रूचि में परिवर्तन उद्यमी द्वारा ही उत्पन्न की जाती है ।

संक्षेप में स्थिर अर्थव्यवस्था (Static Economy) में उद्यमी अर्थव्यवस्था के बहाब के साथ गति करता है तथा गतिशील अर्थव्यवस्था (Dynamic Economy) में साहसी विपरीत दिशा में गति करता है । आर्थिक विकास के मंच का उद्यमी नेता होता है तथा अन्य समाज के हिस्से उसके अनुयायी होते हैं । उद्यमी विवेकशील व्यक्तित्व का धनी होता है जिसमें संघर्ष करने की प्रवृत्ति होती है । साहसी मात्र लाभ के लिए साहस नहीं करता है अपितु सफलता प्राप्त करना भी उसका उद्देश्य होता है ।

15.6 साख का महत्व (Importance of Credit)

आर्थिक विकास के परम्परागत सिद्धान्तों में वर्तमान आय में से बचत करने पर विशेष महत्व दिया गया है, किन्तु शुम्पीटर के विकास सिद्धान्त में बैंकों द्वारा निर्मित साख (Credit) को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । शुम्पीटर इस तथ्य को मानते थे कि उद्यमी अपने उत्पादन योजना के साधनों का प्रबन्ध साख-निर्माण करने वाली बैंकिंग प्रणाली से करता है । उत्पादन परियोजना के लिए बिल का प्रबन्धक वर्तमान बचतों से प्राप्त न होकर बैंक साख द्वारा प्राप्त होता है । उद्यमी बैंको से प्राप्त साख के द्वारा नव-प्रवर्तनों का प्रयोग अपनी परियोजना में करता है । बैंक साख उद्यमी के लिए इस प्रकार की उत्पत्ति के साधनों को प्राप्त करना सम्भव बनाती है जिन पर वर्तमान में उद्यमी को सामान्यत: अधिकार प्राप्त नहीं है । अत:

अर्थव्यवस्था में इस प्रकार का वित्त प्रबन्ध स्फीतिक (Inflation) प्रवृत्ति का होता है । नव-प्रवर्तनों के सफलतापूर्वक संबंधित उद्योग पूर्ण हो जाने पर नवीन मौद्रिक आय उत्पन्न होती है । इस आय का एक अंश उद्यमी पुन: बैंक ऋण की वापसी के रूप में करता है । इस प्रकार साख निर्माण विकास की प्रणाली का प्रमुख अंग बन जाता है ।

आर्थिक विकास के सिद्धान्त में शुम्पीटर ने अनिवार्य बचतों (Forced Savings) को पूँजी संचय का स्रोत माना है । साख वितरण द्वारा विनियोग से पूँजीगत वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है, जिससे जो साधन पूर्व में उपभोग वस्तु के क्षेत्र में नियोजित निदेशित थे, वे वर्तमान में पूँजीगत उत्पादन के क्षेत्र कार्यशील हो जाते हैं । इस प्रक्रिया का संयुक्त परिणाम यह होता है कि अर्थव्यवस्था अधिक बचत करने के लिए बाध्य हो जाती है ।

15.7 पूंजींवादी विकास की प्रक्रिया (Process of Capitalistic Development)

शुम्पीटर ने पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए अर्थव्यवस्था को पूर्ण प्रतियोगितात्मक अर्थव्यवस्था माना है । इस अर्थव्यवस्था में न तो कोई नवीन विनियोग हो रहा है तथा जनसंख्या में वृद्धि की दर भी स्थिर है । अत: अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की अवस्था में है । सभी आर्थिक क्रियाएं सामान्यत: अपने को दोहराती है । इस प्रकार अर्थव्यवस्था में एक चक्रीय प्रवाह या चक्रीय स्वरूप पाया जाता है, जिसमें नियमित रूप से पुनरावृत्ति होती है तथा अर्थव्यवस्था सामान्य सन्तुलन की अवस्था में विद्यमान रहती है । इस अर्थव्यवस्था के चक्रीय प्रवाह को शुम्पीटर ने निम्न प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों के उच्च स्तर तथा नवीन संयोगों की प्राय: संभावनाएं पायी जाती हैं । जिन्हें उद्यमी प्रयोग करने के लिए नवीन प्रयोग करते हैं, तात्पर्य नव-प्रवर्तन करते हैं तथा बैंकों से साख (ऋण) प्राप्त की जाती है । प्रथम उद्यमी द्वारा इस प्रकार का साहस करने से अन्य उद्यमी भी अनुसरण करना प्रारम्भ कर देते हैं । इस प्रकार की निवेश प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि कीमत स्तर में वृद्धि तथा समाज की मौद्रिक आय उच्च स्तर पर पहुंच जाती है । इस प्रकार की प्रवृत्ति को उद्यमी के नव प्रवर्तन की प्रारम्भिक लहर प्रदर्शित किया गया है ।

शुम्पीटर सिद्धान्त के अनुसार लाभ, ब्याज व पारिश्रमिक की मात्रा में वृद्धि होने फलस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया में वृद्धि दर प्रारम्भ हो जाती है । समाज में लाभ की प्रवृत्ति के द्वारा सट्टा प्रोत्साहित होता है तथा आय तथा लाभ की प्रगतिशीलता सम्भावना के कारण नवीन विनियोग प्रोत्साहित होने लगते हैं । उनका एक परिणाम यह होता है कि बैंक साख में विस्तार होता है । उत्पादन प्रक्रिया उपभोगीय प्रवृत्ति से उत्पादकीय प्रवृत्ति की हो जाती है । इस प्रकार के परिवर्तन से एक अल्पकालीन समय अन्तराल (time lag) अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होता है जो साख स्फीति (credit inflation) को जन्म देता है । अत: अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रवृत्ति के इस प्रकार के परिवर्तन को शुम्पीटर ने समृद्धि (Prosperity) की अवस्था बताया है ।

शनै: शनै: अर्थव्यवस्था की बाजार दशाओं में नवीनतम उत्पादन प्रतिपादित तथा उद्योग में कर्मा का प्रवेश जारी रहता है । इसका परिणाम यह होता है कि उत्पादनकर्ताओं व

उत्पत्ति के साधनों में प्रतिस्पर्द्धालक व्यवहार उत्पन्न हो जाता है । जो कि रचनात्मक विनाश की प्रक्रिया (Process of Creative Destruction) का आरम्भिक चरण होता है । बाजार में प्रवेश करती फर्मा द्वारा पुरानी फर्मों की प्रतिस्पर्द्धा देने के पुरानी फर्मों का अस्तित्व शनैःशनैः समाप्त होता जाता है । नवप्रवर्तन का आकर्षण समाप्त होने लगता है । अर्थव्यवस्था में असामन्जस्य व असन्तुलन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बैंक साख द्वारा संकुचन प्रारम्भ हो जाता है । अतः स्फीतिक अवस्था के स्थान पर अर्थव्यवस्था में मुद्रा विस्फीतिक (Deflation) अवस्था प्रगट होने लगती है । नव-प्रवर्तन क्रियाएं निम्न दर से होने लगती है इस परिणाम यह होता है कि अर्थव्यवस्था में मौद्रिक आय तथा कीमत स्तर के द्वारा प्रारम्भ हो जाती है इस प्रकार की अवस्था को शुम्पीटर ने अवरोध या प्रतिसार (Recession) में सम्बोधित किया है ।

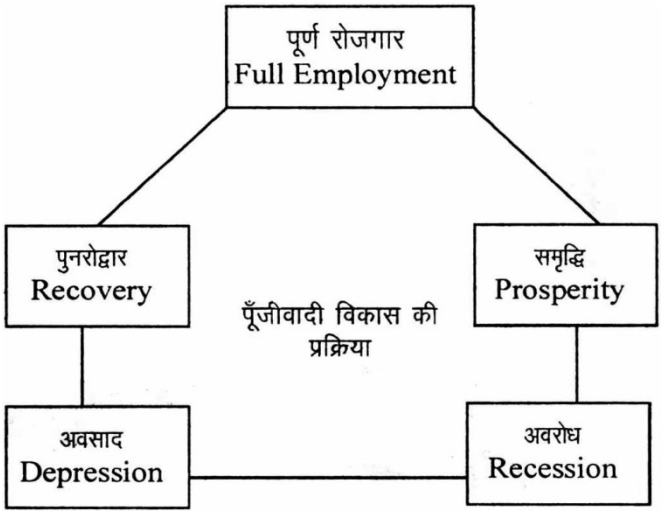

रेखाचित्र 15.1

पुनः शुम्पीटर यह मानते हैं कि अर्थव्यवस्था यदि नवप्रवर्तनों की दृष्टि से स्थिर हो जाती है तो अवसाद या मंदी (Depression) की अवस्था में प्रवेश कर लेती है । उत्पादन क्षेत्र में उत्पादन में संलग्न सभी फार्मों के मध्य अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन स्तर गिर जाता है व अर्थव्यवस्था एक ऋणात्मक चक्र से घिर जाती है ।

उक्त अवस्था एक अर्थव्यवस्था में ज्यादा समय नहीं रह सकती है । नव-प्रवर्तनों का दौर पुनः प्रारम्भ होने लगता है जो कि एक नए तेजी का दौर प्रारम्भ करती है । इस स्थिति को पुनरोद्धार (Recovery) बताया गया है ।

इस प्रकार शुम्पीटर का मत है कि यह एक चक्र पूर्ण होने लगता है तथा अर्थव्यवस्था पुनः विकास के अनुकूलतम स्तर पर अपने को स्थापित कर लेती है । इस प्रकार के चक्र एक निश्चित समयावधि के नहीं होते हैं ।

15.8 पूँजीवाद का पतन (Decay of Capitalism)

शुम्पीटर ने आर्थिक विकास के सिद्धान्त में पूँजीवाद के पतन के संदर्भ में कार्लमार्क्स के विचारों का समर्थन करते हुए बताया है कि पूँजीवाद स्वयं नष्ट हो जाने वाला है । शुम्पीटर

के अनुसार "पूँजीवाद व्यवस्था में स्वयं पतन की प्रवृत्ति निहित होती है । वे शक्तियां पूँजीवाद का विनाश ही नहीं करती हैं अपितु समाजवादी सभ्यता के अत्युदय की परिस्थितियाँ भी उत्पन्न करती है ।" शुम्पीटर पूँजीवाद की सफलता को ही उसके पतन का कारण मानते थे । पूँजीवाद का पतन किसी भी प्रकार की आर्थिक सीमाओं के कारण नहीं होता है, अपितु संस्थागत कमियाँ पूँजीवाद का पतन करने के लिए उत्तरदायी होती है ।

शुम्पीटर यह मानते थे कि पूँजीवाद अर्थव्यवस्था में नवीन उत्पादन तकनीकी, नवीन उत्पाद, नवीन सामाजिक तथा औद्यागिक संगठन प्रदान करता है, इस प्रकार एक नवीन सभ्यता अर्थथवस्था में प्रकट होती है, किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था सदैव स्थापित की जाए वस्तुत: पूँजीवादी पद्धति समाज में गरीबी को दूर नहीं कर सकती ।

शुम्पीटर पूँजीवाद के पतन के विषय में मत प्रकट करते हैं कि पूँजीवाद का विनाश आकस्मिक रुप से न होकर शनै: शनै: होता है । शुम्पीटर पूँजीवाद के पतन के निम्न कारण स्पष्ट करते हैं । प्रथम, अर्थथवस्था में नव-प्रवर्तन एक सामान्य प्रक्रिया का रुप ले लेता है क्योंकि प्रौद्यागिकीय प्रगति प्रशिक्षित विशेषज्ञों का व्यापार का स्वरूप धारण कर लेती है, जिसका परिणाम उद्यमी तथा बुर्जुआ (Bourgeois) वर्ग जिसका अस्तित्व साहसिक कार्यों पर होता है, समाज में महत्वहीन हो जाता है । अत: उद्यमी के लिए नवीन कुछ भी कार्य शेष नहीं रहता है, लाभ में ह्रास होने लगता है, ब्याज शब्द हो जाती है, उद्योग तथा व्यापार एक सामान्य प्रशासनिक प्रबन्ध में परिवर्तित हो जाते हैं अन्ततोगत्वा नौकरशाही प्रबन्ध तंत्र होने के कारण उद्यमी के कार्य का महत्व समाप्त होता है ।

द्वितीय, पूँजीवादी अर्थथवस्था के विनाश का एक कारण संस्थागत ढाँचे का विघटित होना है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में संकेन्द्रण की प्रवृत्ति तथा वृहत् उत्पादन इकाइयों की स्थापना की इच्छा निजी सम्पत्ति तथा प्रसंविदा की स्वतंत्रता को नष्ट कर देता है, जो कि पूँजीवाद की दो प्रमुख संस्थाएं होती है । वृहद औद्योगिक इकाइयों के स्वामी प्रमुखत: प्रबन्ध का कार्य करते हैं जिससे उनमें निष्क्रियता का बोध होने लगता है । इस प्रकार का विघटन पूँजीवाद के पतन का कारण बन जाता है ।

तृतीय, पूँजीवादी व्यवस्था में समाज में पारिवारिक विवेकीकरण होने लगता है । परिवार में माता-पिता अपनी सन्तानों की प्रति परम्परागत पारिवारिक स्नेह के स्थान पर विचारशील प्रवृत्ति को अपनाने लगते हैं । व्यक्ति विशेष की धन संचय की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है परम्परागत उच्च धनिक वर्ग का पारिवारिक संगठन समाप्त होने लगता है, जो कि पूँजीवाद के विनाश को प्रारम्भ करता है । यही नहीं पूँजीवादी समाज में शिक्षा के विस्तार के कारण शिक्षित समूह अधिक होने लगते हैं बुद्धिजीवी वर्ग का विस्तार, रोजगार के अवसरों को कम करने लगता है तथा अन्त में यही समाज का वर्ग पूँजीवाद के पतन का कारण बन जाता है ।

बोध प्रश्न-3

1. शुम्पीटर के आर्थिक विकास सिद्धान्त में उद्यमी का क्या स्थान है?
2. आर्थिक विकास सिद्धान्त में शुम्पीटर ने साख को क्यों महत्व दिया है ।

3. पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया बताइए ।

4. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विनाश के शुम्पीटर ने क्या कारण प्रस्तुत किए हैं?

15.9 शुम्पीटर का आर्थिक विकास मॉडल (Schumpeterian Economic Development Model)

शुम्पीटर आर्थिक विकास सिद्धान्त को सरलता पूर्वक समझने के लिए उसको गणितीय मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

उत्पादन फलन (Production function) के विषय में शुम्पीटर परम्परागत अर्थशास्त्रियों के विचार प्रस्तुत करते हैं । विश्लेषण प्रारम्भ करने के लिए निम्न लिखित उत्पादन फलन होगा ।

$O = f (L, K, Q, T)$

जहां: O = उत्पादन,

L = श्रम की मात्रा

K = ज्ञात साधनों की पूर्ति

Q = पूँजी की मात्रा

T = तकनीकी ज्ञान का स्तर

- **बचतें** (Saving) मजदूरी, लाभ तथा आज की दर पर निर्भर करती है ।

$S = s (W, R, r)$

जहां: S = बचत

W = मजदूरी की दर

R = लाभ का स्तर

r = ब्याज की दर

- **कुल विनियोग, प्रेरित विनियोग** (Induced Investment) एवं स्वत: विनियोग (Autonomous Investment) के बराबर होता है ।

$I = I_i + I_A$

जहां: I= कुल विनियोग,

I_i = प्रेरित विनियोग

I_A = स्वत: विनियोग

- प्रेरित विनियोग लाभ के स्तर तथा ब्याज की दर पर निर्भर करता है ।

$I_i = I (R, r, Q)$

जहां: I_i = प्रेरित विनियोग,

R = लाभ का स्तर,

r = ब्याज की दर,

Q = पूँजी की मात्रा

- स्वत: विनियोग साधनों की खोज तथा तकनीकी स्तर की प्रगति पर निर्भर करता है ।

$I_A = I_a (K, T)$

जहां: $_A$,= स्वत: विनियोग,

K = साधनों की खोज की दर,

T = तकनीकी स्तर की प्रगति की दर

- तकनीकी स्तर की प्रगति की दर तथा साधनों की खोज की दर उद्यमियों की पूर्ति पर निर्भर करती है ।

T = T (E)

K = K (E)

T = तकनीकी स्तर की प्रगति की दर

K = साधनों की खोज की दर

E = उद्यमियों की पूर्ति

- उद्यमियों की पूर्ति, लाभ की दर तथा सामाजिक वातावरण पर निर्भर करती है ।

E = E (R,X)

जहां: E = उद्यमियों की पूर्ति

R = लाभ की दर

X = सामाजिक वातावरण

- कुल राष्ट्रीय उत्पादन बचत तथा विनियोग के सम्बन्ध तथा अति गुणकों (Super Multiplier) पर निर्भर करता है ।

O = k (I-S)

जहां: O = कुल राष्ट्रीय उत्पादन

I = विनियोग

k = अति गुणक

S = बचत

- मजदूरी विनियोग के स्तर पर निर्भर करती है ।

W = w (I)

W = मजदूरी

I = विनियोग

- सामाजिक वातावरण का निर्धारण आय के वितरण के द्वारा होता है ।

$$X = x\frac{R}{W}$$

X = सामाजिक वातावरण

R = लाभ

W = मजदूरी

- कुल राष्ट्रीय उत्पादन, लाभ तथा मजदूरी से समतुल्य होता है ।

  O = (R+W)

  O = कुल राष्ट्रीय उत्पादन

  R = लाभ

  W = मजदूरी

15.10 आर्थिक विकास का शुम्पटिंर सिद्धान्त : एक अवलोकन (Schumpeterian Theory of Economic Growth: At a Glance)

- अर्थव्यवस्था की चक्रीय प्रवाह एक विशेषता होती है । अध्ययन के प्रारम्भिक बिन्दु पर अर्थव्यवस्था साम्य होती है ।
- उक्त चक्रीय प्रवाह में आर्थिक विकास एक आकस्मिक एवं असतत् परिवर्तन का परिणाम होता नव-प्रवर्तन चक्रीय प्रवाह में बाधा के रूप में प्रकट होते हैं । तात्पर्य नव-प्रवर्तकों का परिणाम ही आर्थिक विकास है ।
- नव-प्रवर्तन उद्यमी के जोखिम लेने तथा दूरदर्शिता पर निर्भर करता है ।
- नव-प्रवर्तन के लिए वित्त व्यवस्था बैंक साख द्वारा की जाती है ।
- नव-प्रवर्तनों का संचीय प्रभाव आर्थिक विकास होता है ।
- शुम्पीटर सिद्धान्त अनुसार अर्थव्यवस्था चक्रीय उच्चावचनों से अवश्य ही प्रभावित होती है ।
- अर्थव्यवस्था (पूर्ण रोजगार स्थिति से) को निम्न अवस्थाओं से होकर जाना होता है समृद्धि (Prosperity) अवरोध (recession) अवसाद (depression) पुनरोद्धार (recovery)।
- यह सिद्धान्त यह बताता है कि पूँजीवाद का अन्त अवश्य होता है ।

15.11 शुम्पीटर तथा मार्क्स के विचारों में अन्तर (Difference between Schumpeterian & Marx's View's)

- शुम्पीटर ने नवप्रवर्तन तथा उद्यमी की भूमिका को न्यायोचित माना है जबकि मार्क्स द्वारा श्रम की भूमिका को न्यायोचित माना है ।
- शुम्पीटर आर्थिक विकास की प्रक्रिया को अनियमित व चक्रीय प्रक्रिया बताता है जबकि मार्क्स आर्थिक विकास को एक नियमित व समरूप क्रिया मानते हैं ।
- शुमीटर ने मार्क्स के विपरीत पूँजीवाद के पतन के निम्न कारण प्रस्तुत किये हैं ।
  - नवप्रवर्तन अर्थात् उद्यमी के कार्यो का अनुपयोगी तथा अप्रचलित होना है ।
  - पूँजीवादी संस्थागत ढाँचे का पतन होता है ।
  - पूँजीवादी अवस्था में शिक्षिका वर्ग द्वारा आपत्तियाँ प्रकट करने के कारण राजनैतिक संरचना का पतन होता है ।

15.12 शुम्पीटर का सिद्धान्त तथा विकासशील राष्ट्र (Schumpeter's Theory & Developing Countries)

आर्थिक विकास के सिद्धान्त की श्रृंखला में शुम्पीटर का सिद्धान्त, आर्थिक विकास से संबंधित आधुनिक विचारधारा का आधार स्तम्भ है फिर भी शुम्पीटर का विश्लेषण विकासशील राष्ट्रों से संदर्भ में लागू नहीं है क्योंकि

अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप, अमेरिका इत्यादि में विद्यमान आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के मध्य शुम्पीटर ने आर्थिक विकास मॉडल को प्रतिपादित किया था, उस प्रकार की आर्थिक तथा सामाजिक दशाएं विकासशील राष्ट्रों में नहीं पायी जाती है । तात्पर्य विकासशील राष्ट्रों के पास आर्थिक विकास की कुछ पूर्व दशाएं जैसे- आर्थिक व सामाजिक ऊपरी पूँजी, आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण एवं सामाजिक मूल्य पहले से नहीं पाये जाते हैं ।

शुम्पीटर द्वारा अपने विश्लेषण में प्रस्तुत उद्यमी भी प्राय: विकासशील राष्ट्रों में उपलब्ध नहीं होता है । शुम्पीटर विश्लेषण का आधार उद्यमी वर्ग का उपस्थित होना है, कि मान्यता है, किन्तु उस प्रकार की मान्यता का विकासशील राष्ट्रों में पाया जाना अपवाद स्वरूप है । इन राष्ट्रों में उद्यमशीलता नहीं पायी जाती है क्योंकि इस प्रकार के कार्य प्राय: सरकार द्वारा किए जाते हैं । इस प्रकार के सरकारी प्रयास या उद्यमिता विकास प्रक्रिया को प्रारम्भ करने के लिए सक्षम नहीं होती है ।

विकासशील राष्ट्रों में नवप्रवर्तनों के लिए प्रतीक्षा नहीं की जाती है, क्योंकि इन राष्ट्रों के सम्मुख जनाधिक्य होने के कारण आर्थिक विकास एक प्रमुख तथा आवश्यक समस्या होती है । इसलिए नवप्रवर्तन हेतु प्रतीक्षा करना असम्भव होता है । अत: विकासशील राष्ट्रों में नव प्रवर्तन हेतु कोई महत्व नहीं होता है ।

शुम्पीटर के आर्थिक विकास के सिद्धान्तों को विकासशील राष्ट्रों के संदर्भ में हम इसलिए भी अनुपयुक्त मानते है क्योंकि शुम्पीटर धन की वृद्धि पर जनसंख्या के प्रभाव की अपेक्षा करते है । विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक विकास की प्रमुख समस्या जनसंख्या वृद्धि है । अत: जनसंख्या वृद्धि की उपेक्षा करने वाला कोई भी सिद्धान्त विकासशील राष्ट्रों में लागू नहीं हो सकता है ।

बोध प्रश्न -04

1. शुम्पीटर के आर्थिक विकास मॉडल के गणितीय रूप को स्मरण कीजिए ।
2. शुम्पीटर विकास सिद्धान्त को मार्क्स के सिद्धान्त से भिन्न करने वाले तथ्य लिखिए ।
3. शुम्पीटर विकास सिद्धान्त क्या अर्द्धविकसित अथवा विकासशील राष्ट्र के कार्य कर सकता है ।

15.13 सारांश (Summary)

सामान्यत: किसी भी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास सिद्धान्त का महत्व सर्वाधिक होता है । शुम्पीटर का आर्थिक विकास सिद्धान्त आर्थिक के प्रमुख घटक के रूप में स्फीतिकारी वित्त तथा नवप्रवर्तन के महत्व को प्रस्तुत करता है । स्फीतिकारण वित्त अवस्था उन प्रभावपूर्ण घटकों में से एक है जिसे एक विकासशील राष्ट्र अपने आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अवश्य ही सम्मिलित करने का प्रयास करेगा । नवप्रवर्तन उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि करता है । यहां यह भी सत्य है कि शुम्पीटर विकास सिद्धान्त विकासशील राष्ट्रों को उनके विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाला आकस्मिक विपत्तियों से बचाता है एवं असमन्वित तथा अयोजनाबद्ध विकास में लाभकारी होता है ।

15.14 शब्दावली (Glossary)

दीर्घकालीन अवरोध	Secular Stagnation
आर्थिक विकास	Economic Development
आर्थिक वृद्धि	Economic Growth
प्रावैगिक	Dynamic
असतत् प्रक्रिया	Discontinuous Process
अनिवार्य बचतें	Forced Savings
चक्रीय प्रवृत्ति	Cyclical Nature
स्थिर अर्थव्यवस्था	Static Economy
पूर्ण प्रतियोगिता	Perfect Competition
उत्पादों	Products
नव-प्रवर्तन	Innovation
स्मृद्धि	Prosperity
अवसाद	Depression
उद्यमी	Entrepreneur
उपभोक्ता की सार्वभौमिकता	Consumer's Sovereignty
साख	Credit
अवरोध	Recession
पुनरोद्धार	Recovery

15.15 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. Adelman, I (1961) "Theories of economic Growth & Development"
2. Hogendorn, J (1966) "Economic Development"
3. Higgins, B. (1959) "Economic Development"

4. Jhingan, M.L (2007) “The Economics of Development & Planning”
5. सिंह, एस.पी., (2007) "आर्थिक विकास एवं नियोजन"
6. जैन, बी.के., नैगी, के.एसतथा जैन, आर.के"आर्थिक विकास के सिद्धान्त एवं भारत में आर्थिक नियोजन"

15.16 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit end Questions)

1. शुम्पीटर के आर्थिक विकास सिद्धान्त की विवेचना कीजिए ।
   Discuss the Schumpeterian theory of economic growth.
2. शुम्पीटर द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विकास मॉडल को विस्तार से समझाइए । मार्क्स मॉडल से किन बातों में भिन्न है?
   Give details of Schumpeterian’s economic growth model. In what respects it is different from Mark’s model?
3. शुम्पीटर के विकास सिद्धान्त में उद्यमी की भूमिका की विवेचना कीजिए ।
   Discuss the role of entrepreneur in Schumpeterian theory of economic growth.
4. शुम्पीटर के अनुसार "पूँजीवाद अन्त में जड़ हो जाएगा तथा टूट जाएगा ।" समझाइये ।
   According to Schumpeter’s “Capitalism will eventually stagnate and breakdown.”
   Explain.

इकाई - 16

आर्थिक विकास का हेरोड - डोमर मॉडल

(Harrod-Domar Model of Economic Growth)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 सतत् आर्थिक विकास की आवश्यकताएं

16.3 हेरोड मॉडल

16.3.1 मॉडल की मान्यताएं

16.3.2 विकास की दर

16.3.3 विकास की दरों के मध्य विभिन्नताएं व असन्तुलन तथा आर्थिक विकास

16.3.4 हेरोड मॉडल की विशेषताएं

16.4 डोमर मॉडल

16.4.1 मॉडल की मान्यताएं

16.4.2 डोमर मॉडल का समीकरण

16.4.3 डोमर मॉडल की व्याख्या

16.5 हेरोड व डोमर मॉडल के प्रमुख तथ्यों का संक्षिप्तिकरण

16.6 हेरोड व डोमर मॉडल समीकरणों के गुण

16.7 हेरोड व डोमर समीकरणों की तुलना

16.8 हेरोड व डोमर मॉडल व विकासशील राष्ट्र

16.9 सारांश

16.10 शब्दावली

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1612 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.0 उद्देश्य (Objectives)

आर्थिक विकास के सिद्धान्त में सर्वाधिक योगदान उन अर्थविदों (Economist) का रहा है जिन्होंने केन्सवादी मॉडल का प्रावैगिक (Dynamic) विस्तार करने का प्रयास किया है । अर्थव्यवस्था की दीर्घकालीन समस्याओं पर केन्स ने ध्यान केन्द्रित नहीं किया था, जो परम्परागत अर्थविदों के लिए महत्वपूर्ण थी । तत्कालीन अर्थविदों ने केन्स के सिद्धान्त को

1. Harrod, R.F. “Towards a Dynamic Economics” ,London, 1948
2. Domer, E.D., “Essays in the Theory of Economic Growth”, New York, 1957

उत्पादन व रोजगार से अधिक विस्तृत तथा दीर्घकालीन सिद्धान्त में परिवर्तित करने का प्रयास किया था । इस क्षेत्र में प्रोहेरोड (R.F. Harrod)[1] व प्रोडोमर (E.D. Domer)[2] ने महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया था । उनके आर्थिक विकास मॉडल विकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते हैं । हेरोड-डोमर विकास मॉडल वस्तुत: एक क्षेत्रीय विकास मॉडल (One Sector growth Model) है । प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त यह स्पष्ट होगा कि -

- विकसित अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में एक क्षेत्रीय मॉडल किस प्रकार कार्य करते हैं?
- प्रो. हेरोड तथा प्रो. डोनर के विकास मॉडल क्या हैं तथा इनमें परस्पर समानता तथा असमानता क्या है?
- हेरोड-डोमर विकास मॉडल का विकासशील अर्थथवस्था से क्या सम्बन्ध हो सकता है?

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

विकसित अर्थव्यवस्था में एक क्षेत्रीय विकास मॉडलों में हेरोड-मॉडल का अध्ययन पृथक-पृथक मॉडल व संयुक्त हेरोड-डोमर मॉडल के रूप में इस अध्याय में किया गया है । हेरोड-डोमर आर्थिक विकास मॉडल मूल रूप से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए प्रस्तुत किये गये थे, इन दोनों अर्थविदों का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के लिए सतत् एकरूप विकास की आवश्यक परिस्थितियों का विश्लेषण करना था । हेरोग-डोमर विकास मॉडल का उद्देश्य उन अवस्थाओं को ज्ञात करना है जो मन्दी तथा स्फीति के बिना पूर्ण रोजगार की सतत् वृद्धि के लिए आवश्यक है ।

यहां यह प्रमुख है कि परम्परागत अर्थविद् पूँजी-संचय के क्षमता पूर्ति पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करते थे एवं मांग पक्ष की अवहेलना करते थे । इसके विपरीत केन्सवादियों ने पूँजी संचय के आय वृद्धि पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित किया तथा क्षमता वृद्धि पक्ष की अवहेलना की ।

हेरोड-डॉमर विकास मॉडल इन दोनों विचार धाराओं की त्रुटि को दूर करते हुए क्षमता पूर्ति पक्ष तथा आय वृद्धि पक्ष को सम्मिलित करते हुए अर्थअवस्था के विकास का आंकलन करने का उपाय प्रस्तुत करते हैं ।

16.2 सतत् आर्थिक विकास की आवश्यकताएं (Requirements of Steady Economic Growth)

आर्थिक विकास हेतु हेरोड तथा डोमर पूँजी संचय को महत्व प्रदान करते हैं । यहां इस तथ्य को बताते हैं कि पूँजी-संचय एक अर्थव्यवस्था में दोहरा कार्य करता है । एक तरफ विनियोग आय में वृद्धि करता है एवं दूसरी तरफ अर्थव्यवास्था में पूँजीगत वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि करके उत्पादन क्षमता में वृद्धि करता है । विनियोग आय में वृद्धि की प्रक्रिया को आय प्रभाव (Income Effect) अथवा मांग प्रभाव (Demand Effect) कहा जा सकता है । पूँजीगत वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि प्रक्रिया को पूर्ति प्रभाव (Supply Effect) कहा जा सकता है । मांग प्रभाव द्वारा समाज की अतिरिक्त आय उत्पन्न की जा सकती है । पूर्ति प्रभाव द्वारा

समाज में उत्पादन की अतिरिक्त क्षमता उत्पन्न की जा सकती है । इस प्रकार यदि अर्थव्यवस्था में विनियोग वृद्धि की जाती है तो उत्पादन क्षमता में वृद्धि तथा अतिरिक्त आय उत्पन्न करके अर्थव्यवस्था सतत् विकास करती जाएगी ।

एक प्रावैगिक (Dynamic) अर्थव्यवस्था को वर्ष-प्रतिवर्ष सन्तुलन मार्ग पर रखने के लिए आवश्यक आय वृद्धि की दर को ज्ञात करने का प्रयास हेरोड तथा डोमर ने किया था । हेरोड-डोमर द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण का मुख्य तथ्य यह है कि यहां प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था में आय के पूर्ण रोजगार सन्तुलन स्तर को मान लेते हैं । इस स्तर को बनाए रखने हेतु आवश्यक यह है कि विनियोग के परिणामस्वरूप होने वाला व्यय इतना अधिक होना चाहिए कि विनियोग से उत्पन्न अतिरिक्त उत्पादन का पूर्ण उपयोग किया जा सके । अत: पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त करने के लिए शुद्ध विनियोग की निरपेक्ष मात्रा में निरन्तर वृद्धि आवश्यक है । इस कार्य हेतु राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि आवश्यक है ।

यदि पूँजी निर्माण के साथ-साथ राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं हो पाती है तो इसके परिणामस्वरूप पूँजी व श्रम की बेरोजगारी उत्पन्न हो जाएगी । अत: पूँजीगत वस्तुओं की अधिकता तथा बेरोजगारी से बचने के लिए राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि होना आवश्यक है । अत: जब पूँजीगत स्टॉक की उत्पादन क्षमता वृद्धि कर रही हो तो वास्तविक राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन में समान दर से वृद्धि होनी चाहिए । यदि वास्तविक राष्ट्रीय आय वृद्धि नहीं कर रही हो तो नवीन पूँजी स्टॉक के निर्माण में निम्न परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है ।

प्रथम, नवीन पूँजी का प्रयोग नहीं हो सकता ।

द्वितीय, नवीन पूँजी का प्रयोग पूर्व-निर्मित पूँजी के स्थान पर किया जाएगा ।

तृतीय, श्रम के स्थान पर नवीन पूँजी का प्रतिस्थापन किया जाएगा ।

अत: पूँजी निर्माण के साथ-साथ यदि आय में वृद्धि नहीं होती है तो अर्थव्यवस्था की पूँजी की अधिकता व श्रम में बेरोजगारी उत्पन्न हो जाएगी । इस अवस्था से बचने के लिए आय में पर्याप्त वृद्धि होना आवश्यक है । अत: दीर्घकाल में रोजगार, विनियोग तथा आय की वृद्धि दर पर निर्भर होता है । दीर्घकालीन असन्तुलन को समाप्त करने के लिए आय वृद्धि दर इस प्रकार की होनी चाहिए जो बढ़ते हुए पूँजी स्टॉक की उत्पादन क्षमता का पूर्ण शोषण करने में सक्षम हो ।

हेरोड व डोमर आय वृद्धि की उस दर को ज्ञात करना चाहते थे, जो प्रावैगिक अर्थव्यवस्था को सन्तुलन मार्ग पर रखने के लिए आवश्यक है । आय वृद्धि की इस दर को विकास की आवश्यक दर (Warranted rate of Growth) या पूर्ण क्षमता विकास दर (Full Capacity Growth Rate) कह सकते है ।

16.3 हेरोड मॉडल (Harrod Model)

हेरोड मॉडल केन्सवादी विश्लेषण का एक प्रावैगिक विस्तार है । प्रो. हेरोड सतत् प्रगति की अवस्थाओं को ज्ञात करना चाहते थे एवं उस पथ की प्रकृति को प्रदर्शित करना चाहते थे जिस पर एक अर्थव्यवस्था आगे गति कर सकती है । इस सन्दर्भ में प्रोहेरोड का मानना था कि

एक समयवधि में समाज की शुद्ध बचतें उस समयावधि की समाज की आय का एक निश्चित अनुपात होती है ।

साहसियों की विनियोग करने की इच्छा इस तथ्य पर निर्भर करती है कि उत्पादन वृद्धि की दर क्या है? उक्त दोनों स्थितियों से यह ज्ञात किया जाएगा कि साहसियों द्वारा विनियोग किये जाने के परिणामस्वरूप आय में वृद्धि की प्रकृति किस प्रकार की होगी ।

16.3.1 मॉडल कीं मान्यताएं (Assumptions)

1. इसमें किसी भी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप नहीं है तथा विदेश आपार नहीं है । अर्थात् इस मॉडल का विश्लेषण बन्द अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में है ।
2. अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान है ।
3. पूँजीगत वस्तुओं का मूल्य ह्रास नहीं होता है ।
4. सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) व औसत बचत प्रवृत्ति (APS) बराबर होती है, तथा औसत बचत प्रवृत्ति स्थिर रहती है ।
5. विनियोग दर उत्पादन तथा आय वृद्धि दर पर निर्भर करती है ।
6. आज दर तथा मूल्य स्तर अपरिवर्तनशील होते हैं ।
7. पूँजी श्रम अनुपात तथा पूँजी उत्पादन अनुपात अध्ययन काल में स्थिर रहता है ।
8. पूँजीगत स्टॉक का आय से अनुपात स्थिर माना गया है ।
9. अपेक्षित निवेश तथा वास्तविक निवेश अध्ययन काल में बराबर होते हैं ।

16.3.2 विकास की दर (Rate of Growth)

प्रो. हेरोड ने विकास मॉडल में निम्नलिखित विकास दरों का वर्णन किया है :-

1. **वास्तविक विकास दर (Actual Growth Rate)** अर्थव्यवस्था की वास्तविक विकास दर वह दर होती है, जिस दर पर राष्ट्र विकास करता है । हेरोड के अनुसार

यहां उत्पादन की विकास दर GC=S

यहां, G = उत्पादन की विकास दर

इसे अध्ययन अवधि के अन्तर्गत कुल आय वृद्धि व आय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जा सकता है :

उत्पादन की विकास दर = $\frac{\text{आय में वृद्धि}}{\text{कुल आय}}$

अत: $G = \frac{\Delta Y}{Y}$

यहां, C= पूँजी में वृद्धि आय में प्राप्त वृद्धि (ΔY) में से विनियोजित भाग (I) से प्रदर्शित किया जाता है ।

अर्थात पूँजी में वृद्धि $\frac{\text{विनियोग}}{\text{आय में वृद्धि}}$ अत: $C = \frac{I}{\Delta Y}$

यहां S = बचत, अर्थात् आय (Y) से बचाया गया हिस्सा

अत: $s = \frac{S}{Y}$

$\therefore \quad G = \frac{\Delta Y}{Y}$

$C = \frac{I}{\Delta Y}$

$s = \frac{S}{Y}$ है।

चूँकि GC = s

अत: $\frac{\Delta Y}{Y} \cdot \frac{I}{\Delta Y} = \frac{S}{Y}$

अथवा $\frac{I}{Y} = \frac{S}{Y}$

$\therefore \quad i = s$ है ।

अत: वास्तविक विनियोग (I) तथा वास्तविक बचत (S) समान होते हैं । इन दोनों के माध्यम से वास्तविक विकास दर को ज्ञात किय जा सकता है । वास्तविक विकास दर मात्र एक दिशात्मक ज्ञान है कि एक समयावधि में क्या हुआ है?

2. **विकास की आवश्यक दर (Warranted Growth Rate)** हेरोड के अनुसार विकास की आवश्यक दर वह दर है जो विकास को निरन्तर उत्पन्न करती है । इस दर के द्वारा विकास की आवश्यकताओं का ज्ञान होता है तथा उद्यमकर्ताओं को सन्तुष्ट करती है । अत: विकास की आवश्यक दर वह होती है, जिसे यदि प्राप्त किया जाता है तो उद्यमकर्ता इस प्रकार की मानसिक स्थिति में होता है कि वह इसी प्रकार से विकास करते रहने के लिए प्रेरित होता है ।

हेराड के अनुसार,

Gw Cr = s

जहां Gw = विकास की दर

Cr = आवश्यक पूँजी अथवा वह पूँजी गुणांक जो विकास की आवश्यक दर को प्राप्त करती है।

s = सीमान्त बचत प्रवृत्ति

पुन: $GW = \frac{s}{Cr}$

यहां s तथा G स्थिर रहते हैं ।

उपर्युक्त समीकरण के अनुसार यदि उत्पादन क्षमता के पूर्ण शोषण को बनाए रखना है तो आय में वृद्धि की दर सीमान्त बचत प्रवृत्ति / पूँजी उत्पादन अनुपात के समान होना आवश्यक है ।

इस प्रकार अर्थव्यवस्था में यदि आय में वृद्धि विकास की आवश्यक दर के अनुरूप होगी तो अर्थव्यवस्था में पूँजी स्टॉक का पूर्ण शोषण सम्भव होगा तथा अर्थव्यवस्था सतत् प्रगति के पथ पर अग्रसित होगी ।

3. **विकास की स्वाभाविक दर (The Natural Rate of Growth)** विकास की स्वाभाविक दर, अर्थव्यवस्था की वह विकास दर होती है जो तकनीकी विकास तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण प्राप्त होती है । यह विकास दर भौतिक रूप से प्राप्त की जाने वाली सर्वोच्च विकास दर होती है । जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में उपलब्ध साधनों को पूर्ण रोजगार की अवस्था में रखा जा सकता है । इस प्रकार यह विकास की अधिकतम दर होती है, जिसे अर्थव्यस्था में उपलब्ध श्रम व राष्ट्रीय साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।

अत: $Gn\ Cr = s$ अथवा $Gn\ Cr \neq s$

यहां Gn= विकास की स्वाभाविक दर है ।

16.3.3 विकास की दरों के मध्य विभिन्नताएं व असन्तुलन तथा आर्थिक विकास

यदि अर्थव्यवस्था सन्तुलन की दशा में है तो वास्तविक विकास दर (G) विकास की आवश्यक दर (Gw) तथा विकास की स्वाभाविक दर (Gn) परस्पर समान होती है ।

यदि $G = Gw = Gn$ तो अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति में,

यहां हेरोड का मत है कि यह स्थिति एक छुरी धार सन्तुलन (Knife Edge Balance) की स्थिति में है, जिसे सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता है । G, Gw तथा Gn के मध्य असमानता के कारण अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन अवरोध अथवा स्फीति की दशा उत्पन्न होती है ।

- **यदि अर्थव्यवस्था में G अधिक है Gw से (G>Gw)** इसका अर्थ यह है कि अर्थव्यवस्था में बचत की तुलना में विनियोग में वृद्धि हो रही है एवं आय की वृद्धि दर Gw से अधिक है तात्पर्य वास्तवीक पूँजी (C) आवश्यक पूँजी (Cr) से कम होगी । इस स्थिति की दीर्घकालीन स्फीति से तुलना कर सकते है।
- **इसके विपरीत यदि Gw से G कम (G<Gw)** है अर्थात अर्थव्यवस्था में विनियोग की तुलना में बचत में वृद्धि हो रही है । विकास की स्वाभाविक दर, विकास की आवश्यक दर से कम है । अत: वास्तविक पूँजी (C) आवश्यक पूँजी (Cr) से अधिक होगी एवं अनुमानित निवेश वास्तविक निवेश से कम होने के कारण कुल मांग (Aggregate demand) कुल पूर्ति (Aggregate supply) से कम रहती है । इस दशा में फलस्वरूप उत्पादन, रोजगार व आय में ह्रास होने लगता है । यह परिस्थिति दीर्घकालीन मंदी की प्रतीत होती है ।
- **हेरोड के अनुसार यदि Gw अधिक है Gn से, (Gw>Gn)** इसका तात्पर्य विकास की आवश्यक दर विकास की प्राकृतिक दर से अधिक है । परिणाम यह होगा कि दीर्घकालीन अवरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी तथा विकास की आवश्यक दर (Gw) विकास की वास्तविक दर (8) से भी अधिक होगी क्योंकि अर्थअवस्था में वास्तविक विकास दर की अधिक

सीमा विकास की स्वाभाविक दर (Gn) द्वारा निर्धारित होती है । अन्य शब्दों में, अर्थव्यवस्था दीर्घकालीन गतिहीनता की अवस्था में होगी ।

- **इसके विपरीत Gw कम है Gn (Gw<Gn)** से तो अर्थव्यवस्था में आवश्यक पूँजी (Cr) से वास्तविक पूँजी कम पायी जाती है एवं वास्तविक विकास दर (G) अधिक होगी विकास की आवश्यक दर (Gw) से । इस परिस्थति में परिणामस्वरूप श्रम की अधिकता उत्पन्न हो जाएगी व पूँजीगत वस्तुओं की मात्रा में ह्रास उत्पन्न होगा; अर्थात दीर्घकालीन स्फीति की दशाएं उत्पन्न हो जाएगी ।

उपर्युक्त अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि एक अर्थव्यवस्था किन सीमाओं में रह सकती है । हेरोड के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि :-

G, Gn से बहुत अधिक नहीं हो सकता है, यदि G, Gn के समान होता है तो Gw में भी वृद्धि होती है, अत: एक अर्थव्यवस्था का विकास शून्य नहीं हो सकता है क्योंकि पूँजीनिर्माण की दर कमी भी शून्य नहीं हो सकती है ।

16.3.4 हेरोड मॉडल की विशेषताएं

1. उत्पादक व उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन इस मॉडल में प्रदर्शित किया गया है ।
2. हेरोड मॉडल में बाह्य तत्वों को समावेशित नहीं किया गया है । परिवर्तनशील तत्वों जैसे, पूँजी की मात्रा, आयात, निर्यात आदि का उल्लेख नहीं मिलता है ।
3. यह मॉडल अपने विश्लेषण में समय - विलम्बों (Time-lag) का उल्लेख नहीं करता है।

संक्षेप में हेरोड मॉडल एक विकास मॉडल है तथा व्यापार चक्र की विषमताओं को समाप्त करने वाला मॉडल है । इसे हम विकास मॉडल इसलिए कह सकते हैं क्योंकि यह अर्थव्यवस्था में आय वृद्धि अथवा आय ह्रास क्यों हो रही है, को प्रदर्शित करता है ।

बोध प्रश्न -01

1. कौन-सा मॉडल केन्सवादी विश्लेषण का आधार है?
2. वास्तविक विकास दर क्या होती है?
3. विकास की आवश्यक दर का क्या अर्थ है?
4. विकास की स्वाभाविक दर किसे कहते है?
5. हेरोड मॉडल की प्रमुख विशेषता क्या है?

16.4 डोमर मॉडल (Domer's Model)

डोमर मॉडल भी हेरोड मॉडल के समान एक क्षेत्रीय विकास मॉडल है । कीन्स द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण को डोमर मॉडल में सुधारने का प्रयास किया गया है । संक्षेप में, कीन्स के गुणक सिद्धान्त का प्रयोग परम्परागत उत्पादकता सिद्धान्त के साथ करके अर्थव्यवस्था की

दीर्घकालीन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन अल्पकालीन साधनों का प्रयोग करके, करने का प्रयत्न प्रोडोमर ने किया है

American Economic Review के मार्च 1947 के अंक में डोमर ने अपने मॉडल की प्रस्तुति की थी । डोमर ने मॉडल निर्माण इस समस्या से प्रारम्भ किया था कि, विनियोग वृद्धि से उत्पादन क्षमता का विस्तार होता है व आय भी उत्पन्न होती है, विनियोग वृद्धि की दर क्या होनी चाहिए ताकि आय वृद्धि की दर को उत्पादन क्षमता वृद्धि की दर के समान किया जा सके जिससे पूर्ण रोजगार का स्तर बनाए रखना सम्भव हो सके ।

कीन्स ने मात्र मांग वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित किया था तथा विनियोग की मात्रा व दर क्या होनी चाहिए इस पक्ष पर ध्यान नहीं दिया था । किन्तु डोमर ने विनियोग से संबंधित दोनों पक्षों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए मांग उत्पन्न करने का पक्ष (आय वृद्धि करना) तथा पूर्ति वृद्धि का पक्ष (उत्पादन क्षमता वृद्धि) का अध्ययन किया था । उनका मत था कि विनियोग से आय वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है ।

16.4.1 मॉडल की मान्यताएं (Assumptions)

डोमर मॉडल की मान्यताएं निम्नलिखित है -

1. राज्य का अर्थव्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं है ।
2. अर्थव्यवस्था का अन्तरराष्ट्रीय व्यापार नहीं है ।
3. सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा औसत बचत प्रवृत्ति समान होती है ।
4. सीमान्त बचत प्रवृत्ति एवं पूँजी की सीमान्त उत्पादकता स्थिर (constant) रहती है ।
5. आय तथा पूँजी गुणांक के मध्य अनुपात स्थिर होता है ।
6. अर्थव्यवस्था का आय स्तर प्रारम्भिक पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त किए हुए है ।
7. विनियोग तथा उत्पादन क्षमता के मध्य समायोजन काल शून्य है, अर्थात् समायोजन में समय-अन्तराल (Time-lag) नहीं होता है ।

16.4.2 डोमर मॉडल को समीकरण (Domer's Equation)

अध्ययन की दृष्टि से डोमर समीकरण को यहां सतत् प्रकार से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है-

प्रथम, किसी अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता को ज्ञात करना है । डोमर की समीकरण के अनुसार

अतिरिक्त उत्पादन क्षमता = विनियोग की मात्रा (I) गुणा विनियोग की उत्पादकता (σ)

(Productive Capacity= Amount of Investment (I) गुणा Productivity of Investment (σ)

अत: अतिरिक्त उत्पादन क्षमता ।σ

यह उत्पादन क्षमता में वृद्धि दर प्रदर्शित करता है ।

द्वितीय, विनियोग में वृद्धि का आय में वृद्धि से सम्बन्ध ज्ञात करना ।

अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्षमता द्वारा आय का सृजन किया जाता है, जो पुन: मांग उत्पन्न करती है । अर्थात् मांग आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होती है । आय में परिवर्तन विनियोग की दर में परिवर्तन तथा उसके गुणक पर निर्भर करती है ।

गुणक प्रभाव उपभोग तथा बचत की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है ।

$$\Delta Y = \Delta I \frac{1}{\alpha}$$

यहां, ΔY आय में वृद्धि

ΔI विनियोग में वृदि

α बचत प्रवृत्ति (MPS) एवं $\frac{1}{\alpha}$ गुणक है ।

अर्थात् विनियोग में परिवर्तन को गुणक से गुणा करने पर आय में वृद्धि ज्ञात होती है।तृतीय, अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान रखने के लिए आवश्यक है कि उत्पादन क्षमता के समान आय में वृद्धि होनी चाहिए ।

$\therefore$ उत्पादन क्षमता में वृद्धि $I\sigma$

वास्तविक आय में वार्षिक वृद्धि $\Delta I \frac{1}{\alpha}$ है । तो पूर्ण रोजगार संतुलन तभी तक बना रहेगा

$$\frac{\Delta I}{\alpha} = I\sigma$$

जब तक है ।

अत: सतत् विकास हेतु आवश्यकता होगी

समीकरण $$\frac{\Delta I}{\alpha} = I\sigma$$

उक्त समीकरण को सरल रूप में व्यक्त करने के लिए समीकरण के दोनों तरफ I द्वारा भाग देते हैं एवं α से गुणा करते है ।

अत: $$\frac{\Delta I}{I} = I\sigma$$

यहां $\frac{\Delta I}{I}$ = कुल विनियोग की तुलना में विनियोग की निरपेक्ष वार्षिक वृद्धि को दिखाता है । ΔI = अतिरिक्त विनियोग

σ = पूँजी उत्पादन अनुपात

I = बचत अनुपात

संक्षेप में अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित रखनी है तो यह आवश्यक है कि एक स्थिर वार्षिक दर से दिनियोग व आय में वृद्धि होनी चाहिए जो बचत की सीमान्त क्षमता व विनियोग की औसत उत्पादकता दर के गुणांकों के बराबर हो ।

डोमर मॉडल में साम्य की अवस्था से, विचलन होने पर अर्थथवस्था में दोनों दिशाओं में संचयी प्रभाव उत्पन्न हो सकते है ।

16.4.3 डोमर मॉडल की व्याख्या

प्रो. डोमर की मॉडल की व्याख्या हेतु पुन: हम मूल समीकरण का अवलोकन करते हैं ।

$$\frac{\Delta I}{I} = \alpha\sigma$$

उपर्युक्त समीकरण का बायाँ पक्ष विनियोग की मात्रा से विभाजित विनियोग में वृद्धि को प्रस्तुत करता है । इसका अर्थ यह है कि यह विनियोग की वृद्धि की दर का वार्षिक अनुपात है । इस प्रकार पूर्ण रोजगार को बनाए रखने के लिए यह अनिवार्य है कि विनियोग की वार्षिक दर से वृद्धि करना चाहिए । यहां यह माना गया है कि आय विनियोग का एक निश्चित गुणांक है अर्थात आय को भी उसी वार्षिक दर से वृद्धि करना चाहिए । अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि विनियोग तथा वास्तविक आय एक निश्चित वार्षिक आनुपातिक दर से वृद्धि करने चाहिए जो बचत करने की प्रवृत्ति एवं विनियोग की औसत उत्पादकता का गुणनफल होती है ।

इस विषय में डोमर का मत है कि अर्थव्यवस्था बहुत बड़ी दुविधा में होती है । यदि आज पर्याप्त मात्रा में विनियोग नहीं होता है तो आज ही बेरोजगारी उत्पन्न हो जाएगी, यदि आज उचित मात्रा में विनियोग कर दिया जाता है तो कुल मांग में वृद्धि करने के लिए और अधिक मात्रा में विनियोग की आवश्यकता होगी जिससे कि वृद्धि कर रही उत्पादन क्षमता का प्रयोग किया जा सके तथा अत्यधिक पूँजी से बचा जा सके ।

यदि इस प्रकार की प्रक्रिया नहीं होती है तो अत्यधिक पूँजी संचय का परिणाम विनियोग में ह्रास उत्पन्न होगा तथा अर्थव्यवस्था में मन्दी की स्थिति उत्पन्न होने का भय उत्पन्न हो जाएगा अर्थात् अर्थव्यस्था को उसी स्थिति में रखने के लिए तीव्रता से गति उत्पन्न होनी चाहिए अन्यथा अर्थव्यवस्था मन्दी की ओर गति करने लगेगी ।

प्रो. डोमर इस निष्कर्ष को प्राप्त करते है कि आज का विनियोग पिछले कल की बचत से अधिक होना चाहिए । प्रत्येक क्षण नवीन पूँजी में वृद्धि होनी चाहिए तथा इस वृद्धि की दर बढ़ती हुई दर से होनी चाहिए । अर्थव्यवस्था का निरन्तर विस्तार होते रहना आवश्यक है ।

16.5 हेरोड व डोमर मॉडल के प्रमुख तथ्यों का संक्षिप्तिकरण

1. अर्थव्यवस्था की वृद्धि करती उत्पादन क्षमता या तो उत्पादन में वृद्धि करती है अथवा बेरोजगारी में वृद्धि कारण बन सकती है तात्पर्य अर्थव्यवस्था में आय किस प्रकार कार्य करती है, अत: अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के स्तर को बनाए रखने के लिए डोमर व हेरोड ने निम्न प्रकार प्रदर्शित किया ।

   हेरोड के मतानुसार

   आय में वृद्धि - $\frac{\text{सीमान्त बचत प्रवृत्ति}}{\text{पूँजी उत्पादन अनुपात}}$

डोमर मतानुसार

प्रति इकाई आय में वृद्धि = $\frac{\text{बचत प्रवृत्ति}}{\text{पूँजी उत्पादन अनुपात}}$

2. हेरोड व डोमर मॉडल एक ही निष्कर्ष को प्राप्त करते हैं कि अर्थव्यवस्था में सतत् वृद्धि होनी चाहिए । यहां यह आश्यकता नहीं है कि विकास की वास्तविक दर तथा विकास की आवश्कता दर समान हो, दोनों दरों में भिन्नता पायी जाती है । यदि विकास की वास्तविक दर, विकास की आवश्यकता दर से अधिक है तो अर्थवस्था में दीर्घकालीन स्फीति की दशा उत्पन्न हो सकती है । इसके बिपरीत, यदि विकास की वास्तविक दर, विकास की आवश्यक दर से कम है तो अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन विस्फीति की दशा उत्पन्न हो सकती है ।
3. पूँजी उत्पादन अनुपात के दिए रहने पर औसत बचत प्रवृत्ति; सीमान्त बचत प्रवृत्ति के बराबर होती है, जब तक कि बचत एवं विनियोग की समानता वृद्धि के सन्तुलन दर की शर्तो को पूर्ण करती है । डोमर पूँजी संचय तथा उत्पादन में पूर्ण क्षमता वृद्धि के मध्य प्रौद्योगिकीय संबंध प्रदर्शित करते हैं । हेरोड इसके अतिरिक्त एक तरफ तो मांग में वृद्धि व दूसरी तरफ पूँजी संचय के मध्य सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं ।
4. हेरोड-डोमर ने अपने मॉडल में विनियोग को महत्व दिया है । अर्थव्यवस्था के सतत् विकास के लिए विनियोग दो कार्य करता है, एक तरफ तो विनियोग से उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है तथा दूसरी तरफ विनियोग आय में वृद्धि करता है ।
5. इस अध्ययन में आपार चक्रों को सतत् विकास के पथ से विचलन (Deviation) माना है ।

16.6 हेरोड व डोमर मॉडल समीकरणों के गुण (Merits of Harrod- Domer's Equations in Model)

1. परम्परागत आर्थिक विकास समीकरणों में मात्र दिनियोग के पूर्ति पक्ष अथवा मांग पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित किया था अत: विश्लेषण एक पक्षीय था । हेरोड व डॉमर मॉडल में विनियोग के दोनों पक्ष 'मांग प्रभाव' तथा पूर्ति प्रभाव' पर ध्यान केन्द्रित किया था ।
2. हेरोड-डोमर समीकरणों में समूहों के अन्तर्सम्बन्धी तत्वों जैसे - शुद्ध विनियोग, जनसंख्या वृद्धि, उत्पादन तथा पूर्ण रोजगार के स्तर की व्याख्या मिलती है ।
3. हेरोड-डोमर समीकरणों में कीन्स विश्लेषण के प्रमुख घटक जैसे - बचत, विनियोग व गुणक इत्यादि का प्रयोग किया गया है, परन्तु ये समीकरण कीन्स के स्थिर सन्तुलन का उपयोग नहीं करती है ।
4. हेरोड-डोमर समीकरणों के द्वारा अर्थव्यवस्था के विकास की प्रावैगिक स्थिति में स्फीति या विस्फीति के बिना पूर्ण रोजगार की दशा का वर्णन किया है ।
5. हेरोड-डोमर समीकरण कीन्स के विकास सिद्धान्त में महत्वपूर्ण योगदान है । कीन्स का विश्लेषण एक अल्पकालीन विश्लेषण है । कीन्स के रोजगार के सामान्य सिद्धान्त में दीर्घकालीन समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया गया है । इसके विपरीत हेरोड-

डोमर समीकरण दीर्घकालीन आर्थिक विकास को बताता है । कीन्स की व्याख्या स्थिर सन्तुलन पर आधारित है क्योंकि कीन्स श्रम की पूर्ति, तकनीकी ज्ञान, स्पर्द्धा की मात्रा उपभोग स्तर आदि को दिया हुआ व स्थिर मानते हैं । विपरीत, हेरोड-डोमर समीकरण गतिशील अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन आर्थिक विकास का विश्लेषण करता है ।

16.7 हेरोड - डोमर समीकरणों को तुलना (Comparison of Harrod- Domer Model)

यद्यपि हेरोड तथा डोमर समीकरणों के मध्य बहुत अनुरूपता है, किन्तु ये दोनों समीकरण एक समान नहीं है । इन दोनों समीकरणों के मध्य तुलना निम्न प्रकार हैं ।

1. हेरोड मॉडल आर्थिक विकास के उस पक्ष को अभिव्यक्त करता है जहां साहसी या उद्यमी को विकास के उस पथ पर चलता होता है जो आर्थिक विकास की वर्तमान दर को स्थापित रखने में सक्षम होता है ।

डोमर मॉडल आर्थिक विकास के उस पक्ष को अभिव्यक्त करता है जहां पूँजी संचयन द्वारा उत्पन्न समूर्ण उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करने हेतु उत्पादन स्तर को किस सीमा तक लाना होगा ।

अर्थात्, हेरोड मॉडल की विकास की आवश्यक दर जो कि डोमर मॉडल की समीकरण के समीप है तथा साहसी या उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में रहने के लिए सन्तुष्ट करती है, बचत के अनुपात तथा आवश्यक पूँजी-उत्पादन अनुपात पर निर्भर करती है, का मात्र वर्णन करती है जबकि पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित विकास की दिशा या मात्रा की अभिव्यक्ति नहीं करती है ।

डोमर मॉडल पूर्ण रोजगार की अवस्था को स्थापित करने के विषय में चिंतन करती है। यहां यह तथ्य स्थापित करने का प्रयास किया गया कि विनियोग की वह कौन सी दर होनी चाहिए जो पूर्ण रोजगार को प्रदान करती है ।

2. विकास की आवश्यक दर, पूर्ण रोजगार प्रदान कर सकती है अथवा नहीं यह सिद्ध करना कठिन कार्य है । अत: हेरोड मॉडल में विकास की स्वाभाविक दर को सम्मिलित किया गया है, जिससे यह प्रदर्शित किया जा सके कि विकास की कौनसी दर श्रम के पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि श्रम के पूर्ण रोजगारित होने के पश्चात् पूँजी को भी पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सकता है ।

डोमर विकास मॉडल में हेरोड मॉडल के विपरीत यह मान लिया जाता है कि श्रम तथ पूँजी दोनों को संयुक्त रूप से कार्य प्राप्त होता है ।

3. हेरोड मॉडल समीकरण उन अनेक समीकरणों में से है जो संयुक्त रूप से एक आर्थिक विकास के पूर्ण सिद्धान्त की प्रस्तुति करता है । इसके अतिरिक्त वर्तमान उत्पादन व पूँजी निर्माण के मध्य एक व्यावाहारिक सम्बन्ध भी समझाता है ।

इसके विपरीत डोमर मॉडल द्वारा एक ही महत्वपूर्ण समीकरण प्रस्तुत की गयी है । यहां पर पूँजी निर्माण तथा उसके फलस्वरूप होने वाली पूर्ण उत्पादन क्षमता के विकास के मध्य प्राविधिक सम्बन्ध प्रदर्शित करता है ।

16.8 हेरोड व डोमर मॉडल व विकासशील राष्ट्र
(Harrod- Domer Model and Doveloping Countries)

हेरोड-डोमर मॉडल विकसित राष्ट्रों के अनुभवों के आधार पर विकसित किये गये थे जोकि विकसित अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक विकास प्रक्रिया का वर्णन करते हैं । इन मॉडल के माध्यम से यह ज्ञात करने का प्रयास किया जा सकता है कि एक विकसित अर्थव्यवस्था को दीर्घकालीन अवरोध के प्रभाव से मुक्त किया जा सकता है । ये मॉडल आय वृद्धि की उस दर को ज्ञात करने का प्रयास करते हैं, जो विकसित अर्थव्यवस्था को दीर्घकालीन स्फीति से बचाए रखने के लिए पर्याप्त है । विकासशील राष्ट्रों की प्रमुख समस्या आर्थिक उच्चावचनों से बचने की नहीं होती है । वरन् अर्थव्यवस्था के विकास की होती है । व्यवहारिक रूप से इस मॉडल का प्रयोग विकासशील राष्ट्रों में नहीं किया जा सकता है ।

हेरोड-डोमर मॉडल की विकास की आवश्यक दर पूँजी के पूर्ण शोषण को तो प्रकट करती है, किन्तु उसके द्वारा श्रम को पूर्ण रोजगार प्रदान किया जा सकता है, को नहीं बताती है । अत: विकासशील अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की समस्या को हल करने में सक्षम नहीं है । वस्तुत: विकासशील राष्ट्रों में अर्द्ध बेरोजगारी या संरचनात्मक बेरोजगारी पायी जाती है, जिसको समाप्त करने के लिए प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि पर्याप्त नहीं होती है । विकासशील राष्ट्रों में बेरोजगारी का कारण पूँजी ह्रास होता है, जिसे प्रभावपूर्ण मांग वृद्धि से समाप्त नहीं किया जा सकता है, अपितु पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करके किया जा सकता है । अत: संरचनात्मक बेरोजगारी की समस्या का हल प्राप्त नहीं किया जा सकता है । अत: यह मॉडल विकासशील राष्ट्रों के लिए उचित नहीं है ।

हैरोड-डोमर मॉडल तकनीकी विकास को प्रारम्भिक स्तर पर विनियोग अवसरों को उत्पन्न करने वाला समझते हैं किन्तु विकासशील राष्ट्रों में तकनीकी विकास की आवश्यकता उस अर्थव्यवस्था के उत्पादकता प्रभाव के कारण होती है चाहे प्रभावपूण मांग में वृद्धि हो या नहीं । उक्त तथ्य को हेरोड-डोमर मॉडल में स्थान नहीं है अत: यह मॉडल विकासशील राष्ट्रों के लिए उचित मॉडल नहीं है।

विकासशील अर्थव्यवस्था या राष्ट्र में सरकारी हस्तक्षेप अन्तरराष्ट्रीय व्यापार, कीमत अस्थिरता आदि घटक प्राय: पाये जाते हैं । ये सभी घटक हेरोड-डोमर मॉडल में अनुपस्थित है अथवा मान्य नहीं है जोकि विकासशील अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ अव्यावहारिक है । अत: हेरोड डोमर मॉडल शुद्ध रूप से निर्बादवादी (Laissez faire) है जो राजकोषीय तटस्थता (Fiscal Neutrality) की मान्यता पर आधारित है तथा एक विकसित राष्ट्र के प्रावैगिक सन्तुलन (Dynamic Equilibrium) की स्थिति को प्रदर्शित करता है । अत: उसका नित्यात्मक अशय उसके बिल्कुल, विपरीत हो जाता है जैसा कि विकासशील अर्थव्यवस्था में उम्मीद की जाती है इसलिए इन मॉडल की उपरोक्त प्रवृत्ति विकासशील राष्ट्रों के मॉडल के महत्व को कम कर देती है इन राष्ट्रों की प्रारम्भिक आवश्यकता सरकारी हस्तक्षेप, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार तथा राजकोषीय नीति आदि है । अत: विकासशील राष्ट्रों में कुशल साहसी के अभाव के कारण सरकार के

अग्रगामी साहसी के कार्य को प्राथमिकता प्रदान की जाती है । संक्षेप में, विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक प्राथमिक घटकों के अभाव के कारण यह मॉडल इस प्रकार की अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त नहीं है ।

उपर्युक्त लिखित सीमाओं के होते हुए भी हेरोड-डोमर मॉडल विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इन मॉडल के द्वारा सतत् विकास की आवश्यक दशाओं का अध्ययन करने में सहायक है । इन मॉडल का प्रयोग, मॉडल में आवश्यक परिवर्तन करने के पश्चात् विकासशील अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए किया जा सकता है।

संक्षेप में, हेरोड-डोमर मॉडल मात्र इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि कीन्स के स्थैतिक तथा अल्पकालीन बचत विनियोग सिद्धान्त को दीर्घकालीन, प्रावैगिक अध्ययन में बदलने का प्रयत्न करते हैं अपितु उनका महत्व इसलिए भी है कि उसमें राजकोषीय नीति को सम्मिलित करके इस प्रकार का संशोधन किया जा सकता है कि विकासशील अर्थव्यवस्था की विकास समस्या को अभिव्यक्त कर सके ।

हेरोड-डोमर मॉडल विकासशील राष्ट्र की पूँजी अभाव का अनुमान लगाने में भी सहायक हो सकते हैं । डोमर मॉडल एक परिवर्तनशील मॉडल है । यह मॉडल मात्र यह नहीं बताता है कि जिस पर एक अर्थव्यवस्था को नए विनियोग से उत्पन्न होने वाली उत्पादन क्षमता का समूर्ण प्रयोग करने हेतु विकसित होना चाहिए, अपितु यह प्रदर्शित करता है कि आय वृद्धि की एक निर्धारित दर को प्राप्त करने हेतु बचत तथा पूँजी उत्पादन अनुपात के मध्य क्या अनुपात जरूरी है?

निष्कर्षत:, हम यह कह सकते है कि हेरोड-डोमर मॉडल यद्यपि विकसित अर्थव्यवस्था के विषय में है । किन्तु इसमें कुछ संशोधन कर विकासशील राष्ट्रों में भी लागू किया जा सकता है ।

बोध प्रश्न -02

1. डोमर मॉडल की क्या मान्यतएं हैं?
2. डोमर मॉडल समीकरण लिखिएं
3. हेरोड मॉडल व डोमर मॉडल की समानताएं बताइए।

16.9 सारांश (Summary)

परम्परावादी अर्थविदों द्वारा पूँजी संचय की प्रक्रिया के क्षमता वृद्धि पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया था एवं उसके मांग पक्ष पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया था । इसके विपरीत कीन्सवादियों ने पूँजी संचय के आय वृद्धि पर पूर्ण ध्यान केन्द्रित किया था, तथा उसके क्षमता वृद्धि पक्ष को विश्लेषण में सम्मिलित नहीं किया था । हेरोड-डोमर मॉडल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह विनियोग प्रक्रिया के दोनों पक्षों को सम्मिलित कर देता है एवं इस प्रकार परम्परागत तथा कीन्सवादी विश्लेषण को मिलाने का प्रयास करता है । अत: हेरोड-डोमर विकास मॉडल अध्ययन आर्थिक विकास के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

हेरोड-डोमर विकास मॉडल के विश्लेषण से स्पष्ट है कि बचत की प्रवृत्ति पूँजी उत्पादन अनुपात तथा स्थिर राजकोषीय नीति के अभाव पर आधारित होने के कारण मात्र विकसित अर्थव्यवस्था पर ही लाग किया जा सकता है । विकसित अर्थव्यवस्था जो कि पूर्ण में उचित मात्रा में आर्थिक विकास की दर को प्राप्त कर लिया है, इस मॉडल द्वारा इस समस्या का समाधान करती है कि भविष्य में इस आर्थिक विकास की दर को किस प्रकार स्थापित रखा जा सकता है ।

हेरोड-डोमर विकास मॉडल विकासशील या अर्द्ध-विकसित राष्ट्र पर लागू नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इन राष्ट्रों की समस्याएं भिन्न है तथा प्रमुख समस्या रोजगार के सन्तुलन बिन्दु को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है । अत: निष्कर्ष स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि हेरोड-डोमर विकास मॉडल विकासशील या अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में मात्र आंशिक रूप से ही प्रभावी होता है । अत: प्रोसिंगर का कथन उचित है कि हेरोड-डोमर विकास मॉडल विकसित राष्ट्रों के लिए 'आशावादी मॉडल' है, किन्तु विकासशील राष्ट्रों के लिए इस मॉडल में निराशावादी विचार समुख प्रकट होते हैं ।

16.10 शब्दावली (Glossary)

प्रावैगिक	(Dynamic)
एक क्षेत्रीय विकास मॉडल	(One Sector Growth Model)
आय प्रभाव	(Income effect)
माँग प्रभाव	(Demand effect)
पूर्ति प्रभाव	(Supply effect)
वास्तविक विकास दर	(Actual Growth Rate)
विकास की आवश्यक दर	(Warranted Growth Rate)
विकास की स्वाभाविक दर	(Natural Rate of Growth)
छुरी धार सन्तुलन	(Knife Edge Balance)
समय बिलम्ब/अन्तराल	(Time Lag)
विचलन	(Deviation)
प्रभावपूर्ण माँग	(Effective Demand)
निर्बाधवादी	(Laissez faire)
राजकोषीय तटस्थता	(Fiscal Neutrality)

16.11 सन्दर्भ ग्रंथ (References)

1. Adelman, I (1961) 'Theories of Economics Growth and Development'
2. Hogendorn, J. (1966) 'Economic Development'
3. Higgins, Bengamin (1959) 'Economic Development'

4. Jhingan, M.L (2007) 'The Economics of Development and Planning'
5. सिंह, एस.पी. आर्थिक विकास एवं नियोजन

16.12 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit- end Questions)

1. हेरोड के आर्थिक विकास मॉडल को समझाइए ।
   Explain the economic growth model of Harrod.
2. डोमर के आर्थिक विकास मॉडल की व्याख्या कीजिए ।
   Discuss the economic growth model of Dommer.
3. हेरोड तथा डोमर के आर्थिक विकास मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
   Discuss critically Harrod of Dommer models of economic growth.
4. विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक समस्या हेतु हेरोड-डोमर मॉडल विश्लेषण के महत्व की विवेचना कीजिए ।
   Discuss the significance of Harrod Dommer analysis for the problems of economic development of developing countries.

ISBN-13/978-81-8496-220-8